राष्ट्र-भाषा की शिक्षा

लेखक

डॉ. श्रीधरनाथ मुकर्जी

शिक्षण-शास्त्र के आचार्य

श्री महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

बड़ौदा

प्रकाशक

आचार्य बुक डिपो

बड़ौदा

१९५७

प्रकाशक

श्री जयन्तीलाल छोटालाल शाह

आचार्य बुक डिपो

बड़ौदा ।

प्रथम संस्करण

मूल्य ६ रुपये

मुद्रक

कृष्णाजी वामन मराठे, बी. ए.

श्रीरामविजय प्रिंटिंग प्रेस

रावपुरा, बड़ौदा ।

१-४-१९५७

निवेदन

आज हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा है। समस्त देश में इसकी शिक्षा किसी-न-किसी रूप में दी जाती है। प्रायः सभी राज्यों की माध्यमिक शालाओं में, वैधानिक रूप से, यह भाषा एक बाध्यतामूलक—अनिवार्य—विषय है तथा अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में, हिन्दी को विशेष स्थान दिया गया है।

शासन के इस महान् उद्देश्य की पूर्ति करना, हिन्दी-शिक्षकों का एक विशेष उत्तर-दायित्व है। इसे पूरी तरह निभाना तभी सम्भव है, जब हिन्दी शिक्षकों को राष्ट्र-भाषा-शिक्षा का समुचित ज्ञान हो।

भाषा-शिक्षा पर हिन्दी में अनेक उपयोगी पुस्तकें लिखी गयी हैं: परन्तु उनमें विशेषकर मातृ-भाषा की शिक्षण-विधियों की ही आलोचना की गयी है। उनमें अहिन्दी विद्यार्थियों की शिक्षा पर विचार नहीं किया गया है, जिनसे उनके द्वारा अभिलषित उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है।

प्रकाशित पुस्तकों की इसी न्यूनता के अनुभव ने मुझे 'राष्ट्र-भाषा की शिक्षा' के प्रणयन की प्रेरणा प्रदान की। इस पुस्तक में, अहिन्दी भाषा-भाषियों की आवश्यकताओं की ओर विशेष ध्यान दिया गया है, तथा राष्ट्र-भाषा-अध्यापन-सम्बन्धी सभी अंगों, उपांगों एवं प्रश्नों पर दृष्टिपात किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में राष्ट्र-भाषा-अध्यापन-विषयक समस्त सिद्धान्तों और प्रणालियों का समावेश किया गया है, भाषा-शिक्षण के सम्पूर्ण सम्भावित रूपों पर विचार किया गया है तथा दृष्टान्तों और पाठ-सूत्रों-द्वारा जटिलताओं को सुलझाया गया है। इस प्रकार, राष्ट्र-भाषा-शिक्षक के समक्ष उपस्थित होनेवाली सारी कठिनाइयों के निराकरण करने का सैद्धान्तिक प्रयत्न किया गया है।

चूँकि मेरी अपनी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है, और मैं अहिन्दी क्षेत्रीय शालाओं में गत पच्चीस वर्षों से अध्यापन एवं निरीक्षण का कार्य कर रहा हूँ, अतएव मुझे व्यक्ति-गत उन शिक्षकों और विद्यार्थियों की कठिनाइयों तथा समस्याओं का विस्तृत अनुभव है, जिनकी अपनी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है। राष्ट्र-भाषा की शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं के शोध करने का विशेष अवसर मुझे बड़ौदा में मिला है, जहाँ (पुराने बड़ौदा-राज्य में)

हिन्दी को विशेष मान्यता पूर्व ही दी गयी थी। सन् १९२५ ई. से वहाँ की प्राथमिक तथा माध्यमिक शालाओं एवं शिक्षण विद्यालयों के पाठ्यक्रम में, हिन्दी एक मान्यता-मूलक—अनिवार्य—विषय है।

हिन्दी-भाषा-शिक्षकों को सम्यक् एवं समुचित सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक लिखी गयी है। इसमें सभी ज्ञातव्य विषयों का ध्यान रखा गया है। तथापि सम्भव है कि कुछ विषय छूट गये हों, और रचना एवं मुद्रण में कितनी ही जगह भूलें रह गयी हों। ऐसी स्थिति में मैं शिक्षकवर्ग जिज्ञासु पाठकवर्ग तथा शिक्षा-प्रेमियों के निकट विनम्र प्रार्थी हूँ कि वे अपने उचित परामर्शों तथा सुझावों से मुझे अवगत कराने की कृपा करें। 'राष्ट्र-भाषा की शिक्षा' में प्राप्त अपनी अज्ञात भूलों को सुधारने के लिए मैं निश्चय ही उन शुभेच्छुकों का कृतज्ञ होऊँगा और उनके सुझावों का लाभ पुस्तक को निर्दोष बनाने में ले सकूँगा।

इस पुस्तक की रचना में, मैंने अनेक प्रामाणिक लेखकों की पुस्तकों तथा गवेषणाओं से समुचित लाभ लिया है। मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। इनके अतिरिक्त मैं श्रद्धेय रमामोहन अगधिया 'स्वर्ण-सहोदर' तथा आदरणीय पं. शालग्राम द्विवेदी एम. ए. (भूतपूर्व आचार्य, प्रान्तीय शिक्षण महाविद्यालय, जबलपुर) का अत्यन्त ही आभारी हूँ। इन महानुभावों ने कृपा-पूर्वक पुस्तक की पाण्डु-लिपि के संशोधन में मेरी यथेष्ट सहायता की है।

आज वसन्त पञ्चमी है। इस शुभ पर्व पर मैं यह पुस्तक हिन्दी-शिक्षकों को राष्ट्र-भाषा हिन्दी के समुचित प्रचार की मंगल-कामना के साथ, प्रेम-सहित सादर समर्पित करता हूँ। मेरी अभिलाषा है कि पथ-प्रदर्शन के रूप में किया गया मेरा यह प्रयास हिन्दी-शिक्षकों के उन हाथों को सुदृढ़ करने में समर्थ हो जिन पर हिन्दी के भविष्य की उज्ज्वलता सौंपी गई है।

इन्दौर,
वसन्त पञ्चमी, सं. २०१४ वि।

श्रीधरनाथ मुकर्जी

विषय – सूची

दूसरा भाग : वाचन

तीसरा भाग : वाणी

चौथा भाग : रचना

पॉचवा भाग : विविध विषय

—— ★ ——

पहला भाग

प्रवेश

पहला अध्याय

भाषा

१. भाषा का महत्त्व

भाषा मानव जाति को ईश्वर की देनगी है। ससार मे अन्य प्राणी भी है, पर वे सब प्रायः मूक होते हैं। वे अपने विचार चिल्लाकर थोडा-बहुत व्यक्त कर सकते है। उस चिल्लाहट का प्रभाव क्षण-स्थायी होता है, तथा उसे विरले ही समझ सकते है। कुत्ता भौंककर अपने विचार प्रकट करता है, और हाथी चिंघाड़कर। प्रत्येक पक्षी की अपनी अपनी आवाज होती है। पर ये आवाजे एक-सी ही प्रकट होती है।

भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार, चिन्तन तथा अनुभवों का पूर्ण अभिव्यजन करता है। जैसा कि प्रसिद्ध अॅग्रेज विद्वान् बैलार्ड ने कहा है, "It is in fact a tool, that has educated its maker"* आँख मटकाकर, चुटकी बजाकर तथा उॅगली दबाकर भी मनुष्य अपने विचारों का विनिमय कर सकता है, किन्तु इन साधनों के द्वारा व्यापक रूप से विचार-विनिमय नही हो सकता है। इनका उपयोग अधिकतर आदिवासी तथा असभ्य जाति के लोग ही करते हैं। इनके द्वारा भावों की अभिव्यक्ति अवश्य होती है, पर इनसे वैसी पूर्णता नहीं व्यञ्जित होती है, जैसी भाषा के द्वारा होती है।

वाणी का वरदान पाकर ही, मनुष्यजाति अन्य मूक प्राणियो की अपेक्षा विकास के पथ पर अग्रसर होने में समर्थ हुई है। भाषा के द्वारा अपने भावों को व्यक्तकर, यह जाति समाज तथा राष्ट्र के रूप मे गुॅथ गई है। इसके सिवा, 'भाषा' ज्ञान-प्राप्ति का मुख्य साधन है। इस साधन के द्वारा बच्चा अपने मॉ-बाप से ज्ञान सीखता है, तथा पाठशाला और महाविद्यालयों में ज्ञानार्जन करता है। प्रौढ नई पुस्तकों को पढकर अपने ज्ञान को परिमार्जित करता है। इस प्रकार, हमारी शिक्षा भाषा पर ही निर्भर रहती है।

---

* P B Ballard **Thought and Language** London, University of London Press, 1934 p 6

इतना ही नहीं, वरन् सभ्यता के प्रारम्भ से आजतक का सम्पूर्ण ज्ञान भाषा के साधन से ही अटूट रहा है। पुरानी पीढ़ियाँ अवश्य नष्ट हुईं, पर ज्ञान का भण्डार बढ़ता ही रहा, और मनुष्य अपने पूर्वजों के अर्जित ज्ञान का लाभ सदा उठाता ही रहा। यह प्राधिकार मनुष्य जाति की बपौती — पैतृक सम्पत्ति — है। पशु अपने पूर्वजों के ज्ञान का लाभ नहीं उठा सकते हैं। फलतः उनका जीवन इतिहास-शून्य है।

इस प्रकार भाषा की निम्न लिखित विशेषताएँ हैं :

(१) भाषा के कारण मानव-जाति पशु-वर्ग से ऊँची है।
(२) भाषा के द्वारा सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता की सृष्टि हुई है।
(३) भाषा के द्वारा ही हम अपने विचार प्रकट कर सकते हैं।
(४) भाषा ज्ञान की प्राप्ति और उसकी वृद्धि का प्रमुख साधन है।

२. भाषा और सभ्यता

भाषा का उत्थान और पतन किसी भी देश की बढ़ती और घटती पर निर्भर रहता है। हमारे देश में गुप्त-वंश-काल सभ्यता का स्वर्ण-युग समझा जाता है। इसी समय हमारे देश में संस्कृत भाषा के उत्कृष्ट काव्य लिखे गये थे। इंग्लैंड में प्रथम एलिजाबेथ के समय शेक्सपियर, वाल्टर रैले तथा बैकन सरीखे महान् लेखक हुए। फ्रांस में चौदहवें लुई के समय कवियों तथा लेखकों की भरमार थी। कारण स्पष्ट ही है।

हम सब जानते ही हैं कि विद्या का प्रचार तभी ठीक ठीक हो सकता है, जब कि देश में सम्पूर्ण शान्ति रहे। लेखक तभी निकलते हैं, जब विद्या का उचित प्रचार हो और वे शान्ति-पूर्वक लिख सकें। अवश्य, कभी कभी साम्राज्य के ध्वंस के कारण भाषा के प्रसार में सहायता मिलती है, जैसा कि मुग़ल-साम्राज्य के पतन के पश्चात् हिन्दी की खड़ी बोली का हुआ। अनेक उर्दू-शायर दिल्ली को छोड़कर लखनऊ, फैजाबाद, प्रयाग, काशी, पटना आदि पूर्वी शहरों में जा बसे। दिल्ली के बहुत से व्यापारी भी इन शहरों में जाकर रहने लगे। इस प्रकार दिल्ली की खड़ी बोली का प्रचार बढ़ा[१]।

हमें सदैव अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि भाषा प्रगतिशील है। किसी भी भाषा का विकास शिशु की भाषा की नाईं होता है। शिशु आरम्भ में टूटी-फूटी भाषा बोलता है; पर धीरे-धीरे नवीन शब्दावली पाकर उसका भाषा-ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता

---

[१] रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास; काशी, नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ ४०८।

रहता है। तथापि इसके लिए हमें यथोचित चेष्टा करनी पड़ती है। इसी प्रकार किसी भी भाषा की उन्नति तभी सम्भव है, जब कि लोग उसकी उन्नति के लिए प्रयत्न करें। प्रोफेसर कार्ल वोसलर का कथन है :

> Language is a human custom and the concept of custom implies that it should both be actively and purposively cared and should passively allowed itself to be used.*

हिन्दी का ही उदाहरण लीजिए। प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव माना जाता है‡। पर उस समय इस भाषा का रूप बालक की तोतली भाषा के समान था। विगत बारह सौ वर्षों में इस भाषा की क्रमशः उन्नति होती ही रही, तथा अनन्त लेखकों एवं कवियों ने इस भाषा की सेवा की और इसके कलेवर को अलंकृत किया। उनके अकथनीय परिश्रम के फलस्वरूप ही, हम हिन्दी-भाषा को आज इस फूले-फले रूप में देखते हैं। हमें आशा है कि इस भाषा की उत्तरोत्तर वृद्धि होती ही रहेगी।

इसके सिवा, भाषा सभ्यता का प्रतिबिम्ब है। यदि हम किसी भी काल की रचनाओं का विश्लेषण करें तो उन रचनाओं पर हमें तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति की छाप स्पष्ट दिखेगी। हिन्दी का ही उदाहरण लीजिए। तेरहवीं से सत्रहवीं सदी का समय हमारे देश में भक्ति-काल का युग था। इस समय की प्रायः सम्पूर्ण रचनाएँ भक्ति-रस में डूबी हुई हैं, और इसी समय में हमारे देश में गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास जैसे महान भक्त कवि हुए। इसी प्रकार आधुनिक काल में अँग्रेजी साहित्य के प्रभाव ने हिन्दी-साहित्य को अनेक दिशाओं में विकसित होने की प्रेरणा दी है। कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना तथा अन्य उपयोगी साहित्य की रचना में अद्भुत प्रगति-शीलता आ गई है। इसके साथ ही इंडियन नेशनल काँग्रेस ने स्वतन्त्रता का जो सन्देश भारत में फैलाया, उससे अनुप्राणित होकर कवियों ने देश-प्रेम और राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत कविताओं की रचना की†।

२. भाषा के स्वरूप

भाषा के दो भिन्न स्वरूप हैं—उच्चारित और लिखित। पहले उच्चारित भाषा आई, और फिर लिखित। हमारे ऋषि-मुनियों को समग्र वेद-वेदाङ्ग कण्ठस्थ करने पड़ते

---

* Karl Vossler The Spirit of Language in Civilization London, Routledge. 1951 p 2.

‡ रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४९।

† रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास; इलाहाबाद, रामनारायणलाल एण्ड कम्पनी, पृष्ठ ५२

थे। शिष्य गुरु से सीखता था, तथा पुत्र पिता से। उन्हें एक एक शब्द तथा पद याद करना पड़ता था। इतना ही नहीं, वरन् उन्हे प्रत्येक अक्षर का ठीक ठीक उच्चारण करना पड़ता था। फल-स्वरूप सदियों और पीढ़ियो के बाद भी न हमारे ज्ञान-भंडार की ही कमी हुई, और न उनकी आवृत्ति के उच्चारण मे कोई अन्तर ही आया। आज भी हमारे पण्डित धर्म-ग्रन्थो का पाठोच्चार ठीक उसी प्रकार करते है, जिस प्रकार हमारे पूर्व पुरुष सहस्रो वर्ष पूर्व करते थे। इसे देख-सुन कर पाश्चात्य विद्वान् दाँतो-तले उँगली दबाते है। फिलिप हार्टग लिखते है, "Even today Indian students in *pathsalas* and *tols* chant by heart verses from the Vedas, with intonations that, I imagine, go back for 3,000 years or more"*

धीरे-धीरे लिखित भाषा का आविष्कार हुआ। इसके द्वारा ज्ञान का प्रसार सुगमता से हुआ। वर्तमान युग मे, मुद्रणकी सहायता से, किसी भी विद्वान् के विचार ससार के कोने-कोने मे बात-की-बात मे फैल जाते है। यद्यपि रेडियो के माध्यम से उच्चारित भाषा के द्वारा हमे यह सन्देश और भी शीघ्र प्राप्त हो जाता है, किन्तु इसका प्रभाव स्थानिक होता है। हमे इसे रिकार्ड करना पड़ता है, तथा लेख-बद्ध करना या पुस्तक-रूप मे मुद्रित करना होता है। इस प्रकार उच्चारित भाषा क्षणिक, किन्तु लिखित भाषा स्थायी होती है।

४. भाषा क्यों पढ़ाई जाय ?

अब प्रश्न यह उठता है कि भाषा क्यो पढ़ाई जाय ? बालक तो अपने माता-पिता का अनुकरण कर घर ही मे भाषा सीख सकता है। पर इससे काम नही चल सकता है। भाषा शिक्षा की सब समय आवश्यकता रहती है। इसके मुख्य तीन कारण है :

(१) घर की भाषा साधारण होती है। यह साहित्यिक नही होती है। इस घरेलू भाषा से दैनिक काम-काज तो चल जाते है, पर उच्च ज्ञान-प्राप्ति के लिए यह विशेष उपयोगी नही है।

(२) साधारणतः घरेलू भाषा लिपि-बद्ध नही की जा सकती है। इसके द्वारा, हम लिपि-बद्ध भाषा ठीक नहीं समझ सकते।

(३) घरेलू भाषा की सीमा परिमित होती है। भाषा का स्तर ऊँचा करने के लिए, सुव्यवस्थित भाषा-शिक्षा की आवश्यकता है।

---

* P Hartog Some Aspects of Indian Education—Past and Present London. O U P. 1939 p 1

राज-भाषा.—हमारे देश में मुसलमानों के राजत्वकाल में फ़ारसी तथा अँग्रेज़ों के समय में अँग्रेज़ी राज-भाषा रही। देखा जाता है कि राज-भाषा बहुधा शासक वर्ग की मातृ-भाषा होती है। लोग इसे पढ़ने के लिए स्वभावतः उत्सुक रहते हैं। कारण, इस भाषा के ज्ञान के बिना, अच्छी नौकरी नहीं मिलती है। इसके सिवा, राज्य-शासन की गति-विधियों और नियमों से परिचित करना इसका मुख्य उद्देश्य है।

विदेशी भाषा.—अनेक देशों के स्कूल तथा कालिज के पाठ्य-क्रम में, एक विदेशी भाषा बाध्यतामूलक — अनिवार्य — विषय है। यही कारण है कि एक अँग्रेज विद्यार्थी जर्मन या फ्रेन्च सीखता है, तथा एक जर्मन विद्यार्थी अँग्रेजी या फ्रेन्च पढ़ता है। साधारणतः, मनुष्य अपनी मातृ-भाषा के द्वारा अपने देश की ही बातें जान सकता है। अवश्य, इस भाषा में प्रकाशित दूसरे देशों का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान उसे मिल जाता है। एक विदेशी भाषा के जानने से, उसे उस देश का तथा उसकी भाषा के साहित्य का विशेष परिचय हो जाता है। इस कारण, उसकी ज्ञान-वृद्धि होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय भाषा.——वर्तमान युग में विज्ञान के विकास के कारण, दूर दूर के देश भी निकटतर आ गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि देश-देश में, मनुष्य-मनुष्य में, अब कोई भेद नहीं है। ज्ञानार्जन के लिए, व्यापार की वृद्धि के लिए, देश-विदेशों से सम्पर्क रखने के लिए, राजकीय कार्यों के लिए, प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को कम-से-कम एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा सीखना आवश्यक हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं में पाँच भाषाएँ मुख्य हैं: अँग्रेजी, फ्रेन्च, चीनी, हिस्पानी और रूसी। भारत आज स्वाधीन है। हमारे देश को आज विदेशों से अत्याधिक आदान-प्रदान करना पड़ता है। इस कारण, हमारे देश की उन्नति के लिए, ऐसे शिक्षित समुदाय की आवश्यकता है, जो कई अन्तर्राष्ट्रीय भाषाएँ जाने।

राष्ट्रीय-भाषा.—राष्ट्र-भाषा से हमारा तात्पर्य उस भाषा से है, जिसे किसी भी देश के अधिकांश व्यक्ति समझ सकें, और जो राष्ट्र के विभिन्न भागों में एकीकरण करने में समर्थ हो। राष्ट्र-भाषा का प्रश्न उसी देश में उठता है, जहाँ एक से ज्यादा भाषा प्रचलित हो। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमेरीका लीजिए। इस देश में चीनियों के अतिरिक्त, यूरोप के प्रत्येक भाषा-भाषी रहते हैं। लोग अपनी मातृ-भाषा अवश्य सीखते हैं, पर इस देश की राष्ट्र-भाषा अँग्रेजी है। प्रत्येक अमरीकी को अँग्रेजी सीखना आवश्यक है, तथा स्कूल और कालिज के पाठ्य-क्रम में अँग्रेजी एक बाध्यतामूलक — अनिवार्य — विषय है।

राष्ट्र-भाषा का अध्ययन इस उद्देश्य से किया जाता है कि सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय एकता की वृद्धि हो, राष्ट्रीय भावनाओं को ओज और बल प्राप्त हो, प्रादेशिक भेदभाव

अधिक न बढे, तथा केन्द्रीय और अन्तर्प्रादेशिक व्यवहार मे सहायता मिले। प्रायः देखा गया है कि राष्ट्रभाषा देश की विभिन्न भाषाओ मे प्रधान होती है। आज हिन्दी को भारत में यही गौरव प्राप्त है। कारण, यह भाषा राष्ट्र मे प्रायः सर्वत्र फैली हुई है।

६. उपसंहार

इस प्रकार भाषाओ को हम छः भागो मे बाँट सकते हैं। इन छः प्रकार की भाषाओं का ज्ञान शिक्षित व्यक्ति के लिए हितकर है। पर एक साधारण शिक्षित मनुष्य के लिए छः भाषाएँ सीखना असम्भव है। अपना सम्पूर्ण जीवन बिताकर भी, वह उन्हें ठीक ठीक नहीं सीख सकता है।

ध्यान देने पर ज्ञात होगा कि भाषाओ के मुख्य चार रूप है :

(१) मातृ-भाषा।

(२) राष्ट्र-भाषा — स्वतन्त्र देश मे राष्ट्र-भाषा और राज्य-भाषा एक ही भाषा होती है। आशा की जाती है कि थोडे ही समय मे भारत की राष्ट्र-भाषा 'हिन्दी' यहाँ की राज-भाषा भी हो जावेगी। इसके सिवा, कहीं कहीं की मातृ-भाषा और राष्ट्र-भाषा एक ही भाषा होती है, जैसे, उत्तर प्रदेश या मध्य प्रदेश में 'हिन्दी'।

(३) विदेशी भाषा—विदेशी भाषा ऐसी चुननी चाहिए, जो कि सबसे अधिक लोक-प्रिय अन्तर्राष्ट्रीय भाषा होवे। विदेशी भाषा का ज्ञान ज्ञानोपलब्धि के लिए आवश्यक एव हितकर है। भारत के लिए 'अँग्रेजी' विदेशी और अन्तर्राष्ट्रीय — दोनो — भाषाओ का काम दे सकती है। वर्तमान समय में यह भाषा भारत की राज-भाषा भी है।

(४) सस्कृति-भाषा—सस्कृत, अरबी, फारसी, इत्यादि।

यह यथेष्ट होगा कि माध्यमिक शालाओ के विद्यार्थी केवल तीन ही भाषा सीखें :

(१) मातृ-भाषा।

(२) राष्ट्र-भाषा या अन्य कोई भारतीय भाषा (उन विद्यार्थीयो के लिए, जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है)।

(३) अँग्रेजी या सस्कृति-भाषा, अथवा, अँग्रेजी के सिवा अन्य कोई विदेशी भाषा।

केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार समिति ने (Central Advisory Board of Education) अपनी सन् १९५७ ई० की जनवरी की बैठक मे यह निर्णय किया है कि माध्यमिक शालाओं मे प्रत्येक विद्यार्थी के लिए तीन भाषा सीखना अनिवार्य कर दिया जावे ।

विश्वविद्यालय मे, प्रत्येक विद्यार्थी इन तीन भाषाओं मे से कम-से-कम दो भाषाएँ अवश्य सीखे : (१) मातृ-भाषा, (२) राष्ट्र-भाषा और (३) अँग्रेजी। अब वह समय आ गया है, जब कि अनेक विद्यार्थी मैट्रिक या एस० एस० सी० परीक्षा बिना अँग्रेजी लिये ही पास करेंगे। इन विद्यार्थियों के लिए विश्वविद्यालयों के द्वार बन्द नही करना चाहिए। कारण स्पष्ट है कि स्वाधीन भारत में उच्च शिक्षा अँग्रेजी-शिक्षा नहीं हो सकती है।

—★—

दूसरा अध्याय

हमारी राष्ट्र-भाषा

१. जय हिन्दी !

१४ सितम्बर का दिन हिन्दी भाषा के इतिहास मे विशेष गौरव और अभिनन्दन का दिन है, क्यो कि सन् १९४९ ईस्वी में १४ सितम्बर को ही हिन्दी को भारत के सविधान मे भारतीय सघ की राष्ट्र-भाषा के रूप मे मान्यता दी गई थी। उन लोगो की कठिनाइयो को ध्यान मे रखते हुए, जो अभी तक हिन्दी से भली भाँति परिचित नहीं थे, सविधान मे पन्द्रह वर्ष की अवधि अवश्य रखी गई थी। इस दिशा मे सरकारी और गैर सरकारी सस्थाओ के द्वारा कार्य किया जा रहा है, और वह दिन समीप आ रहा है, जब राष्ट्र-भाषा के रूप मे हिन्दी एक सशक्त माध्यम होकर सहायक सिद्ध होगी। चूँकि पन्द्रह वर्ष मे हिन्दी को पूर्ण रूप से राज्य-भाषा बनाना है, अतएव शिक्षा-मन्त्रालय ने इस अवधि को तीन पचवर्षीय भागों मे विभक्त किया और प्रत्येक भाग के लिए कार्य-क्रम निश्चित किया है।

इस प्रकार, चाहे कोई पसन्द करे या न करे, हिन्दी आज भारत की राष्ट्र-भाषा है। इस भाषा की सेवा करना, प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है। भारत की राष्ट्रीय, सामाजिक और सास्कृतिक एकता को सुदृढ करने में हिन्दी सब से बडी प्रतीक होगी, इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता।

२ जन-भाषा और राष्ट्र-भाषा

हमे स्मरण रखना चाहिए कि जनतन्त्र मे जन-भाषा होने के कारण 'हिन्दी' राष्ट्र-भाषा हो गई है। फारसी और अँग्रेजी की भाँति यह शासकों की भाषा नही है, और न सस्कृत की भाँति विज्ञो की भाषा बनकर देव-भाषा ही बन गई है। जनता के जीवन के विकास के साथ-साथ इसका विकास हुआ है।

आज से अस्सी वर्ष पूर्व ही बगाल के कुछ नेताओं ने स्वीकार कर लिया था कि हिन्दी मे इतनी शक्ति है कि वह देश की सामान्य भाषा के रूप में अन्तर्प्रान्तीय के

आदान-प्रदान में सहायक सिद्ध हो सके। सन् १८७२ ईस्वी में बंगाल के श्री केशवचन्द्र सेन ने अपने बँगला पत्र में इस विषय पर एक निबन्ध लिखा था कि हिन्दी अखिल भारत की जातीय या राष्ट्रीय भाषा बनने के योग्य है। सन् १८७७ ईस्वी में श्री बंकिमचन्द्र द्वारा सुसम्पादित 'बंग-दर्शन' पत्रिका में राष्ट्रीय ऐक्य के क्षेत्र में हिन्दी की उपयोगिता विषयक एक अत्यन्त उपयोगी लेख निकला, जो निश्चित रूप से स्वयं बंकिमबाबू द्वारा अनुमोदित था। गुजरात प्रान्त के महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए अपनी अनमोल सेवा अर्पित की, और उसी समय से अपने 'आर्य-समाज' के प्रचार का श्रीगणेश हिन्दी में ही कर दिया था, जिससे पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में बड़ा ही काम हुआ।

सन् १९०५ ईस्वी में बंगाल में बंग-भंग के बाद स्वदेशी आन्दोलन का आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन के साथ हमारे देश में स्वाधीनता-संग्राम की नींव पड़ी। इसी समय कुछ बंगाली नेताओं ने हिन्दी के पक्ष में प्रबल प्रयत्न किया, जिससे हिन्दी के सहारे जनता में राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए आकांक्षा उत्पन्न हुई।* फिर सन् १९२० ईस्वी से महात्मा गांधी राष्ट्र-संग्राम-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए, और उन्होंने हिन्दी के कार्य को स्वराज्य के लिए चौदह रचनात्मक कार्यों के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। गांधीजी के प्रभाव के कारण, हिन्दी साहित्य ने एक नई दृष्टि की ओर मोड़ ली। कुछ लोगों ने श्री प्रेमचन्द को कांग्रेस का प्रचारक तक कह डाला। श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' और 'यशोधरा' में गांधीवाद की सुस्पष्ट छाया है। इसी प्रकार श्री जैनेन्द्र की कहानियों एवं उनके विचारों में गांधीवाद के सिद्धान्त परिलक्षित हैं।†

इस प्रकार हिन्दी अचानक सामने आकर खड़ी हो जानेवाली कोई नई चीज़ नहीं है, प्रत्युत यह भाषा एक परम्परागत वस्तु है। आज ४७ प्रतिशत भारतवासियों की मातृ-भाषा हिन्दी है। सन् १९५१ ईस्वी की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार भारत के विभिन्न भाषा-भाषियों की संख्या इस प्रकार थी :=

---

* श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : 'समानाशु प्रथमा हिन्दी'; आजकल, अगस्त, १९ पृष्ठ ४९-५०।

† श्री भगवतीचरण वर्मा : 'हिन्दी साहित्य और गांधीजी'; सरस्वती, दि १९५४; पृष्ठ ३८५।

= Government of India. India, 1955. Delhi, Publications Division, p. 28.

भारत की भाषाएँ

सख्या	भाषा	जन-सख्या	प्रतिशत
१.	हिन्दी ..	१४,९९,४४,३११	४६·३
२.	उर्दू ..		
३.	हिन्दुस्थानी ...		
४.	पजावी ...	...	...
५.	तेलगु ..	३,२९,९९,९१६	१०·२
६.	मराठी	२,७०,४९,५२२	८·३
७.	तामिल	२,६५,४६,७६४	८·२
८.	बगाली ..	२,५१,२१,६७४	७ ८
९.	गुजराती ..	१,६३,१०,७७१	५·१
१०.	कन्नड ...	१,४४,७१,७६४	४ ५
११.	मल्यालम्म .	१,३३,८०,१०९ .	४ १
१२.	उड़िया ..	१,३१,५३,९०९	४ ०
१३.	आसामी .	४९,८८,२२६	१·५
१४.	कास्मीरी ..	५१,०८६	..
१५.*	सस्कृत ..	५५५	...
	एकत्र योग ..	३२,३९,७२,६०७	१००

इतना ही नहीं, सख्या के विचार से हिन्दी पृथ्वी की तीसरी भाषा है। उत्तरी चीनी और अँग्रेजी — इन दोनों — के बाद ही हिन्दी का स्थान है। हिन्दी के पीछे हमें सख्या के अनुपात से इन भाषाओं को मानना पडेगा : रूसी, जर्मन, जापानी, हिस्पानी, बँगला और फ्रेंच।

३. हिन्दी की जिम्मेवारी

इस तरह हिन्दी भाषा पर एक विशेष जिम्मेवारी है। हमारे देश में चौदह स्वीकृत भाषाएँ हैं। यदि प्रत्येक क्षेत्र के भाषा-भाषी अपनी मातृ-भाषा में अपना रहँटा-राग अलापते रहेंगे, तो खतरा यह है कि क्षेत्रीय भाव बढता ही जायगा। यह हमारे देश के

* चौदह भाषाएँ—पन्द्रह नहीं, क्यो कि कोई-कोई अपनी मातृभाषा हिन्दी तथा उर्दू के बदले हिन्दुस्थानी बतलाना पसन्द करते है।

लिए विशेष हानिकर है। हमें सदैव याद रखना चाहिए कि भारत एक ही देश है, जैसा कि राधाकृष्णन् रिपोर्ट में कहा है :

> After centuries of stress and conflict India has gradually evolved a common civilisation, a collective consciousness which embraces wide varieties of temperament, tradition, ways of thought and belief. Our people belong to different provinces, speak their own languages, preserve their own habits and customs There are sharp differences of temper, tradition and dialect Despite all these there is a fundamental unity which binds the people together as members of one society with the same cultural loyalties.*

देश मे एकता स्थापित रखने के लिए राष्ट्र-भाषा एक विशेष साधन है। इसीके द्वारा देश के विभिन्न भागो के नर-नारी अपना विचार-विनिमय कर सकते है, और उन्हे एक-दूसरे को समझने मे कोई भी कठिनाई नही भुगतनी पड़ती। अँग्रेजो के जमाने मे, अँग्रेजी भाषा के जरिए ही देश के भिन्न भिन्न भागों मे भावों या विचारो का आदान-प्रदान होता रहा, पर यह भाषा कुछ इने-गिने उच्च शिक्षितो की ही भाषा रही। इस भाषा का भारत की सस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह विदेशी भाषा इस देश मे अवश्य पनपी, किन्तु यह यहाँ फूली-फली नही। इसने विशाल वृक्ष का रूप धारण नहीं किया। यह जन-समुदाय की भाषा न हो सकी।

कोई विदेशी भाषा राष्ट्र-भाषा नहीं हो सकती। राष्ट्र-भाषा हमारे देश मे फैली हुई भाषा होना चाहिए, जिसे जन-समुदाय समझ और बोल सके। हिन्दी को यह श्रेय प्राप्त है। पर इस पद पर अधिष्ठित होने मे हिन्दी को भाषा की दृष्टि से ही मान्यता प्रदान की गई है, साहित्य की दृष्टि से नही। साहित्य की दृष्टि से बगाली, मराठी, तामिल आदि भारतीय भाषाएँ हिन्दी से अधिक समृद्धशाली हैं। पर हिन्दी मे राष्ट्रीय साहित्य का अभाव नहीं है, और थोडे ही प्रयत्न से उसे सब प्रकार सर्वांङ्ग पूर्ण बनाया जा सकता है। इसके सिवा, बगाली, गुजराती, मराठी आदि प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओ से भी वह अधिक मिलती-जुलती है, क्यो कि इन सभी का मूलाधार सस्कृत है।

पर इस राष्ट्रीय भाषा पर एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी है। वह है इस विशाल देश की जनता के हृदय पर शासन करना, और उनमें परस्पर भ्रातृ-भाव फैलाना। इसके सिवा, इसे भारत और ससार का सन्देश देश के कोने-कोने मे फैलाना चाहिए।

---

* Government of India The Report of the University Education Commission, Vol 1 Delhi Manager of Publications, 1949 p 35

४. हिन्दी के दो रूप

हिन्दी को दो रूपो मे समझा जा सकता है। प्रथम, यह एक क्षेत्रीय भाषा है, तथा यह उसी प्रकार है, जिस प्रकार अन्य क्षेत्रीय या मातृ-भाषाएँ हैं। हमारे देश मे आज पाँच हिन्दी-भाषी राज्य हैं: बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पजाब और उत्तरप्रदेश। अवश्य, पजाब मे एक पक्ष गुरुमुखी लिपि मे पजाबी का है। हिन्दी का दूसरा रूप उसका अखिल भारतीय शासकीय या राष्ट्र-भाषा का है।

इस तरह हिन्दी-सेवको के दो प्रकार के कर्तव्य हैं। एक क्षेत्रीय भाषा की उन्नति के लिए, और दूसरा राष्ट्रीय भाषा के रूप मे उसमे एक-रूपता लाने के लिए। हिन्दी-भाषा-भाषी स्वभावतः अपनी मातृ-भाषा की समृद्धि चाहेंगे। प्रायः पन्द्रह करोड भारत-वासियों की मातृ-भाषा हिन्दी है। इनके लिए परिमार्जित भाषा मे ऐसे लेख और ग्रन्थ लिखने पडेंगे, जिससे इनके मातृ-भाषा-ज्ञान का पूर्ण विकास तथा हिन्दी की सच्ची सेवा हो सके। इस दृष्टिकोण से हिन्दी का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है: उपयोगी पाठ्य पुस्तक, अशिक्षित प्रौढ मनुष्यो के लिए साहित्य, पारिभाषिक कोष, लोकप्रिय समाचार-पत्र, जनपदीय साहित्य का सकलन तथा अप्रकाशित हिन्दी, सस्कृत, पाली, मागधी और प्राकृत ग्रन्थों का शोध एव प्रकाशन। इस प्रकार हिन्दी मे मौलिक ग्रन्थों तथा प्रथम श्रेणी के नवीन साहित्य की सृष्टि बहुत कुछ आवश्यक है। विषय के अनुसार ही इनकी भाषा कठिन अथवा सरल होगी।

इस क्षेत्रीय समृद्धि को हम यदि अखिल भारतीय हिन्दी पर भी लादने का प्रयत्न करेंगे, तो हम इसे अन्य क्षेत्रीय जनों के लिए दुर्बोध बना देंगे। जैसा कि श्री रमादत्त शुक्ल ने कहा है, "जिन लोगो की भाषा हिन्दी है, उन्हें यह याद रखना चाहिए कि राष्ट्र भाषा क्षेत्रीय हिन्दी से कहीं अधिक व्यापक है और उसके निमित्त कार्य करने के लिए वैसे ही व्यापक दृष्टिकोण से काम करने वालों की आवश्यकता है।" *

राष्ट्र-भाषा हिन्दी के भावी साहित्य-सृजन मे कम-से-कम निम्न लिखित बातो को ध्यान में रखना अत्यावश्यक है:

(१) प्रादेशिक भाषाओं के चुने हुए ग्रन्थों का अनुवाद राष्ट्र-भाषा हिन्दी में करना। बँगला, गुजराती, मराठी आदि के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी मे हुआ है, पर हिन्दी भाषा-भाषी तामिल, तेलगू, मलयालम आदि के ग्रन्थो से परिचित नहीं है। इस कारण इनके ग्रन्थो का अनुवाद विशेष कर करना चाहिए। अनुवादों में मूल भाषा के वे प्रचलित शब्द, जो सस्कृत के अपभ्रंश हैं, विशेषकर प्रयुक्त किये जावें।

---

* श्री रमादत्त शुक्ल "राष्ट्र लिपि पर संकट", **सरस्वती**, जनवरी, १९५६; पृष्ठ ४५।

(२) राष्ट्र-भाषा अत्यन्त सरल होनी चाहिए, जिससे राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति जीवन की अनुभूतियाँ उसमे व्यक्त कर सके। इसके सिवा, हमे स्मरण रखना उचित है कि कैसी हिन्दी किस क्षेत्र मे समझी जायगी। पर उस भाषा मे न देशज शब्द रखे जायँ, और न उसमे तद्भव शब्दो की ही अधिकता हो। जिन तत्सम शब्दों के निश्चित अर्थ सब क्षेत्रों में एक से माने जाते हो, उनका प्रयोग ठीक ही है, पर जो विवाद-ग्रस्त हो, उनका परित्याग ही उचित है।

(३) राष्ट्र भाषा हिन्दी की अखिल भारतीय सस्थाओ की शाखाएँ विभिन्न प्रादेशिक भाषा-भाषियो के क्षेत्रो मे स्थापित की जाएँ, और उनके सञ्चालन तथा व्यवस्था का कार्य वहीं के हिन्दी-ज्ञाता महानुभावों को सौंपा जाय।

परन्तु किसी भी दशा मे तुष्टीकरण की नीति न अपनाई जाय। राष्ट्र-हित ही सर्वोपरि ध्येय हो। यदि ऐसा न होकर समझौते की भावना अपनाई गई, तो अन्त मे हिन्दी का अहित अवश्यम्भावी है। यदि लोगों ने कहना शुरू किया, "मेरा स्त्री बीमार है, वह दूध खायगी", तो निश्चय ही खिचडी हिन्दी की बुनियाद पड़ जायगी। हमे स्मरण रखना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय भाषा होने पर भी अँग्रेजी ने कभी यह गवारा नहीं किया कि "मै जाता हूँ" के अर्थ मे "आई गोज" लिखा जाय। जैसा कि डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है: "आप शब्द-भंडार की दृष्टि से चाहे जितनी स्वतन्त्रता ग्रहण कीजिए, किन्तु हिन्दी के व्याकरण की रक्षा करना सब के लिए लाभ-दायक है।"*

इस प्रकार राष्ट्र-भाषा के निर्माण और उन्नयन के लिए सचेष्ट रहना चाहिए। इसके साथ ही, जहाँ तक हो सके, हिन्दी भाषा को प्रत्येक भारतीय भाषा से कुछ-न-कुछ ग्रहण कर लेना चाहिए। इससे हिन्दी की उन्नति होगी। अँग्रेजी साहित्य का ही उदाहरण लिजिए। इसके समृद्धिशाली होने का एक कारण यह है कि जहाँ-जहाँ अँग्रेज शासन, व्यापार और सैर के लिए गये, वहाँ-वहाँ की भाषा का उन्होंने अध्ययन किया और उसके साहित्य के रस से अँग्रेजी भाषा एवं साहित्य को सींचा।

आशा की जाती है कि अखिल भारतीय हिन्दी के निर्माण के साथ-साथ क्षेत्रीय हिन्दी साहित्य की भी बहुत कुछ उन्नति होती ही जायगी। यथार्थ मे जैसा कि श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा है, ज्वलन्त सत्य है: "यद्यपि हिन्दी के ये दोनों रूप परस्पर कुछ भिन्न हैं, तथापि ये एक दूसरे को सँभाले हुए हैं।" †

---

* डॉ रामकुमार वर्मा: "अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी", **सरस्वती**, जनवरी, १९५५, पृष्ठ ६।

† श्री जवाहरलाल नेहरू: "हिन्दी का रूप", **आजकल**, जुलाई, १९५४, पृष्ठ ९।

हमे सदैव स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दी की समृद्धि तो प्रादेशिक भाषा की समृद्धि के साथ जुडी हुई है। किसी भी प्रादेशिक भाषा को दबाकर, उसे पीछे हटाकर हिन्दी आगे बढ़ेगी, यह सोचना तथ्य पर आधारित नहीं हो सकता। प्रादेशिक साहित्यो के परस्पर आदान-प्रदान के लिए हिन्दी सदैव सहायक होगी। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत केवल हिन्दी लेखकों द्वारा लिखा हुआ साहित्य ही महत्व-पूर्ण स्थान पाता रहेगा, यह न होकर हिन्दी में अनूदित प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य को भी सर्वदा ऊँचा स्थान प्राप्त होगा। इसी तरह हिन्दी साहित्य की प्रतिनिधि रचनाओं का अनुवाद विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं मे भी उल्लेखनीय स्थान पाता रहेगा, यह आशा भी अवश्य की जा सकती है।

५. हिन्दी और अँग्रेजी

हिन्दी की सीधी टक्कर तो अँग्रेजी से है, जिसने स्वतन्त्रता के बाद भी अपनी पदवी ज्यों-की-त्यों बना रखी है। हम इस भाषा की उपेक्षा नहीं कर सकते, क्यो कि यह हमारी भाषा है, जैसा कि श्री कन्हैयालाल मुशी ने कहा है :

> इतिहास ने भारत के सन्देश को समस्त ससार मे फैलाने के लिए हमारे हाथ मे (अँग्रेजी भाषा का) एक शक्ति-शाली शस्त्र दिया है। . हम लोग अपनी पैत्रिक सम्पत्ति तथा भविष्य — दोनो के साथ विश्वास-घात करेंगे, यदि हम इस शस्त्र में जग लग जाने दें। आज अँग्रेजी हमारी है। उसके द्वारा हम समस्त ससार पर प्रभाव डाल सकते हैं। अतएव हमारे द्वारा अँग्रेजी की उपेक्षा एक जुर्म है। *

हाँ, अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों के लिए, हम अँग्रेजी का ही उपयोग अवश्य करेंगे, पर देश के भीतर भारत का सन्देश एक विदेशी भाषा से नहीं, वरन् राष्ट्र-भाषा से ही दिया जा सकता है। कारण, भारतीय भावना और सस्कृति का प्रतिबिम्ब अँग्रेजी मे कदापि नहीं आ सकता। पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है कि वह हिन्दी का ही उपयोग करे, चाहे वह स्वदेश मे हो या विदेश मे। नयी दिल्ली मे ससदीय हिन्दी परिषद् के द्वितीय वार्षिकोत्सव मे भाषण देते हुए प्रधानमत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दी की चर्चा करते हुए ठीक ही कहा था :

> मेरा सिर शर्म से झुक जाता है, जब एक भारतीय दूसरे भारतीय से विदेशी भाषा अँग्रेजी मे बातें करता है, और खास कर विदेश मे। मैंने पिछले पच्चीस वर्षों से विदेशों में किसी भारतीय विद्यार्थी अथवा अन्य भारतीय से, या किसी

---

* सरस्वती, मार्च, १९५४, पृष्ठ २२३।

भारतीय संस्था मे, अँग्रेजी मे भाषण नही किया, चाहे वे लोग हिन्दी समझते हों या न समझते हो। ... हम जितनी जल्दी अँग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को बैठा दें, उतना ही अच्छा है। उसमें देर लगाने मे देश में और विदेश मे हमारी बदनामी होती है। *

यथार्थ में हिन्दी और अँग्रेजी का संघर्ष कुछ ही वर्षो का संघर्ष है। वह दिन निकट ही है जब कि विभिन्न राज्यो का कारबार उनकी अपनी ही भाषाओं मे होगा। पर अन्तर्प्रान्तीय और केन्द्र से पत्र-व्यवहार की भाषा अवश्य हिन्दी होगी। यह दिन हिन्दी के लिए गौरव का दिन होगा, और निश्चय ही यह भारत के आत्म-सम्मान के अनुकूल ही होगा।

६. राष्ट्र-भाषा शिक्षण के मुख्य उद्देश्य

यह हम पहले ही बतला चुके हैं कि हमारे देश मे राष्ट्रीय ऐक्य के लिए एक राष्ट्रीय भाषा अत्यन्तावश्यक है: क्योंकि यह बहुभाषी देश है। अपनी व्यापकता के कारण यह श्रेय हिन्दी को मिला है। स्वाधीन भारत का ध्येय है कि प्रत्येक भारतवासी इस भाषा को ठीक तरह बोल सके, पढ़ सके तथा लिख सके।

आज भारत के प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय मे हिन्दी एक बाध्यता-मूलक विषय है। इस शाला मे विद्यार्थी दस वर्ष की आयु मे प्रवेश करता है, और सत्रह वर्ष की आयु मे अपनी शिक्षा समाप्त करता है। आशा की जाती है कि इस सात वर्ष की अवधि मे उसे हिन्दी का यथेष्ट ज्ञान हो जायगा। इस दृष्टि से हिन्दी या राष्ट्र भाषा-शिक्षण के तीन आरम्भिक उद्देश्य होंगे:

(१) प्रत्येक विद्यार्थी लिखी हुई बातें, ठीक ठीक समझ कर पढ़ सके।

(२) वह अपने विचारो को शुद्ध, मधुर और रमणीय ढंग से बोल सके, तथा दूसरो के उच्चारित भावों को स्पष्ट समझ सके।

(३) वह अपने भावो को पूर्ण और स्पष्ट रीति से लिख सके।

इस तरह राष्ट्र-भाषा-शिक्षा के मुख्य उद्देश्य है: सुवाचन, सुवाणी और सुलेखन।

---

* आजकल, अक्टूबर १९५४, पृष्ठ ४८-४९।

तीसरा अध्याय

भाषा-शिक्षण की विधियाँ

१. प्रस्तावना

आजकल सम्पूर्ण भारत में हिन्दी की शिक्षा किसी-न-किसी रूप में अनिवार्य है। प्राय. सभी राज्यों के माध्यमिक पाठ्य-क्रम में हिन्दी एक वाध्यता-मूलक—अनिवार्य—विषय है। अहिन्दी क्षेत्र के कई विश्वविद्यालयों में इण्टरमिडियेट तक हिन्दी एक लाजिमी विषय है। इसके सिवा, अनेक राज्यों के कर्मचारियों तथा कालिज के अध्यापकों को हिन्दी की विशेष परीक्षाओं में सफलीभूत होना जरूरी है।

सारांश यह है कि हिन्दी के प्रसार के लिए सम्पूर्ण देश सचेष्ट है। इस उत्तर दायित्व को निभाने के लिए दो विषयों की विशेष आवश्यकता है : (१) उपयुक्त शिक्षक और (२) राष्ट्र-भाषा-शिक्षण-विधि का समुचित ज्ञान।

इस पुस्तक में राष्ट्र भाषा-शिक्षण-विधि की चर्चा की जा रही है। इस सिलसिले में हमें यह जानना जरूरी है कि मातृ-भाषा के अतिरिक्त एक नई भाषा सीखने की कौन कौन सी विधियाँ हैं, और राष्ट्रभाषा सिखाने के लिए हम इन विधियों से क्या सार ग्रहण कर सकते हैं।

एक नई भाषा सिखाने के लिए मुख्यतः चार विधियाँ हैं : (१) परोक्ष विधि (Indirect Method), (२) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method), (३) वेस्ट विधि (West's Method) और (४) गठन विधि (Structure Method)। अब इन विधियों के मूल सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

२ परोक्ष विधि (Indirect Method)

इस विधि के अनुसार पढ़ाते समय, प्रत्येक वाक्य या शब्द का मातृ-भाषा में अनुवाद किया जाता है। पाठ्य पुस्तकें प्रायः व्याकरण के आधार पर लिखी जाती हैं, तथा सम्पूर्ण शिक्षा व्याकरण तथा अनुवाद पर आधारित रहती है। इस पद्धति के मूल सिद्धान्त ये हैं :

(१) अनुवाद के द्वारा मातृ-भाषा और नवीन भाषा की ठीक तुलना की जा सकती है।

(२) अनुवाद के द्वारा नये शब्द और मुहावरे ठीक समझ में आते है।

(३) व्याकरण के आधार पर ही एक नवीन भाषा सीखी जा सकती है।

पर इस विधि में कई कमजोरियाँ है। अनुवाद द्वारा भाषा सिखाने के कारण, नवीन भाषा के भाव व्यक्त करते समय अड़चनें आती हैं; क्यो कि लिखते और बोलते समय मातृ-भाषा के शब्द कलम पर नाचने लगते है, या, मुँह से निकल पड़ते है। इस कारण विद्यार्थी के हृदय से नवीन भाषा का सोता फूटता नहीं है।

इसके सिवा, इस विधि मे वाचन की ओर अधिक जोर दिया जाता है, तथा बोलचाल की ओर कुछ भी ख्याल नहीं किया जाता है। इस कारण विद्यार्थियों को नयी भाषा मे वार्तालाप करने के लिए विशेष असुविधा भोगना पडती है। यह भी देखा गया है कि बच्चे छोटी आयु होने के कारण व्याकरण के नियमो को सुगमता से नहीं समझ सकते हैं। वे नियमो को रट ज़रूर डालते है, किन्तु उनके उपयोग के समय भूल कर बैठते हैं। यह कैसे आशा की जा सकती है कि छोटे-छोटे बालक व्याकरण के नियमों का ध्यान बोलने और लिखने के समय रख सके। जैसा कि पं० लज्जाशङ्कर झा ने कहा है: "व्याकरण के भरोसे भाषा सिखाने का प्रयत्न वैसा ही निष्फल होता है, जैसा कि पानी के ऊपर घर बाँधना।"*

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक, हमारे देश में मातृ-भाषा को छोड़कर अन्य भाषाएँ इसी विधि से सिखाई जाती थीं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ मे इस विधि की कमजोरियों की ओर कई शिक्षा-शास्त्रियों का ध्यान आकृष्ट हुआ, और उन्होंने अँग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाएँ सिखाने के लिए एक नयी विधि प्रारम्भ की, जिसका नाम है प्रत्यक्ष विधि।

२. प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)

इस विधि के द्वारा एक आधुनिक भाषा का शिक्षण यूरोप में उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे आरम्भ हुआ था, पर भारत मे इसका श्रीगणेश सन् १९०८ ईस्वी में हुआ। इसके प्रवर्तक थे बम्बई में फ्रेजर साहब, बंगाल में टिपिंग साहब तथा मद्रास में येट्स साहब और श्री श्रीनिवास आयंगर।† इन्होंने नवीन शैली से शालाओं की पाठ्य

* पं० लज्जाशङ्कर झा भाषा-शिक्षण-पद्धति; पृष्ठ १८।

† Government of India. Progress of Education in India. 1907-12, Vol II. Calcutta, Government Printing, 1914. p 130

पुस्तकें लिखीं, तथा उनके प्रभाव के कारण अँग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाएँ 'प्रत्यक्ष विधि' के द्वारा पढ़ाई जाने लगी। थोड़े ही दिनो मे यह विधि इतनी लोक-प्रिय हो गई कि संस्कृत या फ़ारसी के समान सांस्कृतिक भाषाओं का अध्ययन भी इस नवीन पद्धति के अनुसार होने लगा।

प्रत्यक्ष विधि का ध्येय है कि बालक उसी रीति से एक नवीन भाषा को सीखे, जिस शैली के द्वारा वह अपनी मातृ-भाषा सीखता है, जिससे वह नई भाषा को न तो अटक-अटक कर बोले, और न रुक-रुक कर लिखे, वरन् मातृ-भाषा के समान नवीन भाषा मे भी उसका विचार-स्रोत फूट पडे।

हम देखते है कि बालक अपने माता-पिता तथा पारिवारिक लोगो के वार्तालाप सुनकर अपनी मातृ-भाषा सीखता है। वह उनकी बातचीत का अनुकरण कर तद्वत् स्वत. बोलना सीखता है। बोलना सीखने के बाद वह पढना और लिखना सीखता है। वह अपने विचार ठहर-ठहर कर अलग-अलग शब्दो मे नहीं, वरन् सम्पूर्ण वाक्यों मे व्यक्त करता है। उसे अपने मनोगत भावों को प्रदर्शित करने के लिए किसी अन्य भाषा मे सोचना नहीं पड़ता, और न उसे पद पद मे व्याकरण के नियमों का ही स्मरण करना पड़ता है।

इस प्रकार, प्रत्यक्ष-विधि के मूल सिद्धान्त ये हैं:

१. **वार्तालाप की प्रधानता:** भाषा-शिक्षण वार्तालाप से प्रारम्भ किया जावे, तथा पढ़ाने के समय विद्यार्थियों को यथा सम्भव बोलचाल की यथेष्ट सुविधा दी जाय, जिससे वह शीघ्र ही अनेक नवीन पाठ सीख सके और उनका उच्चारण शुद्ध रूप में कर सके। इस पद्धति के द्वारा भाषा सिखाते समय वाक्यो के गठन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, **क्यों कि भाषा का इकाई वाक्य है न कि शब्द।**

२ **वार्तालाप सीखने के पश्चात् वाचन तथा लेखन का आरम्भ:** मातृ-भाषा मे लिखना या पढना बालक वार्तालाप के बहुत समय बाद आरम्भ करता है। इस प्रकार, प्रत्यक्ष विधि के अनुसार नवीन भाषा का वाचन या लेखन बालक तभी शुरू करता है, जब वह इस भाषा में कुछ वार्तालाप कर सके। इस विधि के प्रवर्तकों का कथन है कि वार्तालाप के द्वारा एक साधारण शब्दावली के परिचय के बाद वाचन तथा लेखन आरम्भ किया जाय।

३. **मातृ-भाषा का उपयोग बन्द.** परोक्ष विधि के अनुसार नवीन भाषा का अनुवाद मातृ-भाषा मे करना पडता है। इसका विषमय परिणाम यह होता

है कि नवीन भाषा में भाव व्यक्त करते समय मातृ-भाषा पदपद पर बाधा डालती है। इस कारण प्रत्यक्ष विधि के अनुसार मातृ-भाषा का उपयोग पूर्णतः वर्ज्य है। धारणा यह है कि 'न रहेगा बाँस, और न बजेगी बाँसुरी।'

आरम्भ में शिक्षक वस्तुओं को दिखाकर या अभिनय करके नये शब्द सिखाता है। पश्चात, वह शब्द तथा मुहावरों की भाषा वाक्यो में प्रयुक्त करता है। अन्त में, उसे उच्च कक्षाओं मे कठिनाइयों को समझाने के लिए किसी अन्य भाषा का प्रयोग नही करना पड़ता है।

४. आगमन प्रणाली (Inductive Method) द्वारा व्याकरण शिक्षा : पुरानी पद्धति में व्याकरण निगमन प्रणाली (Deductive Method) द्वारा सिखायी जाती थी। विद्यार्थीगण व्याकरण के नियम पहले कंठस्थ कर लेते थे। फिर वे उन्हें उपयोग में लाने का प्रयत्न करते थे। उनका व्याकरण विषयक ज्ञान अवश्य ही अच्छा रहता था, पर वे इस ज्ञान का ठीक ठीक उपयोग नही कर सकते थे। बहुधा व्याकरण के कठोर नियम उनके मस्तिष्क पर ठूँस ठूँस कर भर दिये जाते थे।

वस्तुतः परोक्ष विधि के अनुसार, भाषा सीखने मे काल्पनिक व्याकरण का कोई भी स्थान नही है। इस विधि के प्रवर्तकों का कहना है कि मनुष्य भाषा को व्यवहार के द्वारा सीखता है न कि उसके व्याकरण के नियमो को घोंटकर। भाषा के व्यावहारिक उपयोग के साथ ही वह अपने आप व्याकरण सीख जाता है।

इस विधि से भाषा-शिक्षण मे एक नवीनता आ गई है। बालको के उच्चारण स्पष्टतर होते हैं, उन्हे वार्तालाप का अभ्यास मिलता है, पाठ सजीव होते हैं तथा निरर्थक अनुवाद करना और व्याकरण घोंटना बन्द हो गया है।

इतना होते हुए भी इस विधि की दुर्बलताएँ भी दृष्टि आने लगी है। प्रथमतः, किसी भी शिक्षण-विधि में मातृभाषा का उपयोग एकदम बन्द नही किया जा सकता है। प्रत्यक्ष वस्तु, क्रिया या हाव-भाव दिखलाकर, अथवा दृष्टान्तो द्वारा थोड़े-बहुत शब्द अवश्य समझाये जा सकते हैं; किन्तु सभी शब्द इसी पद्धति के अनुसार नहीं सिखाये जा सकते है, जैसे, भाववाचक सज्ञाएँ, विशेषण, इत्यादि। इसके सिवा, हम नवीन भाषा दिन मे केवल एक या दो घण्टे पढा सकते है, और अधिक-से-अधिक केवल इसी समय हम मातृ-भाषा का उपयोग बन्द कर सकते हैं। पढ़ाई के घण्टे के बाद बालकगण अपने कामकाज मातृ-भाषा मे ही यथावत् करते है।

द्वितीयत., यह देखा गया है कि इस विधि के द्वारा पढ़ानेवाले शिक्षकगण बोलचाल की ओर ही ध्यान देते हैं, और वे वाचन, लेखन एवं व्याकरण के प्रति उदासीन रहते हैं। इस विषय पर चर्चा करते हुए एक अँग्रेजी रिपोर्ट में कहा है :

> oral practice must be supplemented by the study of books, and at some stage by the systematic study of the necessary accidence and syntex *

तृतीयत., इस विधि के द्वारा केवल वे ही शिक्षक पढ़ा सकते हैं जिनका भाषा पर पर्याप्त अधिकार है, जिनका उच्चारण बहुत ही अच्छा है तथा जो विविध प्रकार के अभ्यासार्थ प्रश्न बना सकते हैं। अन्त में यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि यह विधि साधारण बालकों के लिए उपयोगी नहीं है। कारण, वे इतनी शीघ्रता और विशेषताओं के साथ नवीन भाषा को नहीं सीख सकते, जैसा कि इस विधि का ध्येय है। ब्रेयरटन साहब का कथन है, "...only the clever child can profit by the method" †

४. वेस्ट विधि या नवीन पद्धति (West s Method or New Method)

प्रायः तीस वर्ष पहले डॉ० माइकेल वेस्ट प्रशिक्षण महाविद्यालय, ढाका के प्रधानाध्यापक थे। वे प्रत्यक्ष विधि-द्वारा अँग्रेजी शिक्षण के विरोधी थे। उनका कहना था कि यह विधि भारतीय विद्यार्थियों के लिए न तो हितावह है, और न सभी शिक्षक इस विधि के द्वारा पढ़ा ही सकते हैं। उन्होंने अँग्रेजी शिक्षा की एक नई पद्धति निकाली, जो उनके नाम के कारण 'वेस्ट विधि' या 'नवीन पद्धति' के नाम से प्रसिद्ध है। इस विधि के मूल सिद्धान्त ये हैं :

(१) भाषा-शिक्षण वाचन द्वारा आरम्भ की जानी चाहिए। वेस्ट साहब का कथन है, "Learning to read a language is by far the shortest road to learning to speak and to write it" ‡ मनुष्य अच्छी तरह तभी बोल या लिख सकता है, जब कि उसका शब्द-कोष यथेष्ट हो। बालक वाचन के द्वारा शीघ्र ही अनेक नये शब्द सीख सकता है। इसके सिवा वह स्वतः पढ़ना चाहता है। प्रारम्भिक वार्तालाप सीखने की

---

* Memorandum on the Teaching of English, Cambridge University Press, 1937 p 85

† C Brereton Modern Language Teaching, London University Press, 1930 p 137

‡ M West Bilingualism Delhi, Manager of Publications, 1926 p 302

कसरत से वह घबरा जाता है। बालक के पढने की इच्छा का दमन करना हितकर नहीं है।

वेस्ट साहब का यह भी कहना है कि केवल अच्छे विद्यार्थी ही बोल या लिख सकते हैं, पर पढ़ सभी सकते हैं। इस कारण हमे सभी विद्यार्थियों के वाचन की ओर ध्यान देना चाहिए। सुलेखन तथा सुउच्चारण केवल अच्छे विद्यार्थियो के लिए है।

(२) मातृ-भाषा का उपयोग, आवश्यकतानुसार नवीन भाषा के पढ़ाने मे करना उचित है।

(३) वाचन, लेखन तथा भाषण सीखने की अलग अलग पद्धतियाँ तथा शब्द-भंडार हैं। इस कारण एक ही पाठ मे इन तीनो विषयों का साथ साथ अभ्यास करना अनुचित है। ऐसी दशा मे प्रत्येक कक्षा के लिए वेस्ट साहब ने तीन प्रकार की पुस्तके लिखी है—अर्थात् वाचन, भाषण तथा रचना के लिए।

इस पद्धति के द्वारा अँग्रेजी पढ़ाना भारतीय शिक्षकों के लिए वस्तुतः सरल हो गया है। कारण, वेस्ट साहब ने अँग्रेजी-वाचन-माला बहुत सोच-समझ कर लिखी है। प्रत्येक वाचन-माला की एक सहायक पुस्तक (Companion) तथा रचना की पुस्तक है। सहायक पुस्तक में, मातृ-भाषा मे कठिन शब्दों के अर्थ तथा अभ्यास-प्रश्न दिये गये है। रचना की पुस्तक मे वाचन-माला के पाठों पर विविध प्रकार के अभ्यास-क्रम दिये गये है। शिक्षकों को मार्ग दर्शाने के लिए एक 'सहायक पुस्तिका' भी है।

इतना होते हुए भी हम वेस्ट साहब के प्रत्येक विचार से सहमत नहीं हो सकते। हम यह नहीं मान सकते हैं कि साधारण विद्यार्थी केवल वाचन सीखे, और सुलेखन तथा सुउच्चारण का अध्ययन केवल अच्छे विद्यार्थियों के अधिकार में हो। भाषा-शिक्षण तभी सफलीभूत हो सकता है, जब कि सभी विद्यार्थी ठीक-ठीक बोल, लिख और पढ़ सकें।

यह भी देखा गया है कि इस पद्धति के द्वारा पढ़ाते-पढ़ाते अनेक चतुर शिक्षक भी अपनी मौलिकता खो बैठते है। वे लकीर के फकीर हो जाते है। एक ही विषय को वाचन तथा रचना में दोहराते-दोहराते पाठ नीरस हो जाता है, तथा इस पद्धति का समुचित लाभ उठाने के लिए बालकों को कम-से-कम प्रतिवर्ष तीन पुस्तकें (वाचन-माला, सहायक पुस्तक तथा रचना की पुस्तक) खरीदनी पड़ती है।

हमें यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भाषा के तीन अङ्ग है: वाचन, लेखन तथा भाषण। ये तीनो विषय परस्पर मिले-जुले हैं, और अलग नहीं है। भाषा के प्रत्येक

पाठ का मुख्य ध्येय है इन तीनों अंगों को विकसित कर परस्पर मिलाना। इन तीनों विषयों को अलग अलग पढाना, भाषा-शिक्षण के मूल सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है।

५ गठन–विधि (Structure Method)

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद हमारे शिक्षा-क्षेत्र मे अँग्रेजी का पूर्ववत् महत्व-पूर्ण स्थान नही है। कई राज्यों में, अब अँग्रेजी भाषा माध्यमिक शालाओं की पहली कक्षा से लगाकर सातवी कक्षा तक पढ़ाने के बदले केवल अन्तिम चार या पॉच श्रेणियों मे पढाई जाती है। इसके सिवा, इस भाषा की पढाई के लिए ११।१२ पिरियड के बदले ६।७ पिरियड ही दिये जाते हैं। इस प्रकार अँग्रेजी शिक्षा के लिए माध्यमिक शालाओं में अब उतना समय नहीं मिलता, जितना कि पहले मिलता था।

कई राज्यो में इतने कम समय मे अँग्रेजी सिखाने के लिए एक नवीन पद्धति का उपयोग किया जाता है। इसका नाम है 'गठन विधि' या 'Structure Method'। इस पद्धति के अनुसार विद्यार्थियों को प्राय. तीन सौ चुने हुए शब्दों तथा ढॉचों का उपयोग सिखाया जाता है। जैसे:

There is
These are
This book is on ... ,
These books are on
I am ... ...
We are ... ..
इत्यादि, इत्यादि

इस पद्धति के प्रवर्तकों का ध्येय है कि इस प्रकार के चुने हुए शब्दों तथा वाक्यों के ढॉचों का अभ्यास करते करते, विद्यार्थियों को चार या पॉच वर्षों मे ही अँग्रेजी भाषा का यथेष्ट ज्ञान हो जायगा। यह पद्धति इस देश मे गत तीन-चार वर्षों से प्रचलित है, और इसकी प्रगति आशानुरूप है। पर राष्ट्र-भाषा सिखाने के लिए हम इस पद्धति को पूर्ण रूप से अपना नहीं सकते। माध्यमिक शालाओं मे, लगभग सात वर्षों तक हम राष्ट्र-भाषा पढाते हैं। इस दीर्घ समय मे, हमारा ध्येय विद्यार्थियों को हिन्दी का यथोचित ज्ञान कराना होता है। इस पद्धति-द्वारा इस उद्देश्य की सिद्धि पूर्णत. सम्भव नहीं है। पर आरम्भ में हिन्दी भाषा के कुछ चुने हुये शब्दों तथा वाक्यों के ढॉचों का परिचय, हम इस पद्धति के द्वारा विद्यार्थियों को सुगमता से अवश्य दे सकते हैं।

६. उपसंहार

यह हुआ भाषा-शिक्षण की विभिन्न विधियों का सामान्य परिचय। राष्ट्र-भाषा-शिक्षा के लिए हम किसी भी विधि पर पूर्णतः निर्भर नहीं रह सकते। प्रत्येक विधि में कुछ कमजोरियाँ तथा खूबियाँ हैं। कमजोरियों को छोड़कर, हमें अच्छी बातें, राष्ट्र-भाषा-शिक्षण-विधि में अपनानी चाहिए। विभिन्न विधियों से हम निम्नांकित सार ग्रहण कर सकते हैं :

१. **परोक्ष विधि**—अनुवाद का उचित उपयोग तथा व्याकरण-शिक्षा पर जोर।

२. **प्रत्यक्ष विधि**—उच्चारण से आरम्भ, वार्तालाप पर जोर, वाक्य-पद्धति और आगमन पद्धति के अनुसार व्याकरण-शिक्षा।

३. **वेस्ट या नवीन पद्धति**—वाचन पर उचित जोर तथा मातृ-भाषा का आवश्यकतानुसार उपयोग।

४. **गठन-पद्धति**—आरम्भ में हिन्दी का परिचय सुसंगठित वाक्यों तथा शब्द-रूपान्तरों द्वारा कराना।

—— ★ ——

चौथा अध्याय

भाषा–शिक्षण के आवश्यक अङ्ग

१. प्रस्तावना

पहले बताया जा चुका है कि राष्ट्र-भाषा-शिक्षा के मुख्य उद्देश्य है : सुवाचन, सुवाणी और सुलेखन । पिछले अध्याय मे किसी नवीन भाषा-शिक्षा की विभिन्न पद्धतियो पर प्रकाश डाला गया है, तथा राष्ट्र-भाषा-शिक्षा मे उनके ग्रहणीय सिद्धातों की आलोचना की गई है । इसके साथ-साथ हमे सदैव ध्यान रखना चाहिए कि अहिन्दी भाषा-भाषी भारतवासियो के लिए हिन्दी कोई नई भाषा नही है, जिस प्रकार अँग्रेजी तथा फारसी हैं । भारत की प्रायः सभी भाषाएँ सस्कृत से निकली हैं, इस कारण ये परस्पर थोड़ी-बहुत मिलती-जुलती हैं । अनेक तत्सम शब्द ऐसे है जो कि सभी भारतीय भाषाओं मे प्रचलित हैं । इनके व्याकरण मे भी बहुत कुछ समानता है ।

यों, प्रत्येक भारत-वासी एक ही माता की सन्तान हैं, अतएव हमारे रीति-रस्म, आचार-व्यवहार आदि मे बहुत कुछ साम्य है । हमारी भाषाओं के साहित्यिक ग्रन्थो मे एक ही देश, एक ही समाज और एक ही-सी सस्कृति की चर्चा है । इस कारण हिन्दी सीखने के समय अहिन्दी भाषी भारतीयों को उन कठिनाइयों का सामना नही करना पडेगा, जो कि प्राय. अँग्रेजी, फ्रेंच, चीनी या अन्य किसी विदेशी भाषा सीखने के समय आडे आया करती हैं ।

इन बातों को स्मरण रख कर, हमे राष्ट्र-भाषा-शिक्षा-के मूल सिद्धान्तों पर विचार करना पडेगा ।

२ राष्ट्र–भाषा–शिक्षण के मूल सिद्धान्त

(१) आरम्भ से ही उच्चारण पर ध्यान देना चाहिए ।

हम देखते हैं कि बालक अपनी मातृ-भाषा का आरम्भ उसका उच्चारण करके ही करता है । इस कारण राष्ट्र-भाषा सिखाते समय प्रारम्भिक कक्षाओ मे उच्चारण पर ध्यान देना उचित है । प्रारम्भिक उच्चारण-दोषों को भविष्य मे सुधारना प्रायः कठिन हो जाता

है। जैसा कि जेस्परसन ने कहा है, "The very first lesson in a foreign language ought to be devoted to initiating the pupil into the world of sounds" * हमे याद रखना चाहिए कि भाषा का आरम्भ बालक सुनकर करता है; इसलिए इसका सबंध कान और जिह्वा से है। उच्चारण के पश्चात् वाचन और लेखन पर क्रमशः विचार करना चाहिए।

(२) वाचन न पिछड़े।

उच्चारण की विशुद्धता के साथ ही यह बात स्मरणीय है कि वाचन पिछडने न पावे। भारत की अनेक भाषाओं की लिपियाँ हिन्दी से मिलती-जुलती हैं, जैसे, मराठी, गुजराती, गुरुमुखी, इत्यादि। इन भाषा-भाषियो को उच्चारण और वार्तालाप के अभ्यास के साथ ही सस्वर वाचन भी सिखाया जा सकता है। सस्वर वाचन हमेशा सु-उच्चारण की सहायता करता है।

अब रहा उन भाषा-भाषियों का प्रश्न, जिनकी लिपियाँ देवनागरी से मिलती-जुलती नहीं है जैसे, तामिल, तेलगू, मलयालम, इत्यादि। यहाँ भी हम वाचन को अधिक उपेक्षित नही रख सकते। दस-ग्यारह वर्ष के बालक यदि केवल उच्चारण और बातचीत के ही पचड़े मे पडे रहे, तो उनका मन इन पाठों से ऊब जाता है। वेस्ट साहब ने इस सम्बन्ध मे उचित ही कहा है कि यह बालक पढना चाहता है, जानना चाहता है। † हमे प्रत्यक्ष-विधि की पूर्वोक्त त्रुटि नहीं करना चाहिए। प्रारम्भिक वार्तालाप के पश्चात् बालक को वाचन का आरम्भ करना श्रेयस्कर है।

(३) वाक्य से शब्द तथा शब्द से वाक्य की ओर।

प्रत्यक्ष विधि के प्रवर्तक अपना कार्य वाक्य से ही आरम्भ करते हैं। कारण, भाषा की इकाई वाक्य है, न कि शब्द। यह सत्य है, तथापि राष्ट्र-भाषा की शिक्षा वाक्यों से आरम्भ नहीं करना चाहिए। प्रत्येक भारतीय भाषा मे ऐसे कुछ शब्द हैं, जो कि हिन्दी मे प्रचलित हैं। हमे भारत की प्रत्येक भाषा के ऐसे प्रचलित शब्दों का सङ्कलन कर सूची तैयार करना चाहिए। ‡ इनमे से कुछ सरल शब्द चुनकर हमे बालको से उनके उच्चारण का अभ्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् इन्ही शब्दो से बने हुए वाक्यो द्वारा हम उन्हे राष्ट्र-भाषा सिखा सकते हैं।

---

* O Jesperson How to Teach a Foreign Language. New York, Macmillan, 1944 p 146

† पृष्ठ २३ देखिए।

‡ अगला अध्याय देखिए।

पर जब ऐसे परिचित शब्द समाप्त हो जायँ, तब अपरिचित शब्दो का प्रयोग करना पडता है। इस समय वाक्य-पद्धति पूर्णतया अपनायी जा सकती है। इन वाक्यो मे अनेक अपरिचित शब्द रह सकते हैं। वाक्य का अर्थ समझने के बाद शब्द समझाये जा सकते हैं।

(४) क्रमिक अभ्यास।

इसके साथ-साथ हमें वाक्यों के ढॉचे की ओर ध्यान देना चाहिए, जैसा कि गठन-विधि के प्रवर्तकों का कहना है। आरम्भ मे एक ही साथ अनेक प्रकार के वाक्य आरम्भ करना उचित नहीं है। इनका क्रमिक उपयोग हितकर होता है, उदाहरणार्थ :

१. बडौदा एक शहर है। (एकवचन)
२. सूरत और बड़ौदा शहर हैं। (बहुवचन)
३. मैं खाता हूॅ। (वर्तमान काल)
४. मै खाता था। (भूत काल)
५. यह कौन है? (कौन?)
६ तुम क्या कर रहे हो? (क्या?)

ऊपर के प्रत्येक उदाहरण से बालक एक प्रकार का वाक्य सीखता है। दूसरे प्रकार का वाक्य तभी आरम्भ करना उचित है, जब कि बालक पहले वाक्य के गठन से पूर्ण परिचित हो जावे। इस तरह क्रमिक अभ्यास की बहुत ही आवश्यकता है।

(५) आगमन पद्धति से व्याकरण।

क्रमिक अभ्यास से व्याकरण का ज्ञान भी आसानी से दिया जा सकता है। पर हमे व्याकरण आगमन पद्धति से सिखाना उचित है। * पाठ के कुछ समान उदाहरणों के द्वारा व्याकरण के नियम चुन सकते हैं।

प्रारम्भिक वाचन-माला ऐसी हो, जिनके गद्य-पाठो के आधार पर व्याकरण सुगमता से सिखाया जा सके। इसके लिए प्रत्येक पाठ में ऐसे उदाहरणों का समावेश हो, जिनके निरीक्षण द्वारा व्याकरण का एक पाठ सुगमता से पढाया जा सके। ऐसी सृजनात्मक पद्धति के द्वारा ही व्याकरण जैसा नीरस विषय भी सरस, आकर्षक, अतएव रुचिकर हो जाता है।

---

* चौथे भाग का चौथा अध्याय देखिए।

(६) लेखन अन्त में आता है।

लेखन-कार्य आरम से ही नही लेना चाहिए। पहले बालको को सुनने दीजिए, बोलने दीजिए, पढने दीजिए, तथा शिक्षक द्वारा श्याम पट पर लिखित शब्दो तथा वाक्यों का अवलोकन करने दीजिए। इस प्रकार और निरीक्षण कर, बालक शब्दों के आकार से पूर्ण परिचित हो जाता है। इस प्रारंभिक कार्य के लगभग दो महीने के पश्चात्, लिखाई शुरू करना चाहिए।

(७) मातृ-भाषा का विचार कर उपयोग।

किसी भी नई भाषा की शिक्षा मातृ-भाषा के ज्ञान पर निर्भर रहती है। यदि बालक की मातृ-भाषा की जड ही अशक्त होगी, तो उसकी विचार शक्ति का पूर्णतः विकास सम्भव नही है। इसके बिना, वह दूसरी भाषा भी ठीक ठीक नही सीख सकता है, जैसा कि कलकत्ता कमिशन रिपोर्ट ने कहा ही है, "A severe training in the use of the mother-tongue is not a rival but a necessary preliminary to training in the use of English." *

नई भाषा को सिखाते समय, बहुधा उसकी तुलना मातृ-भाषा से करनी पडती है; चाहे शब्दार्थ लिया जाय अथवा व्याकरण। शिक्षा का मूल सिद्धान्त ही है: "ज्ञात से अज्ञात की ओर गमन।"

पर मातृ-भाषा का उपयोग सोच-विचार कर करना आवश्यक है। कारण, हिन्दी के घण्टे मे विद्यार्थियो को जितना ही अधिक हिन्दी सुनने, पढ़ने या बोलने का अभ्यास मिलता है, वह उनको उतना ही अधिक लाभास्पद होता है। प्रत्यक्ष अभ्यास से ही भाषा-ज्ञान की वृद्धि होती है। तथापि राष्ट्र-भाषा के घटो मे मातृ-भाषा का उपयोग करना पडता है। कुछ कठिन शब्दो के शब्दार्थ देने के लिए, आरम्भ मे कुछ उपदेश करते समय, उच्चारण या वाचन का आरम्भ कराते समय, अथवा हिन्दी और मातृ-भाषा की विशेषताओ की ओर विद्यार्थियो का ध्यान आकृष्ट करने के समय, बहुधा शिक्षको को मातृ-भाषा का उपयोग करने की आवश्यकता होती है। परतु शिक्षकगण जो कुछ मातृ-भाषा मे कहे, वे राष्ट्र-भाषा मे उसका अनुवाद स्पष्टता-पूर्वक बालको के सामने दोहरावें।

३. शिक्षा के कुछ सिद्धान्त सूत्र

पिछले प्रकरण मे राष्ट्र-भाषा-शिक्षा के कुछ मूल सिद्धान्तों की चर्चा की गई है। इनके सिवा, प्रत्येक शिक्षक को शिक्षा के कुछ उपयोगी सिद्धान्त जानना उचित है। इनका ज्ञान किसी भी विषय के पढाने के लिए लाभदायक है।

---

* Government of India Calcutta University Commission's Report, 1917-19, Vol V Calcutta, Government Printing, 1920, p 32.

(१) ज्ञात से अज्ञात की ओर (From Known to Unknown)

इसका उद्देश्य है, विद्यार्थियो के वर्तमान ज्ञान को आधार मानकर, उन्हें नवीन ज्ञान देना। अतः शिक्षक को पहले से जान लेना चाहिए कि छात्रों को प्रस्तुत विषय का कितना ज्ञान है। इसके बाद युक्ति तथा तर्क के द्वारा वह अज्ञात वस्तुओं और विचारों का परिचय करावे। उदाहरणार्थ, विद्यार्थियों को अपनी मातृ-भाषा के शब्द-भेद की जानकारी रहती ही है। इस अर्जित ज्ञान के आधार पर हिन्दी के शब्द-भेद सिखाये जा सकते हैं।

(२) सरल से जटिल की ओर (From Simple to Complex)

अध्यापक को पहले सरल विषयों का ज्ञान देना चाहिए, पश्चात् कठिन। पुस्तको मे से पहले सहज पाठ पढाना उचित है, और बाद मे कठिन। इस सिद्धान्त का सहारा लेने से बालकों का ज्ञान उत्तरोत्तर सुगमता से बढाया जा सकता है, और बालको को ज्ञान ग्रहण करने मे कठिनाई का अनुभव नहीं होता।

(३) मूर्त से अमूर्त की ओर (From Concrete to Abstract)

प्रारम्भ में विद्यार्थीगण अमूर्त भाव और विचार समझ नहीं पाते हैं। शिक्षकों को चाहिए कि वे पहले कुछ प्रत्यक्ष उदाहरण देवें, फिर युक्ति या अवलोकन के द्वारा उनसे नियम निकलवावें, जैसे, 'पदार्थों पर ताप का प्रभाव' विषय लिया जाय। इसे समझाने के लिए शिक्षक उदाहरण देता है, (१) रेल की पॉतों के मिलन-स्थान पर कुछ स्थान छूटा रहना, (२) खिडकियों के कॉचों का अधिक गर्मी मे अपने आप फूटना, (३) जमे हुए द्रव पदार्थ का गर्मी से पिघल कर फैलना, इत्यादि। इन उदाहरणों के द्वारा शिक्षक बालकों को इस निर्णय पर पहुँचाता है कि गरमी के कारण पदार्थ फैलते हैं।

जहाँ तक हो सके, पाठों में विविधता लानी चाहिए। पाठो की समानता या एक रूपता के कारण विद्यार्थियों का चित्त ऊब जाता है। समय समय पर क्रिया-शीलता (Learning by Doing) द्वारा शिक्षा दी जाय, तथा श्रव्य और दृश्य साधनो (Audio-Visual Aids) का यथोचित उपयोग किया जाय। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पाठ का सम्बन्ध विद्यार्थियों के दैनिक जीवन से जोडना उचित है। इन उपायो के बिना पाठ रुचिकर एवं ग्राह्य नहीं हो सकते। मूर साहब की यह उक्ति द्रष्टव्य है: "Education with inert ideas is not only useless, it is, above all, harmful" *

---

* H, E Moore Modernism in Language Teaching Cambridge, Heffer, 1925 p 24

हमें यह सदा अविस्मरणीय होना चाहिए कि कोई पद्धति दृढ़ नहीं है, और उसमें लचीलापन विद्यमान है। देश, काल तथा व्यक्ति के अनुसार प्रत्येक पद्धति का रूपान्तर करना उचित है। शिक्षा की सफलता इसी सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त में निहित है।

४ पंच-सोपान

इस पुस्तक के प्रत्येक पाठक कदाचित् प्रशिक्षित (ट्रेण्ड) न हों, अतएव उनके लाभार्थ शिक्षा-शास्त्र के पाँच सोपानों का यहाँ उल्लेख किया जाता है। इन पदों के ज्ञान के कारण उन्हें पढ़ाने तथा पाठ-सूत्र (लिसन-नोट) लिखने में सहायता मिलेगी। प्रत्येक पाठ के पढ़ाते समय हर एक शिक्षक को इन पाँच सोपानों का उपयोग करना पड़ता है। इन पदों का उपयोग कर वह पाठ के आरम्भ से अन्त तक क्रमशः चढ़ता है। इनके नाम नीचे की सारिणी में दिये जाते हैं, और इनका सविस्तर वर्णन आगे किया जायगा।

प्रस्तावना.—प्रस्तावना में शिक्षक पहले पिछले पाठ को दोहराता है। तत्पश्चात् वह विद्यार्थियों की दृष्टि पाठ्य-विषय की ओर खींचता है। प्रश्नों-द्वारा, चित्र बताकर, अथवा अन्यान्य उपायों से वह नये पाठ की भूमिका तैयार करता है। जैसे, हमें यदि 'कस्तूरबा' का पाठ पढ़ाना हो, तो हम निम्न लिखित उपायों का उपयोग करके प्रस्तावना कर सकते हैं।

प्रश्न :—(१) गाँधीजी की धर्म-पत्नी का क्या नाम था?

या

चित्र :—(२) कस्तूरबा का चित्र बताकर हम पूछ सकते हैं: यह किसकी तस्वीर है?

हेतु-कथन.—प्रस्तावना के बाद ही हेतु-कथन आता है। यहाँ शिक्षक को पाठ का शीर्षक कहना पड़ता है जैसे, आज हम 'कस्तूरबा' के विषय में पढ़ेंगे। मूल

विचार स्पष्ट शब्दों में बताना चाहिए, तथा श्याम-पट पर पाठ का शीर्षक भी लिख देना आवश्यक है।

विषय-निरूपण.—यह पाठ का सब से अधिक महत्व-पूर्ण अङ्ग है। इसी पद में पाठ के विषय की विशेष चर्चा की जाती है। पाठ्य-विषय के भाव के अनुसार, पाठ को एक एक अन्विति में बॉट देना चाहिए। इससे शिक्षक को पढाने मे सुभीता होता है तथा बालकों को उसे समझने मे सरलता होती है।

उदाहरणार्थ, यदि पूरे घण्टे में 'कस्तूरबा' के पाठ के सात अनुच्छेद शिक्षक पढाना चाहता है तो उसे भावानुसार पाठ को दो या तीन अन्वितियो मे बॉट देना चाहिए। प्रत्येक अन्विति में एक भाव की प्रधानता रहे। पाठ उस स्थिति मे अन्वितियों में न बॉटा जाय, जब शिक्षक यह सोचे कि इसकी कोई आवश्यकता नही है।

शिक्षक प्रत्येक अन्विति की चर्चा करता है, तथा चर्चा के साथ-साथ श्याम-पट पर सार लिखता है। एक अन्विति की समाप्ति के बाद वह उस पर प्रश्न पूछ कर बालकों को आगे की अन्विति की ओर ले जाता है।

इसी प्रकार वह पाठ की सभी अन्वितियो को पढाता है।

पुनरावर्तन—अब शिक्षक पाठ को प्रश्नोंद्वारा दोहराता है। आवश्यकतानुसार, वह कुछ विद्यार्थियों को पाठ का साराश कहने को कहता है। पुनरावर्तन का मुख्य उद्देश्य है पूरे पाठ का दिग्दर्शन कराना, ताकि उसका सम्पूर्ण ज्ञान बालकों के मस्तिष्क पर जम जाय।

प्रयोग—इसके पश्चात् शिक्षक को पाठ पर उचित अभ्यासार्थ प्रश्न देना चाहिए, ताकि विद्यार्थीगण इस पाठ के ज्ञान का समुचित उपयोग कर सकें। यथा सम्भव यह प्रयोग कक्षा में ही समाप्त कर दिया जाय, अन्यथा उसे घर से पूरा कर लाने के लिए दे दिया जाय।

५ उपसंहार

इस अध्याय मे राष्ट्र-भाषा-शिक्षण के मूल सिद्धान्तो की चर्चा की गई है। पहले यह भी बताया जा चुका है कि भाषा के मुख्य तीन अङ्ग हैं: वाचन, वाणी और रचना। इन तीनों अगो की उन्नति पर ही भाषा-विकास होना सभव है। इनकी विस्तृत चर्चा अगले तीन भागों में की गई है। आलोचना करते समय यह बताया गया है कि इस पाठ में वर्णित मूल सिद्धान्तो का राष्ट्र-भाषा की शिक्षा मे हम किस प्रकार उपयोग कर सकते हैं।

—★—

दूसरा भाग

वाचन

पहला अध्याय

परिचय

१. वाचन का महत्व

वाचन एक कला है। यह ज्ञानार्जन की कुंजी है। वाचन शक्ति ठीक रहने पर ही मनुष्य जटिल से जटिल विषय भी पढकर समझ सकता है, तथा पढे हुए अंग का सार बोलकर या लिखकर व्यक्त कर सकता है। सुवाचन के बिना न तो कोई अच्छा वक्ता ही बन सकता है और न ही लेखक।

वाचन मृत्यु पर्यन्त मनुष्य का साथी है। आप अकेले घर मे बैठे हैं, रेल-यात्रा कर रहे हैं अथवा बीमार पडे हैं, ऐसे समय आप एक पुस्तक उठाइए और उसके पठन का मजा चखिए। किन्तु आपको उस वाचन का समुचित आनन्दलाभ तो तभी सम्भव है, जब कि आप पढने के साथ साथ शब्दों का अर्थ ग्रहण कर रहे हों।

आपके बॉचने का आनन्द दूसरे श्रोता भी उठा सकते हैं। आप कोई किताब या अखबार उठा लीजिए, और उसे पढकर दूसरों को सुनाइए। यदि आपका बॉचना स्पष्ट, शुद्ध और मधुर हुआ तो सुननेवाले इसे चाव से सुनेंगे, पर यदि आपकी वाणी कर्कश हुई और उसमे लय एव शक्ति का अभाव हुआ तो थोड़ी ही देर मे आपके पढने का ढंग देखकर श्रोतागण ऊब उठेंगे, वे आपका पढना सुनना न चाहेंगे और आप उनके लिए हँसी के पात्र हो जावेंगे।

यह स्पष्ट है कि सुवाचन से ज्ञान-प्राप्ति और आनन्द-प्राप्ति—दोनो ही हो सकती हैं। मधुर एव सस्वर वाचन का आनन्द वाचक और श्रोता—दोनों समान रूप से उठा सकते हैं।

उपरोक्त कारणो से विद्यालयो मे विद्यार्थियो को वाचन की समुचित शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है। सुवाचन भावी जीवन तथा अध्ययन मे अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है।

२. वाचन-शिक्षा के उद्देश्य

वाचन की शिक्षा के तीन उद्देश्य हैं :

१. विद्यार्थीगण जो कुछ पढे, वे उसका शुद्ध उच्चारण करते हुए पढे। पढने के समय उन्हें स्वर के उतार-चढाव का ऐसा अभ्यास करा दिया जाय कि वे

यथावसार भावों को अनुकूल स्वर मे लोच देकर पढ सके। हम इसे 'सावधारण पठन' की सज्ञा दे सकते हैं।

२. पढते-पढ़ते विद्यार्थीगण विपय का अर्थ ग्रहण कर सकें। अर्थ-ग्रहण ही ज्ञानार्जन का राज-द्वार है। वाचन के इस उद्देश्य का नाम 'भाव-अर्थ-ग्रहण' है।

३. ज्ञानोपार्जन के साथ-साथ विद्यार्थी मे वाचन के प्रति रुचि उत्पन्न होना चाहिए, जिससे वह उस वाचन का उपयोग रचनात्मक कार्यों मे कर सके। इस उद्देश्य का नाम 'वाचन का सदुपयोग' दिया जा सकता है।

इस प्रकार, जब वाचन के इन तीनों उद्देश्यों की त्रिवेणी संगमित परिलक्षित होती है, तब स्वभावतः साफल्यरूपी प्रयाग की उपलब्धि हो जाती है।

३. वाचन के भेद

वाचन के दो भेद हैं; (१) सस्वर वाचन और (२) मौन वाचन। कई लेखक इनके लिए क्रमशः 'वाचन' तथा 'पठन' शब्दो का प्रयोग करते हैं; पर इस पुस्तक मे शब्दात्मक वाचन के लिए 'सस्वरवाचन' तथा मूक पठन के लिए 'मौन वाचन' शब्द ही व्यवहार मे लाये गये हैं।

इन दोनो वाचनों के उद्देश्य तथा कार्य-क्षेत्र अलग अलग होते हैं। उनका विस्तृत विवरण आगे दिया जाता है।

अ. सस्वर वाचन

१. मुख्य गुण.—सस्वर वाचन प्रभावोत्पादक होना चाहिए, ताकि श्रोतागण उससे प्रभावित हो। वाचन-शैली के अन्तर्गत ये बाते आती हैं:

(१) स्पष्ट अक्षरोच्चार (Articulation) अर्थात् प्रत्येक अक्षर को शुद्ध तथा स्पष्ट रीति से उच्चारित करना।

(२) स्पष्ट शब्दोच्चार (Pronunciation) अर्थात् औचित्य और सौन्दर्य के साथ प्रत्येक शब्द को स्पष्ट रीति से पढना।

(३) सुध्वनि (Enunciation) अर्थात् मुँह से प्रत्येक ध्वनि को मधुरता के साथ निकालना।

(४) बल (Emphasis) तथा विराम (Pause) अर्थात् प्रत्येक शब्द को अन्य शब्दो से अलग करके उचित बल तथा विराम के साथ पढना।

(५) स्वरारोह (Intonation) अर्थात् भावो के अनुसार वाक्य के स्वर का उतार-चढ़ाव।

इस तरह सुन्दर सस्वर वाचन के मुख्य तीन गुण हैं :

(१) अक्षरों तथा शब्दो का शुद्ध उच्चारण करते हुए शब्दों तथा वाक्यों को उपयुक्त बल, विराम तथा स्वरारोह के साथ पढना।

(२) मधुरता—इतने जोर से पढ़ना, जिसस सुननेवाले, प्रयास के विना, एक-एक अक्षर स्पष्ट सुन सके, किन्तु इतने जोर से नहीं कि सुननेवालों के कान फटने लगे।

(३) बोध-पूर्वक अर्थात् समझ कर पढना।

सस्वर वाचन के लिए उपर्युक्त गुण अत्यन्त आवस्यक हैं। इनके अतिरिक्त वाचक की वाचन-मुद्रा (Posture and gesture) भी ठीक हो। बॉचते समय, वाचक को पुस्तक अपने बायें हाथ से इस प्रकार पकडना चाहिए कि उसके बीच के मोड पर ॲगूठा आ जाय। यदि पुस्तक बडी हो, या, अखबार जैसी वाचन सामग्री हो, तो उसे दोनों हाथों से पकडना उचित है

बॅाचते समय वाचक की द्रष्टि सदा वाचन-वस्तु पर ही नही जमी रहना चाहिए। वाचक को अपनी दृष्टि-परिधि (Eye span) इस प्रकार साध लेना चाहिए कि वाचन-सामग्री पर एक बार नजर फैलाकर वह दस-पन्द्रह शब्द श्रोताओं के सम्मुख अभिव्यक्त कर सके। इसके अतिरिक्त, वाचन के समय, वाचक का शरीर इधर-उधर बहुत न घूमे, तथा उसका चेहरा प्रसन्नता-पूर्ण तथा स्फूर्ति-दायक प्रतीत हो।

इसके विपरीत, हम विद्यार्थियो के सस्वर वाचन मे अनेक दोष देखते हैं: (१) अनुचित गति—अति त्वरित या मन्थर, (२) अशुद्ध एव अस्पष्ट उच्चारण, (३) अनुचित अवधारण (बल तथा लय), (४) सावृत्ति पठन (दोहरा दोहरा कर पढना), (५) असम्बद्ध शब्द-योग और (६) अनुचित स्वरारोह—बहुधा गा-गाकर पढ़ना।

प्रत्येक कक्षा में प्रत्येक शिक्षक को बहुधा थोड़े बहुत ऐसे विद्यार्थी मिला करते हैं, जो सस्वर वाचन मे बहुत कच्चे होते हैं। यदि शिक्षक उन पर विशेष ध्यान देवें, और बार-बार उन्हींसे पढवावे, तब तो अच्छा पढनेवाले छात्रों को सजा-सी हो जाती है। शिक्षको को इस दोष से बचना चाहिए।

कच्चे लडको को पाठ के आरम्भ मे कठिन शब्द पढने देना चाहिए तथा पाठ के अन्त मे सस्वर वाचन। मिडिल स्कूलों में प्रत्येक शिक्षक चार-पाच विषय एक ही कक्षा मे पढाते हैं। बहुधा देखा गया है कि कुछ बालक जो पढने मे कच्चे होते हैं, उनके अन्य एकाध विषय बहुधा अच्छे होते हैं। शिक्षको को चाहिए कि वे वाचन के कमजोर छात्रों को उनके सबल विषयो के काम मे कमी करके अवशेष समय सस्वर वाचन के लिए निकाल दे।

२. सस्वर वाचन-प्रयोग.—अब प्रश्न यह है कि सस्वर-वाचन सिखाने पर क्यो परिश्रम किया जाय? प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए अधिक दूर भटकने की आवश्यकता नहीं है। आप जहॉ द्रष्टि फैलावेंगे, आपको वही सस्वर वाचन की आवश्यकता दिखाई पडेगी। पारिवारिक जनों मे या मित्र-मण्डली मे पत्र या समाचार पत्र पढ़ कर सुनाते समय, सभा-समितियों मे अभिनन्दन-पत्र तथा विवरण बॉचते समय, जनता के सामने कविता-पाठ करने या उद्धरण सुनाते समय तथा ऐसे ही अनेक अवसरों पर सस्वर वाचन की आवश्यकता अनुभूत होती है। मधुर सस्वर (प्रकट) वाचन श्रोता के हृदय पर जादू के समान असर करता है। यह भी देखा गया है कि कुशल सस्वर वाचक अच्छे वक्ता निकलते हैं। वाचक मे अनुचित या मिथ्या लज्जा का अभाव वाञ्छनीय है।

३. सस्वर वाचन के भेद.—सस्वर वाचन के दो मुख्य भेद हैं: (१) व्यक्तिगत और (२) समवेत। व्यक्तिगत वाचन के समय एक ही व्यक्ति बॉचता है। समवेत वाचन के समय एक से अधिक व्यक्ति एक ही पाठ को एक साथ बॉचते हैं। समवेत वाचन के समय सामान्यतः उच्चारण तथा स्वर के आरोह-अवरोह की ओर ध्यान रखना पड़ता है। पर अभिनय-गीत या पंक्तियों के समवेत वाचन के समय वाचकवृन्द को यथोचित भाव-भगी प्रदर्शित करना चाहिए।

समवेत वाचन केवल वही कराना चाहिए, जहॉ छात्रों का उच्चारण समवेतरूप से कराना अभीष्ट हो। प्रारम्भिक अवस्था मे, विशेष प्रकार के उच्चारण का अभ्यास कराने के लिए, तथा जहॉ विद्यार्थियो का सस्वर वाचन ठीक कराना हो वहॉ समवेत वाचन की आवश्यकता पडती है।

आ. मौन वाचन

१. महत्व.—मौन वाचन का अर्थ है कि वाचक स्वयं मूक होकर पाठ्य-पुस्तक के विषय का अध्ययन करता है। इसका मुख्य उद्देश्य है कि पाठक दत्तचित्त होकर पठनीय विषय का भावार्थ ग्रहण कर सके, अपने प्रश्नो का उत्तर पा सके तथा अपनी समस्याओ का समाधान कर सके। मौन वाचन मनुष्य-जीवन मे बहुत ही उपयोगी है।

प्रौढ-जीवन मे वाचन का अधिकाश कार्य मौन-वाचन से ही करना पडता है। ज्ञानोपार्जन के लिए ही कहिए, या मनोरञ्जन के लिए ही कहिए प्रत्येक व्यक्ति को मौन वाचन पर ही निर्भर रहना पडता है।

२. मुख्य गुण—मौन-वाचन के अन्तर्गत निम्नाकित बाते आवश्यक हैं :

(१) बिना उच्चारण किये पढना तथा अर्थ ग्रहण करना।

(२) पढते-पढते विचार-शक्ति का प्रयोग करना।

(३) पाठ्य-विषय को मन-ही-मन विराम, गति, लय तथा प्रवाह के साथ पढना।

बहुत से विद्यार्थी मौन वाचन के समय निरर्थक अपने ओठ हिलाते रहते हैं। शिक्षकों को इसे रोकना चाहिए। शिक्षक की दृष्टि विद्यार्थियों की ऑखों की गति की ओर भी अवश्य रहे। पठन के समय विद्यार्थी को विषय का अर्थ समझना पडता है। उसकी ऑखो को वही ठहरना चाहिए, जहॉ कि एक विचार समाप्त हो। यदि विद्यार्थी की ऑख यहॉ-वहॉ घूमती हो तो यह समझना चाहिए कि वह पाठ का अर्थ ठीक नही समझ रहा है। मौन-वाचन का प्रारभिक अभ्यास बहुत ही जरूरी है।

३ अध्ययन.—किसी भी विषय के गम्भीरता-पूर्वक पठन को अध्ययन कहते हैं। यथार्थ मे अध्ययन मौन वाचन का ऊँचा स्तर है। अध्ययन ज्ञानोपार्जन की मूल कुञ्जिका है। मौन वाचन के उचित अभ्यास के बिना अध्ययन असम्भव है। अध्ययन मे निम्नाकित गुण आवश्यक हैं :

(१) दृष्टि-सोपान को विस्तीर्ण कर, शीघ्रगति से पढना। अभ्यस्त पाठक ही यह कर सकता है। इसके बिना पढाई द्रुतशील नही हो सकती।

(२) पढते-पढते लिपि-बद्ध विचारों को समझना।

(३) विश्लेषण — अनावश्यक भाग को बाद देना। यह देखा गया है कि कई पुस्तकों में बहुत सा अश ऐसा रहता है, जिससे पाठक की ज्ञान-वृद्धि नहीं होती। ऐसे अशों के पन्ने उलटाने मात्र से काम चल सकता है।

(४) निष्कर्ष — पठित भाग का सार, तत्व या निचोड निकालना।

४. **मौन वाचन का आरम्भ.**—मौन वाचन ऊँची क्रिया है। सस्वर वाचन के प्रारम्भिक अभ्यास के बाद, मौन वाचन शुरू होता है। इसका आरम्भ तभी कराना

चाहिए, जब छात्रों की योग्यता इतनी बढ़ चुकी हो कि वे वेग से बाँच सकते हों, बाँच कर समझ सकते हों तथा उनका उच्चारण ठीक होने लगा हो। जब तक बालक कम-से कम २०० (दो सौ) शब्द न जान ले, तब तक मौन वाचन आरम्भ न किया जावे। मौन वाचन का विशेष अभ्यासारम्भ ऊँची कक्षाओं मे कराना चाहिए। अभ्यास देते समय, विद्यार्थियो पर शिक्षक की विशेष देखरेख आवश्यक है, जिससे विद्यार्थीगण मौन पठन के उच्चतम सोपान अध्ययन पर उत्तरोत्तर पहुँच सके।

४. सस्वर वाचन और मौन वाचन

अब यह देखना है कि पाठ्य पुस्तक के अध्यापन के समय सस्वर वाचन और मौन वाचन का उपयोग किस क्रम से करना उचित है। इसका उल्लेख नीचे किया जाता है।

अ. सस्वर वाचन

(१) अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन (व्यक्तिगत सस्वर वाचन)।

(२) समवेत वाचन (निम्न कक्षाओं के लिए)।

(३) छात्रों द्वारा व्यक्तिगत सस्वर वाचन।

आ. मौन वाचन.—(छात्रो द्वारा, वे पाठ के विषय का भावार्थ हेतु–प्रश्नो द्वारा खोज निकालते हैं।)

इ. छात्रों द्वारा व्यक्तिगत सस्वर वाचन.—(विचार विश्लेषण के पश्चात्)।

इस तरह पाठ्य-पुस्तक पढ़ाते समय वाचन के तीन क्रम हैं : सस्वर—मौन—सस्वर। अध्यापक अपने आदर्श वाचन के द्वारा पाठ के वातावरण की सृष्टि करता है तथा छात्रों के सामने एक आदर्श रखता है। वह बताता है कि उन्हें पाठ का शब्दोच्चार किस प्रकार करना चाहिए।

उसके बाद, नीचे की कक्षाओं मे समवेत वाचन की आवश्यकता पडती है। शिक्षक एक अंश को स्वय भाव-पूर्ण ढङ्ग से पढता है, और कक्षा के सब विद्यार्थी एक साथ उसकी आवृत्ति करते हैं। ऐसा करने से स्वर सधता है, और वाचन–संस्कार दृढ होता है। ऊँची कक्षाओ मे समवेत वाचन का प्रयोग न किया जाय।

आदर्श तथा समवेत वाचन के पश्चात्, विद्यार्थियो का व्यक्तिगत सस्वर वाचन आता है। यह वाचन चुने हुए छात्रों द्वारा कराया जाय। इसका मुख्य उद्देश्य उस वाता-

चरण को कायम रखना है, जिसकी सृष्टि अध्यापक अपने आदर्श वाचन के द्वारा करता है। यदि समय का अभाव हो तो इसे छोड़ दिया जाय।

सस्वर वाचन के पश्चात् मौन वाचन आता है। इस समय छात्र-वृन्द पाठ को पढ़ते हैं, तथा उसका भावार्थ निकालते हैं। बहुधा विद्यार्थीगण ठीक भावार्थ निकालने में समर्थ नहीं होते। इस कारण, शिक्षक मौन वाचन के पूर्व एक-दो हेतु-प्रश्न श्याम-पट पर लिख देता है। उनके जरिए भावार्थ निकालना सरल हो जाता है। नीचे की कक्षाओं में, या, जब पाठ सरल हो तब, मौन वाचन की आवश्यकता नहीं रहती है।

इसके बाद पाठ का विचार-विश्लेषण होता है। तत्पश्चात् छात्रों का व्यक्तिगत सस्वर वाचन फिर से आता है। इस प्रकार वाचन के द्वारा, पूरे पाठ का सार विद्यार्थियों के हृदयों पर अंकित हो जाता है, तथा कुछ कमजोर विद्यार्थियों को शब्दोच्चार का अभ्यास करने का अवसर भी मिल जाता है।

ऊपर वर्णित विवेचन से स्पष्ट होता है कि वाचन पाठों में, वाचन के तीन क्रम हैं : सस्वर—मौन—सस्वर। इनकी विस्तृत चर्चा इस भाग के तीसरे, चौथे, पाँचवें तथा छठे अध्याय में की गई है। अगले अध्याय में पाठ्य पुस्तक के विवरण की चर्चा है। चूँकि उपयुक्त पाठ्य पुस्तक होने तथा उसके अध्ययन एवं अध्यापन की उपयुक्त पद्धति पर सुवाचन बहुत कुछ निर्भर रहता है, इसीलिए पहले पाठ्य-पुस्तक के विषय पर विचार करना आवश्यक है।

—— * ——

दूसरा अध्याय

पाठ्य पुस्तक

१. आवश्यकता

भाषा-शिक्षण बहुत कुछ पाठ्य पुस्तकों पर निर्भर रहता है। वाचन, वार्तालाप, व्याकरण, रचना आदि सीखने और सिखाने के लिए, पाठ्य पुस्तक एक प्रमुख साधन है। इसके बिना न शिक्षक ही काम चला सकता है, और न विद्यार्थी ही। व्यक्तित्व का विकास, ज्ञानार्जन तथा मनोरंजन प्राप्त करना पाठ्य पुस्तक पर ही आधारित रहते हैं।

परन्तु अत्यन्त खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमारे देश मे राष्ट्र-भाषा की बहुत कम अच्छी पुस्तके लिखी गई हैं। उनमे न तो विषयों का चुनाव ही ठीक है, न भाषा-शैली ही उपयुक्त है, न क्रम का ध्यान ही है, और न उचित अभ्यास ही दिए गये हैं। उनकी छपाई सफ़ाई भी आकर्षक नहीं है। उपयुक्त पाठ्य पुस्तकों के अभाव के कारण राष्ट्र-भाषा का प्रचार अहिन्दी क्षेत्र मे ठीक ठीक नही हो रहा है, जिसकी आज नितान्त आवश्यकता अनुभव की जाती है।

२. प्रकार

इस अध्याय मे केवल वाचनोचित पाठ्य पुस्तकों की चर्चा की गई है।* उपयोग की दृष्टि से पाठ्य पुस्तके दो प्रकार की होती हैं : (१) सूक्ष्म पाठ (Intensive reading) के लिए और (२) द्रुत पाठ (Extensive reading) के लिए।

सूक्ष्म पाठ की किताबे गम्भीर पाठ के लिए हैं। इनके पाठों का मुख्य उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी पाठ्य-पुस्तक की भाषा का अत्यन्त बारीकी से अध्ययन करे, तथा उसका पूरा-पूरा अर्थ समझ सके। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि विद्यार्थी पाठ्य पुस्तक मे प्रयुक्त प्रत्येक शब्द तथा मुहावरो का ठीक ठीक उपयोग कर सके, ताकि वे उसकी व्यावहारिक (सक्रिय) शब्दावली (Active vocabulary) के अन्तर्गत

---

* व्याकरण तथा रचना की पुस्तकों की चर्चा, आगे **चौथे भाग** में इन्हीं विषयों के अध्यायों में की गई है।

आ जावें। सूक्ष्म पाठ के लिए प्रत्येक वर्ष में प्रायः एक से अधिक पुस्तक नहीं पढ़नी पड़ती है।

द्रुत-पठन की किताबें शीघ्र पठन के लिए हैं। इनका उद्देश्य शीघ्र गति से वाचन का अभ्यास कराना है। बालक जितनी जल्दी और जितनी अधिक किताबें पढ़ सके, उतना ही अच्छा है। द्रुत पठन के लिए न भाषा की व्याख्या की आवश्यकता है, और न शब्दार्थ समझाने के लिए ही विशेष श्रम अपेक्षित है। विद्यार्थी को स्वयं ही पाठ का भावार्थ समझना पड़ता है, तथा कठिन शब्दों के अर्थों का अनुमान कर लेना पड़ता है। यदि आवश्यकता हो तो विद्यार्थी शिक्षक की सहायता ले सकता है, या, स्वयं शब्द-कोष का उपयोग कर सकता है। यह भी आवश्यक नहीं है कि विद्यार्थी पढ़े हुए शब्दों तथा मुहावरों का तुरन्त ही अपने वाक्यों में उपयोग कर सके। इतना पर्याप्त होगा कि ये शब्द बालक की निष्क्रिय शब्दावली (Passive vocabulary) के भाग बन जावें।

सार अर्थ यह है कि सूक्ष्म पाठ के समय विद्यार्थियों को शिक्षक की सहायता की बहुत कुछ आवश्यकता पड़ती है, परन्तु द्रुत पाठ विद्यार्थियों को स्वावलम्बी होना सिखाते हैं। शिक्षकगण उन्हें मार्गदर्शन करावें परन्तु अधिक मदद देकर उन्हें परावलम्बी न कर दें।

३. सूक्ष्म पाठ्य पुस्तक के आवश्यक गुण

पाठ्य पुस्तक लिखने या चुनने के समय दो बातों की ओर ध्यान देना पड़ता है: (१) बाहरी रूप और (२) भीतरी रूप। बाहरी रूप का अर्थ है कि देखने में पुस्तक का रूप-रंग, आकार-प्रकार, आवरण, आदि कैसा है। वह विद्यार्थियों का आकर्षण प्राप्त कर सकती है या नहीं। पुस्तक के भीतरी रूप से हम समझते हैं उसकी भाषा, शैली, पाठ्य-विषय, पाठों का क्रम, इत्यादि। अब इन दोनों रूपों पर विचार किया जाता है।

अ. बाहरी रूप

प्रथम दर्शन मानव-हृदय पर अधिकाधिक प्रभाव डालता है। नवीन पाठ्य-पुस्तक के मिलते ही, बालक उसे उलट-फेर कर देखता है, उसके पन्ने उलटता है, तस्वीरों को देखता है, विषय-सूची पढ़ता है, आदि। यदि पुस्तक अपने बहिरंग से बालक को आकृष्ट कर सकी, तो वह उसे स्वयं पढ़ना आरम्भ कर देता है। वह उसे दूसरों को दिखाता है। वहाँ उसे स्वयं पढ़ता और उसकी चर्चा मित्रों से करता है। वह प्रायः एक विजेता की नाईं, पुस्तक को बगल में लेकर इधर-उधर घूमता फिरता है।

पुस्तक कैसे आकर्षक हो सकती है? निम्नांकित गुणों की उपस्थिति में पुस्तक का आकर्षक होना सम्भव है।

१. आवरण.—पुस्तक का आवरण मनोहर होना चाहिए। निम्न कक्षाओं के विद्यार्थीगण रंगीन एवं नयनाभिराम आवरण ही पसन्द करते हैं, पर उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों को ऐसा आवरण बेढब-सा लगता है। आडम्बर-रहित तथा कलापूर्ण आवरण उन्हें आकृष्ट करता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है।

२. कागज.—पाठ्य-पुस्तक का कागज पतला और चमकदार न हो। पाठ्य पुस्तक का मुद्रण मोटे और सुन्दर कागज पर होना चाहिए। मुद्रित अक्षर सीधे-सादे हों, सुडौल हों, गाढी स्याही मे प्रकाशित हों, पर अलंकृत न हों। माध्यमिक शाला की प्रथम कक्षा मे अक्षरों का साईज सोलह पाइंट, दूसरी और तीसरी मे चौदह पाइंट तथा अन्य कक्षाओं मे बारह पाइंट होना चाहिए। काले पाइका अक्षरों का प्रयोग आवश्यक है। छापते समय दो पंक्तियों के बीच कम-से-कम एक चौथाई इंच का अन्तर होना चाहिए। पहली कक्षा मे दुगुने अन्तर की आवश्यकता है। पुस्तक की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई बालकों की शारीरिक योग्यता के अनुकूल हो।

३. चित्र.—पाठो के साथ वर्णित विषयों के उपयुक्त चित्रों की योजना होनी चाहिए। नीचे की कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों को अधिक रोचक तथा कुछ रंग-बिरंगे चित्रों से सजाना-धजाना आवश्यक है।

४. अन्य बातें.—पुस्तक की सिलाई-बँधाई मे मजबूती होनी चाहिए। पुस्तक का मूल्य भी अनुकूल और यथा-सम्भव सुलभ होना चाहिए।

इन उपायों से पुस्तक आकर्षक और मोहक हो सकती है। ऐसी पुस्तक को देखते ही बच्चे उसे पाने और पढ़ने के लिए ललच उठते हैं, उनके हृदय मे आतुरता की लहर दौड़ जाती है, और फिर तो पुस्तक को एक बार पा लेने पर वे उसे छोड़ना ही नहीं चाहते हैं।

आ. भीतरी रूप

पुस्तक के बाहरी रूप की अपेक्षा भीतरी रूप अत्यधिक महत्व का होता है। बाहरी रूप विद्यार्थियों को आकृष्ट अवश्य करता है, पर यदि पुस्तक के पाठ, विषय, आदि उनकी मानसिक अवस्था के अनुरूप न हुए तो उनका मन उनसे ऊब जाता है। भीतरी रूप—अन्तरङ्ग—की दृष्टि से सफल पाठ्य पुस्तक मे निम्न लिखित बातें होनी चाहिए।

१. क्रमिक पाठ्य पुस्तक.—पाठ्य पुस्तकों को बहुत समझ-बूझ कर चुनना चाहिए। शिक्षा का एक सूत्र है : 'सरल से जटिल की ओर'। इस कारण क्रमिक पाठ्य पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता है। पुस्तकों की भाषा तथा पाठ्य-विषय प्रत्येक कक्षा के विद्यार्थियों की बौद्धिक और मानसिक योग्यता के अनुरूप हो। प्रारंभीय पुस्तकों की भाषा

सरल तथा विषय बालक की अनुभव-परिधि के भीतर के हों। ऊँची कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों की भाषा क्रमशः गुम्फित और जटिल होनी चाहिए, तथा पाठों के विषय वर्णनात्मक से उत्तरोत्तर बढ़ते हुए कल्पना-प्रधान और विचार-प्रधान तक होना चाहिए। इस प्रकार, विद्यार्थियों की भावाभिव्यक्ति का पक्ष प्रशस्त होने के साथ ही, उनकी भाषा, कल्पना तथा विचार-सकलन की शक्ति-पुष्टि करने की क्षमता पाठ्य पुस्तक के पाठों द्वारा होनी चाहिए।

एक कक्षा की पाठ्य पुस्तक मे भी इस नियम का पालन करना उचित है। प्रारंभिक पाठो की भाषा तथा विषय सरल हो। पाठो के लिखने का ढङ्ग शिक्षा-सिद्धान्त तथा मनोविज्ञान के नवीनतम प्रयोगों और अनुसन्धानो के अनुसार हो।*

२. उपयुक्त भाषा.—पाठ्य पुस्तकों का मूल उद्देश्य है 'भाषा-सम्बन्धी योग्यता बढाना'। पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि पुस्तको मे कठिन शब्दो और मुहावरो का बाहुल्य हो, जिनके कारण विषय दुर्गम और दुरूह हो जावे। ऐसी स्थिति मे कठिन शब्दो एव मुहावरों का क्रमिक प्रयोग वाछनीय है। पाठय पुस्तकों के लेखक नये शब्दों का उपयोग किसी भी अव्यवस्थित रूप मे नहीं कर सकते। माध्यमिक शालाओं के लिए, निश्चित क्रम के अनुसार शब्दावली की आवश्यकता है। शब्दावली की योजना मे निम्नाकित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(१) हिन्दी-क्षेत्रीय-आवृत्ति-मूलक शब्दावली (Hindi-Regional Word Frequency List) की आवश्यकता.—पहले ही बताया जा चुका है कि पाठ्य पुस्तको मे नये शब्दों का उपयोग क्रमिक हो। इसके लिए प्रत्येक कक्षा के अनुकूल एक क्रमिक शब्दावली की आवश्यकता है। शब्दो के चुनाव के समय दो बातों की ओर ध्यान रखना चाहिए : (अ) 'सरल से जटिल' और (आ) 'उपयोगी (जो शब्द जीवन मे वारवार आते हों) से कम उपयोगी'।† शुरू-शुरू की कक्षाओं मे भाषा अवश्य सरल हो, लेकिन इसके साथ-साथ हमे यह भी देखना चाहिए कि विद्यार्थीगण प्रारम्भ मे उन हिन्दी शब्दों से परिचित हों, जिनका उपयोग दैनिक जीवन मे ज्यादातर या बारबार होता हो।

इस तरह, पाठ्य पुस्तक लिखने मे शब्दो की क्रमिक सरलता तथा वारवार आवृत्ति की ओर ध्यान रखा जावे। पुस्तक-क्रम का प्रारम्भ सरल और वारवार आने वाले शब्दों से होवे, तथा उनमे धीरे धीरे जटिल और कम उपयोगी शब्द आवें। इसी आधार पर अँग्रेजी भाषा की २,००० शब्दों की एक शब्दावली बनाई गई है। क्रमिक पाठ्य

---

* **हिन्दी प्रवेशिका** की चर्चा विशेष रूप से **अगले अध्याय** में की गई है।

† M West **Language in Education** Calcutta, Longmans, 1932 p. 81

पुस्तकों के लिखते समय इन शब्दों का क्रमिक उपयोग पुस्तकों के अनुमान से किया जाता है।*

आजकल बहुत सी पुस्तकें इसी ढङ्ग पर लिखी जा रही हैं। जिन प्रान्तों में अँग्रेजी शिक्षा के लिए गठन पद्धति प्रचलित है, वहाँ के शिक्षा-विभाग ने प्रत्येक कक्षा के लिए कुछ वाक्य गठन तथा शब्द-रूपान्तर निर्धारित किये हैं।

राष्ट्र-भाषा की पुस्तकों को भी इसी ढङ्ग से लिखना उचित है। पर हिन्दी भाषा की ऐसी कोई शब्दावली अभी तक तैयार नहीं हुई है। इसके साथ हमें यह भी याद रखना चाहिए कि आज हिन्दी मातृ-भाषा भी है और राष्ट्र-भाषा भी। इस कारण हिन्दी-शिक्षा के लिए दो पृथक् शब्दावली की जरूरत पड़ेगी — हिन्दी-आवृत्ति मूलक शब्दावली और राष्ट्र-भाषा-आवृत्ति मूलक शब्दावली।

इस पुस्तक का उद्देश्य है, राष्ट्र भाषा की शिक्षा की आलोचना। इस कारण इसका सम्बन्ध दूसरे प्रकार की शब्दावली से ही है। पर राष्ट्र-भाषा शिक्षा का कार्य एक ही शब्दावली से नहीं चलेगा। वरन् प्रत्येक अहिन्दी क्षेत्र के लिए एक स्वतन्त्र राष्ट्र-भाषा-आवृत्ति-मूलक शब्दावली की आवश्यकता होगी। हमें ध्यान रखना पड़ेगा कि भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा की कुछ-न-कुछ विशेषताएँ हैं, तथा प्रत्येक भाषा में अनेक शब्द ऐसे हैं, जो हिन्दी शब्द में प्रचलित हैं, पर जो हिन्दी शब्द एक भाषा में प्रचलित हैं, वे सब-के-सब दूसरी भाषा में प्रचलित नहीं हैं। इस तरह हमें प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा में प्रचलित हिन्दी शब्दों की पृथक् पृथक् तालिका तैयार करना पड़ेगी।

इन सूचियों में दो प्रकार के शब्द रहेंगे: (१) वे हिन्दी शब्द जो क्षेत्रीय भाषा में प्रचलित हैं और (२) हिन्दी के ऐसे शब्द, जिनका उपयोग दैनिक काम-काज में अधिक होता है। दोनों प्रकार के शब्दों को मिलाकर प्रत्येक क्षेत्र की माध्यमिक शालाओं के लिए, २,००० शब्दों की शब्दावली नियोजित की जावे। इनमें से १,००० शब्द मिडिल स्कूल में सिखा देना चाहिए। ये शब्द ऐसे हों जो क्षेत्रीय भाषा में अधिकतर प्रचलित हों, तथा वार्तालाप के लिए उपयोगी हों।†

पर इस सूची के सभी शब्दों को, एक ही साथ, एक ही वर्ष, एक ही वर्ग में पढ़ाना असम्भव तथा अनुचित है। 'सरल से जटिल' तथा 'उपयोगी से कम उपयोगी'

---

* F G. French. The Teaching of English Abroad, Vol I London, O U. P, 1948 p 29

† तीसरे भाग का तीसरा अध्याय देखें

सूत्रों का ध्यान रखकर हमे ठीक करना पडेगा कि पहली कक्षा मे कौन से शब्द सिखाये जायॅ, द्वितीय कक्षा मे कौन से, तृतीय मे कौन से इत्यादि ।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक कक्षा की शब्दावली को विभिन्न पाठो में ठीक ठीक बॉटना उचित है। जहॉ तक हो सके, किसी भी पाठ मे दस-बारह से अधिक नये शब्दों का समावेश न हो। प्रत्येक पुस्तक के लेखकों को यह भी देखना उचित है कि किसी भी अनुच्छेद मे एक साथ अनेक नये शब्द न आवें। अधिक से अधिक दो या तीन नये शब्द, एक अनुच्छेद मे आ सकते हैं ।

इस चर्चा से यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि प्रत्येक क्षेत्र की हिन्दी पुस्तकें भिन्न-भिन्न प्रकार की होंगी, क्योकि उस भाषा की हिन्दी-शब्दावली अलग ही होगी ।

(२) **क्रमिक रचना तथा व्याकरण.**—शब्दावली के साथ साथ हमे आरम्भीय पुस्तकों मे व्याकरण-शिक्षा की ओर ध्यान देना पडेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि आरम्भ से व्याकरण पढाया जाय, तथापि हमें छात्रों को वाक्यों के स्वरूप या ढॉचो से परिचित कराना होगा। आरम्भ मे सरल और सर्वाधिक उपयोगी, फिर और कठिन तथा कम उपयोगी। इस प्रकार क्रम-पूर्ण शिक्षा देनी होगी। व्याकरण की शिक्षा भी इस प्रकार क्रम-बद्धता-पूर्ण रहे ।

मिडिल स्कूल मे, हम बालक के हाथ वाचन, रचना तथा व्याकरण की पुस्तकें अलग-अलग नहीं दे सकते हैं। वाचन की पुस्तक के आधार पर ही रचना तथा व्याकरण पढाना होगा। पर भाषा के घण्टे मे हम पाठ का साराश पूछ सकते हैं, तथा वाक्य-रचनाओं का अभ्यास करा सकते हैं, पर व्याकरण नहीं पढा सकते हैं। व्याकरण के पिरियड अलग होना चाहिए ।

इस प्रकार प्रत्येक कक्षा की शब्दावली के साथ, उपयोगी वाक्यों की भी एक सूची तैयार करना चाहिए। इसके साथ-साथ यह भी निर्णय करना होगा कि क्या व्याकरण सिखाया जाय? वाचन की पाठ्य पुस्तकें इन्हीं सूचियो एव निर्णयों के आधार पर निर्मित की जावें ।

(३) **मुहावरे.**—मुहावरों तथा उक्तियों का प्रयोग भी समझ कर करना चाहिए। पहले ये घरेलू हों, जो क्रमशः साहित्यिक होते चलें ।

(४) **अश्लीलता आदि दोषों का परिहार**—किसी भी पाठ मे कोई शब्द, अश या उक्ति ऐसी न हो, जिससे अश्लीलता की बू आवे, तथा विद्यार्थियों की वासनात्मक

भावनाओ को उत्तेजना मिले। निन्दा, उपहास आदि के शब्दो का प्रयोग भी न हो· क्योकि ऐसे शब्द भी बालको की मनोवृत्ति पर कुसंस्कार छोड जाते हैं।

२. योग्य विषय.—पाठ्य-सामग्री मनोरजक और छात्रो की रुचि के अनुकूल हो। मिडिल स्कूल की कक्षाओ की पाठ्य-पुस्तकों मे घर, बाजार, निकटस्थ वातावरण तथा दैनिक व्यवहार मे आने वाली बातो का समावेश हो। हाईस्कूल की कक्षाओ मे साहित्यिक निबन्ध तथा रचना को पढा सकते हैं। बम्बई शिक्षा-विभाग ने राष्ट्र-भाषा की पाठ्य-पुस्तको मे निम्नलिखित विषयो का समावेश करने का निर्देश किया है :

(१) **मिडिल स्कूल.**—उत्सव, विशिष्ट दिवस का समारोह, यात्रा, पोस्ट-आफिस, बाजार, रेलवे स्टेशन, खेल, आरोग्यता, तात्कालिक उपाय, विशिष्ट शौक (Hobby), ऋतु, आसपास के राज्यों के दर्शनीय स्थान, नागरिक कर्तव्य, नैतिक शिक्षा, स्वदेश-प्रेम, भाईचारा, प्राकृतिक सौन्दर्य, कला, शिल्प, राज्यशासन, राष्ट्रीय अर्थ-योजना।

(२) **हाईस्कूल.**—हाईस्कूलो की पाठ्य पुस्तको मे हिन्दी के प्रसिद्ध लेखको की रचनाएँ हो। इनके निर्माण मे इन विषयो का ध्यान रखना चाहिए: जीवन-चरित्र तथा आत्म-कथा. प्रसिद्ध पुरुषो के भाषण तथा लेख, उपन्यास, नाटक तथा संवादों से चुने हुए अंश यात्रा तथा अभियान. कहानी तथा निबन्ध आविष्कार की कहानियाँ, भारत की सुसन्तानो की कृतियाँ: विश्वकल्याण के लिए कार्य, ज्ञान की खोज, इत्यादि।

ऊपर की तालिका में विविध विषयो का समावेश है— कथा-कहानी, जीवनी, वर्णन तथा यात्रा, वैज्ञानिक लेख, सामाजिक लेख, विचारात्मक तथा आलोचनात्मक लेख। पाठ्य-सामग्री के क्रम मे विद्यार्थियो की बौद्धिक और मानसिक योग्यता का ध्यान रखा गया है, क्योकि वर्णनात्मक पाठो से उत्तरोत्तर बढ़ते हुए कल्पना-प्रधान, विचार-प्रधान तथा गवेषणात्मक विषयो की योजना उपर्युक्त विषय-तालिका मे है। पाठ्य पुस्तकें लिखते समय इन बातो का ध्यान सदैव सतर्कता पूर्वक रखना चाहिए। चारित्रिक तथा बौद्धिक शक्ति की वृद्धि के लिए, कुछ आदर्श पाठो का होना अनिवार्य है पर इनका उपदेश कथादि के आवरण से ढॅका न हो, याने, कथादि प्रधान तथा उपदेश गौण न हो जावें। पाठ्य पुस्तक को धर्म-शास्त्र का रूप न मिल जाय, इसका ध्यान रखना चाहिए।

पाठो का सम्बन्ध विद्यार्थियो के पूर्व ज्ञान तथा अन्य विषयो के समकक्षीय ज्ञान से रहे। बहुधा देखा जाता है कि लेखकगण ऐसा नही करते। वे इतिहास, भूगोल या

विज्ञान के ऐसे पाठ पुस्तक मे रखते हैं, जिनका विद्यार्थियों के पूर्व या समकक्षीय ज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। ऐसे पाठो को समझने के लिए छात्रो को विशेष कठिनाइयॉ झेलनी पडती हैं।

पाठ्य पुस्तक मे, गद्य पाठों के साथ कुछ चुने हुए पद्य पाठो का समावेश हो। सुन्दर और सुबोध गीतों से पाठ्य पुस्तकों की रोचकता बढ़ती है। पद्य-पाठ सरल तथा साधारण कविताओ तथा तुकबन्दियो से आरम्भ किये जाना चाहिए। फिर, ऊँची कक्षाओ की पाठथ पुस्तकों मे क्रमशः ऐसे पद्य हों, जिनमे सुरुचि, भाव-सारल्य तथा उदात्त प्रवृत्तियों को विकसित करने की शक्ति हो। कविताओ मे भिन्नता या विविधता चाहिए, जैसे, देश-भक्ति के गीत, प्रार्थना-गीत, प्रकृति-सम्बन्धी गीत, कथात्मक गीत, आदि। पद्य सदैव ऐसे चुने जावें जो सुगमता से कठस्थ किये जा सके और जिनमे सगीत विद्यमान हो, याने जो गेय हों।

४. **उचित शैली**—पुस्तकों की शैली आकर्षक, मनोरञ्जक तथा विद्यार्थियों की औसत सामान्य-रुचि के यथा सभव निकट होवे। शैली ही लेखक के व्यक्तित्व की परिचायक होती है। विविध शैलियो का परिचय विद्यार्थी के ज्ञान-क्षितिज को विस्तृत करता है, और उन्हीके आधार पर बालक अपनी लेखन-शैली चुनता है। इस कारण प्रत्येक पुस्तक मे आदर्श लेखकों के लेखो का सुविचार-पूर्ण चयन हो।

यह हाई स्कूलो की पाठ्य पुस्तको मे सम्भव है, मिडिल स्कूलो की पाठ्य-पुस्तको मे नहीं। जैसा कि पहले बताया गया है कि मिडिल स्कूलो मे हम बालकों के हाथ विविध प्रकार की पाठ्य-पुस्तकें नहीं रख सकते। * अकेले वाचन की पुस्तक के द्वारा ही हमें भाषा के विविध विषय पढाने पडते हैं, व्याकरण, वार्तालाप, रचना, अनुवाद, इत्यादि। इन भिन्न भिन्न विषयो को एक ही पुस्तक के द्वारा पढाना कुछ आसान नहीं है। इन विषयों मे एकता की ज़रूरत है। इस कारण मिडिल स्कूलों की पाठ्य-पुस्तक बहुत सोच-विचार कर लिखना पडती है। भाषा तथा विषय-क्रम का ध्यान रखते हुए लेखक को व्याकरण, रचना, इत्यादि सिखाने के क्रम का ध्यान रखना पडता है। ऐसी पुस्तके आदर्श लेखको के लेखों के समावेश से नहीं बन सकतीं, वरन् एक या कुछ लेखक मिलकर ही ऐसी उपयोगी पुस्तकें तैयार कर सकते हैं।

यही कारण है कि बहुतायत से मिडिल स्कूलो की पाठ्य पुस्तकों में एक ही शैली पाई जाती है। लेखकों को चाहिए कि नाना प्रकार के पाठो का समावेश कर, इन्हें रोचक बनावें। विभिन्न शैलियॉ में से कथात्मक और सवाद-शैलियॉ, दस से चौदह वर्ष के

* देखिए पृष्ठ ४६।

विद्यार्थियों के लिए अधिक अनुकूल हैं। इस कारण, बहुत से निबन्धात्मक लेखों को गल्प या पारस्परिक सवाद के रूप मे लिखने पर, पुस्तकों मे एक नवीनता आ जाती है।

हाई स्कूल की पाठय पुस्तकों मे ऐसी कोई कठिनाई नहीं है। इनमे प्रायः आदर्श लेखों का समावेश रहता है। सम्पादकों को विविध शैली के लेख चुन लेना चाहिए। परन्तु उन्हे ज्यों के-त्यों लेकर छाप देना ठीक नहीं है। छात्रो की बौद्धिक तथा मानसिक क्षमता के अनुरूप, उन्हें काट-छॉट कर तथा घटा-बढ़ाकर उचित रूप मे सपादित कर लिया जाय।

यहॉ यह बताना आवश्यक है कि किसी भी कक्षा मे सूक्ष्म पाठ के लिए एक से अधिक पाठ्य पुस्तक का निर्दिष्ट किया जाना सम्भव नहीं है। राष्ट्र-भाषा के पठन के लिए समय-कार्य-क्रम (time-table) मे प्रति सप्ताह चार-पॉच घण्टे से अधिक समय नहीं मिलता। इस अल्प समय मे सूक्ष्म पाठ के अतिरिक्त द्रुत वाचन, व्याकरण, रचना, अनुवाद, इत्यादि भी पढ़ाना पडता है। बहुधा एक वर्ष मे एक ही पाठय पुस्तक समाप्त करना असंभव हो जाता है।

५. पाठों का क्रम तथा परिमाण.—यह पहले ही बताया जा चुका है कि प्रत्येक पाठ्य पुस्तक मे विषय तथा शैली के अनुसार विविध प्रकार के पाठ हों। पर उन पाठो का भी ठीक ठीक विन्यास होना आवश्यक है, ताकि एक ही स्थान पर एक ही प्रकार की रचनाऍ न आ जावें, चाहे वे कविताऍ हों या गल्प, निबन्ध हों या जीवनी, सवाद हों या यात्रा-विवरण। इसी तरह एक ही स्थान में लगातार सभी हास्य या किसी विशेष रस की रचनाऍ न आ जायॅ। साराश यह है कि भाषा के अतिरिक्त, पाठो को विषय तथा शैली के अनुसार जमाना उचित है।

पाठ तथा अनुच्छेद इतने लम्बे न हों, जिनसे विद्यार्थियों की ग्रहण-शक्ति को असुविधा हो। पहिली पुस्तक में कोई पाठ ऐसा नहीं होना चाहिए, जिसके पढ़ाने मे पैंतीस मिनट से अधिक समय लगे। दूसरी और तीसरी पुस्तको के पाठ ४—५ पृष्ठों से अधिक लम्बे न हो। ऊपर की कक्षाओं की पृष्ठ-सख्या आठ-दस तक हो सकती है। यदि कोई पाठ अधिक लम्बा हो तो उसे दो-तीन भागों मे बॉट देना चाहिए।

६. उपयोगी चित्र.—वर्णित विषयों से सम्बन्धित चित्र यदि पाठों के साथ लगा दिये जा सकें, तो अति उपयोगी है। प्रत्येक चित्र पाठ के विषय पर समुचित प्रकाश डालने वाले हों। मिडिल कक्षाओं की पाठय पुस्तको के प्रत्येक पाठ मे कुछ ऐसे सम्बद्ध चित्र अवश्य हों, जिन पर से पाठ के विषय की चर्चा छात्रों से की जा सके।

७. अभ्यास, परिचय और टीका-टिप्पणी.—बहुधा पाठ्य-पुस्तकों के लेखक तथा सम्पादकगण सोचते हैं कि तीस-पैंतीस लेखों या कविताओं को लिख लिया या संग्रह कर लिया तथा उनको पुस्तक का रूप दे दिया, तो किला फतह हो गया! वास्तव में लेखक तथा सम्पादक का सबसे महत्व पूर्ण कार्य प्रत्येक पाठ पर अभ्यासात्मक प्रश्न, उपयुक्त परिचय तथा ठीक टिप्पणियाँ देना है।

अभ्यास-प्रश्न * अनेक प्रकार के हो सकते हैं। इनके द्वारा पाठ का विषय दोहराया जा सकता है, तथा विद्यार्थियों के व्याकरण विषयक ज्ञान का पुनरावर्तन किया जा सकता है। ये प्रश्न रचना सम्बन्धी भी हो सकते हैं। इस तरह, इन प्रश्नों के द्वारा पठित पाठ की बोध-परीक्षा होती है, साथ ही प्रयोग भी कराया जाता है। इनसे शिक्षकों को अध्यापन-कार्य में सहायता भी प्राप्त होती है।

चूँकि मिडिल स्कूल में एक ही पाठ्य पुस्तक पर भाषा की सम्पूर्ण पढ़ाई आधारित रहती है, इस कारण उसके अभ्यास-प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। उन्हीं प्रश्नों के द्वारा शिक्षकों को व्याकरण, रचना, आदि विषय पढ़ाना पड़ते हैं।

अभ्यास के सिवा, पुस्तक के अन्त में, आवश्यकतानुसार प्रत्येक पाठ पर कुछ टीका-टिप्पणी देना उचित है। हम अध्यापकों से यह आशा नहीं रख सकते कि वे प्रत्येक विषय की जानकारी रखते हों, तथा उनमें से प्रत्येक अध्यापक देश की पौराणिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक आदि बातों से पूर्णत. परिचित हो। पर प्रत्येक पाठ में, ऐसे प्रसगों के आने की सम्भावना सुनिश्चित है। इस कारण अपरिचित या अल्प परिचित नामों या उदाहरणों पर यथोचित संक्षिप्त टीका-टिप्पणी देना आवश्यक है। इन्हें पढ़कर अध्यापक पाठ के प्रसगों को भली भाँति समझ सकते हैं, और वे विद्यार्थियों को उनका बोध आसानी से करा सकते हैं।

उदाहरणार्थ, पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखित 'सर विलियम जोन्स ने संस्कृत कैसे सीखी?'—पाठ है। इस पाठ में उल्लिखित कई नामों या विषयों से शायद अनेक शिक्षक अपरिचित हों, जैसे, सर विलियम जोन्स, एशियाटिक सोसाइटी, हिंदुस्थान रिव्यू, सुप्रीम कोर्ट, कृष्णनगर, नवद्वीप, सलकिया, इत्यादि। सम्पादकों को उचित है कि वे इन पर आवश्यक टिप्पणियाँ पुस्तकान्त में देवें।

मिडिल स्कूल की पाठ्य पुस्तकों के अन्त में प्रत्येक पाठ पर कुछ हेतु-प्रश्न देना चाहिए। उनकी सहायता से मौन वाचन के समय विद्यार्थियों को पाठ का भावार्थ

---

* पाँचवें भाग का तीसरा अध्याय देखिए।

समझना सहज हो जाता है।* यदि इस प्रकार मौन वाचन करने की ठीक आदत निडिल स्कूल में डाली जाय, तो ऊँची कक्षाओं का काम सरल हो जाय।

४. सहायक पुस्तकें

सूक्ष्म पाठ वाली पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त, द्रुत पाठ के लिए सहायक पुस्तकों (Rapid or supplementary readers) की भी आवश्यकता है। उन पुस्तकों की भाषा, विषय तथा शैली की ओर ध्यान देना उचित है। सहायक (वाचन की) पुस्तकों के आवश्यक गुण नीचे दिये गये हैं।

१. शब्दावली.—सहायक पुस्तक तथा सूक्ष्म पाठवाली पाठ्य पुस्तक की शब्दावली एक ही हो. अर्थात् सहायक पुस्तक के द्वारा पाठ्य पुस्तक में पठित शब्दों का अभ्यास कराया जाय। इस प्रकार की आवृत्ति से विद्यार्थियों के मस्तिष्क में सीखे हुए शब्द भलीभाँति जम जाते हैं। पूर्व परिचय की सहायता से विद्यार्थीगण इस द्रुत पाठवाली पुस्तक को शीघ्र गति से पढ़ भी सकते है, क्योंकि उन्हें शब्दों की नवीनता की कठिनाई से संघर्ष नहीं करना पड़ता है।

२. भाषा.—सहायक पुस्तकों की भाषा का सार ऐसा हो, जिसे सुगमता-पूर्वक विद्यार्थीगण हृदयंगम कर सके। इनकी भाषा धारावाहिक तथा बोधगम्य होनी चाहिए। कम-से-कम उनकी पाठ्य पुस्तक से तो इनकी भाषा अधिक सरल होनी ही चाहिए।

३. विषय.—सहायक पुस्तकों के पाठों के विषय रोचक तथा विद्यार्थियों की अवस्था के अनुकूल होना चाहिए; यथा, कहानियाँ, जीवनियाँ, आत्म-कथाएँ, दिनचर्या, यात्रा वर्णन, नाटक, साहसिक कथाएँ, संवाद, सरल पद्यात्मक वर्णन, इत्यादि। जहाँ तक हो सके, सहायक पुस्तकों में एक ही लम्बी कथा तथा वर्णन, हो। इस कथा या वर्णन में विविध विषयों का समावेश हो, यथा, भूगोल, इतिहास, विज्ञान, आविष्कार, साहित्य, इत्यादि। पाठ्य पुस्तकों की भाँति भिन्न भिन्न विषयों के पाठ इनमें न हो।

४. हेतु-प्रश्न.—पुस्तक के अन्त में, अध्यायानुसार, हेतु-प्रश्न हो। इन प्रश्नों के द्वारा पाठ्य विषय का आशय निकालना सहज हो जाता है।

—— ★ ——

* इसी भाग का चौथा अध्याय देखिए।

तीसरा अध्याय

राष्ट्र-भाषा-प्रवेश

१. प्रारम्भ

आज भारत के प्रायः सभी अहिन्दी राज्यो के माध्यमिक शिक्षा-क्रम मे राष्ट्र-भाषा का अभ्यास अनिवार्य है। माध्यमिक शालाओं को हम दो भागो में बाँट सकते हैं मिडिल तथा हाई।

मिडिल स्कूल (वर्ग १—३) में राष्ट्र-भाषा-शिक्षा के मुख्य उद्देश्य ये होंगे.

(१) एक आधार-भूत शब्दावली का ज्ञान उत्पन्न करना।

(२) लिपि-ज्ञान।

(३) शुद्धोच्चारण तथा साधारण विषयों पर वार्तालाप।

(४) वाचन-विकास—उपयुक्त सस्वर वाचन, साधारण वाक्यों को समझना, पढ़ने में आनन्द उत्पन्न करना।

(५) पाठ्य पुस्तकों के पाठों को अपने शब्दों मे लिखना।

हाई स्कूल (वर्ग ४—७) मे राष्ट्र-भाषा-शिक्षा के मुख्य उद्देश्य ये होंगे :

(१) शब्द-भडार तथा सूक्ति-भंडार की वृद्धि।

(२) भिन्न-भिन्न शैलियों से परिचय।

(३) वाचन-विकास — वाचन के आवश्यक गुणों और आदतों का विकास, मनोरजन तथा ज्ञानार्जन के लिए पठन।

(४) कल्पना-शक्ति का विकास।

(५) ऐसी लिपि-बद्ध भाषा में भाव-प्रकाशन जो शुद्ध, व्याकरण-सम्मत तथा प्रभावोत्पादक हो।

इस प्रकार, मिडिल तथा हाई स्कूल मे शिक्षण विधि भिन्न होगी। प्रथम वर्ग के राष्ट्र-भाषा-शिक्षक को सबसे अधिक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। कारण, इसी वर्ष में राष्ट्र-भाषा-शिक्षा का श्रीगणेश होता है। कम-से-कम प्रथम छः महीने का काम अत्यन्य जटिल — पेचीदा — होता है। इस अवधि के समय के भाषा-शिक्षा-विषयक अध्ययन और अध्यापन पर मत-भेद है। तथापि यह समय विशेष महत्व का है। कारण, राष्ट्र-भाषा-प्रवेश का यह प्रथम सोपान है।

इस अध्याय मे इसी विवाद-ग्रस्त विषय पर चर्चा की गई है। सुभीते के लिए, इस अवधि को हम दो भागो में बाँट सकते हैं: (१) प्रथम तीन महीने का कार्य तथा (२) द्वितीय तीन महीने का कार्य।

२. प्रथम तीन महीने का कार्य

१. **उद्देश्य.**—चार या पॉच वर्ष प्राथमिक पाठशाला मे शिक्षा समाप्त कर, विद्यार्थी मिडिल स्कूल मे प्रविष्ट होता है। वह अपनी मातृ-भाषा की पुस्तके अच्छी तरह पढ़ और समझ सकता है, तथा वह अपने विचारो को स्पष्ट रीति से वाणी और लेखनी से प्रकट कर सकता है। इसी बुनियाद पर शिक्षक को राष्ट्र-भाषा सिखाना आरम्भ करना पडता है।

प्रथम तीन महीने मे, राष्ट्र-भाषा-शिक्षण के उद्देश्य ये होगे:

(१) विद्यार्थी को एक कार्य-सचालन शब्दावली (Working vocabulary) सिखाना।

(२) उसे कुछ चुने हुए वाक्य-गठनो का अभ्यास कराना।

(३) शुद्ध उच्चारण की नीव डालना।

(४) सस्वर वाचन का अभ्यास कराना।

इस समय, बच्चों को लिखने के लिए तैयार किया जाता है; पर उन्हें लिखना नही शुरू करना चाहिए। पाठ्य-पुस्तक, श्याम-पट तथा चित्रो पर लिखे हुए अक्षरों, शब्दों तथा वाक्यों को पढ़कर उन्हे अक्षरों की बनावट से सम्पूर्ण परिचित कराना उचित है। इस समय मौन वाचन भी निषेधात्मक है; क्योंकि इस समय बालको का शब्द-भंडार बहुत ही सकुचित रहता है।

२. **प्रचलित शिक्षा-प्रणालियाँ.**—प्रारम्भिक अवस्था में भाषा-शिक्षण की दो मुख्य प्रणालियॉ हैं: (१) संश्लेषण प्रणाली (Synthetic Method) और (२) विश्लेषण प्रणाली (Analytical Method).

(१) **संश्लेषण प्रणाली**—इस प्रणाली के अनुसार किसी पूर्ण विषय का अध्ययन पहले नहीं किया जाता है। इसके बदले उसके तत्वों अथवा भागों से सिखाना शुरू करते हैं, और उसके पूर्ण रूप के अध्ययन की ओर बढ़ते हैं, जैसे, वाचन सिखाने के समय पहले अक्षर (क्रमशः स्वर, व्यञ्जन, मात्राएँ, संयुक्त अक्षर), फिर अक्षरों को जोड़ कर शब्द बनाना तथा अन्त में शब्दों के योग से वाक्य बनाना। इसी प्रणाली के अन्तर्गत भाषा-शिक्षण की दो विधियाँ आती हैं : (१) अक्षर-बोध-विधि (Alphabetic Method) और (२) ध्वनि-साम्य-विधि (Phonetic Method)।

अ. अक्षर-बोध-विधि.—यह विधि संसार की सब से पुरानी पद्धति है। इसके अनुसार सबसे पहले अक्षर-बोध (क्रम से स्वर, व्यञ्जन, मात्राएँ, संयुक्त अक्षर) से अध्ययन शुरू होता है। शिक्षक प्रत्येक अक्षर श्याम-पट पर लिखता है, उसका स्वतः उच्चारण करता है, विद्यार्थियों से कहलवाता है, तथा पुस्तक से पढ़वाता है। इसके बाद शिक्षक अक्षरों के भिन्न भिन्न प्रकार के योग समझाता है और इसी प्रकार बारहखड़ी सिखाता है।

इस विधि का विशेष दोष यह है कि सिखाये हुए अक्षरों का कोई अर्थ नहीं निकलता। इस कारण, बालकों का मन निरर्थक अक्षरों के सीखने में नहीं लगता। इसके सिवा, यह विधि अवैज्ञानिक है। कारण, भाषा की इकाई, वाक्य तथा शब्द है, न कि अक्षर या वर्ण।

आ. ध्वनि-साम्य-विधि—यह विधि नई नहीं है, वरन् अक्षर बोध-विधि की सहायता करती है। इस विधि में समान उच्चारण वाले शब्द, जैसे, लल्ला, गल्ला, छल्ला, आदि एक साथ सिखाये जाते हैं। इस विधि का मुख्य उद्देश्य है बालकों को शुद्ध उच्चारण का अभ्यास कराना। यह उद्देश्य बहुत ही ठीक है, पर सबसे अधिक कठिनाई यह है कि आरंभ में समान उच्चारणवाले ऐसे शब्द पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते, जिनसे विद्यार्थी परिचित हों। इस विधि के अनुसार जो किताबें लिखी होती हैं, उनके अनेक वाक्य बनावटी (अस्वाभाविक) होते हैं। कारण, वाक्यों में कोई अर्थ-सम्बन्ध नहीं रहता। प्रत्येक वाक्य एक-दूसरे से पृथक् होता है।

(२) **विश्लेषण-प्रणाली.**—इस प्रणाली में किसी पूर्ण वस्तु को लेकर, उसका अध्ययन शुरू करते हैं, और फिर उसे विभिन्न तत्वों में बाँट कर, उन तत्वों या भागों का अलग-अलग विचार करते हैं। इस प्रणाली के अन्तर्गत, भाषा-शिक्षण की तीन विधियाँ आती हैं : (१) देखो और कहो विधि (Look and Say Method), (२) वाक्य-शिक्षण विधि (Sentence Method) और (३) वर्णन-विधि (Narration or Story-Telling Method)।

अ. देखो और कहो विधि.—इस विधि के अनुसार, बालकों को वर्ण-परिचय न कराकर, आरम्भ से ही शब्द-परिचय कराया जाता है। इसके लिए निम्न लिखित क्रम सुविधाजनक होगा :

(क) शिक्षक बच्चों को मोटे अक्षरो के शब्द-चित्र दिखाता है। ये शब्द या चित्रो के नीचे छपे रहते हैं अथवा शिक्षक उन्हे श्याम-पट पर लिखता है।

(ख) शिक्षक उपर्युक्त शब्दों का उच्चारण एक के बाद एक करता है, और उन्हें बच्चों से कहलवाता है।

(ग) शब्द मे कोई अक्षर बदल कर, शिक्षक एक नया शब्द बनाता है। नये शब्द को सूचित करनेवाली वस्तु या उसका चित्र प्रस्तुत करता है, तथा नये शब्द से तुलना करने पर विश्लेषण-द्वारा बदले हुए अक्षरो का ज्ञान कराता है। जैसे, नल, जल, फल, नाल, जाल, नीला, आदि।

(घ) धीरे धीरे सब अक्षरो तथा मात्राओं का ज्ञान कराना।

इस विधि के द्वारा शिक्षक प्रारम्भ मे अक्षर न सिखाकर, चित्र या वस्तु बताकर, सार्थक शब्दों का परिचय कराते हुए, बच्चोंको पढ़ना सिखाता है; और उसके अनन्तर अक्षरो से भी उनका परिचय करा देता है। यह विधि बालकों को विशेष रुचिकर होती है। कारण, वे परिचित वस्तुओं के लिए प्रचलित शब्द सीखते हैं। पर इस विधि मे एक विशेष दोष यह है कि अप्रचलित (विशेषकर क्रियार्थक तथा भावार्थक) शब्दों के रूप मन मे ठीक नहीं बैठ पाते।

आ. वाक्य -शिक्षण-विधि.—यथार्थ मे यह विधि 'देखो और कहो विधि' का नवीन तथा परिवर्तित सस्करण है। इस विधि मे, शब्द पढ़ाये विना ही वाक्य पढाना आरम्भ हो जाती है। इसका शिक्षण-क्रम निम्नाकित प्रकार होता है :

(क) शिक्षक कुछ वाक्य श्याम-पट पर बड़े-बड़े और स्पष्ट अक्षरो मे लिखता है, जैसे :

राम हाकी खेलता है।

रमेश हाकी खेलता है।

मगन हाकी खेलता है।

मदन हाकी खेलता है।

ऊपर के वाक्यो की शब्दावली एक ही है। इनमें केवल पहला शब्द भिन्न है।

(ख) शिक्षक पाइण्टर लेकर, एक एक शब्द बतलाता है और उस शब्द का उच्चारण करता है। वह बालकों से भी उसका उच्चारण कराता है, तथा उसे तीन-चार बार पढ़वाता है। फिर वह अपना पाइण्टर यहाँ-वहाँ शब्दों पर रखता है और बालकों के शब्द-पहिचान की परीक्षा करता है।

(ग) अब वह वाक्यों का दूसरा शब्द बदल देता है; जैसे :

राम हाकी खेलता है।
राम खो-खो खेलता है।
राम गेंद खेलता है।
राम फुटबॉल खेलता है।

इसके बाद वह (ख) की पद्धति का अनुसरण करता है।

(घ) इसी तरह शब्द बदल कर या जोड़ कर, वह ८—१० पाठों में अनेक शब्द पढ़ा देता देता है, तथा विद्यार्थीगण उनका पहिचानना या उच्चारण करना सीख जाते हैं। पश्चात् वह इन शब्दों को उनके हिज्जे के अनुसार स्थान-पट पर लिखता है जैसे :

कल	कलम	साला	पुल	पूजा
पल	पलक	माली	गुलाब	पेड़
लव	लवन	शिला	रुपया	लेटना

(ङ) इस प्रकार वह शब्द सिखाता है। इसके पश्चात् इन शब्दों को विच्छिन्न कर, वह बालकों को अक्षर-बोध कराता है। इसके लिए उसे 'देखो और कहो विधि' का उपयोग करना पड़ता है।

इस पद्धति से यह लाभ है कि आरम्भ से ही बालकगण सार्थक शब्दों तथा वाक्यों से परिचित हो जाते हैं। इस कारण, पाठ में उनका मन लगता है। पर बाद में, बालकों को अक्षर सिखाना ही पड़ता है। इस पद्धति का विशेष दोष यह कि बालकों का शब्दकोश सीमित रह जाता है।

इ. वर्णन-विधि.—यह पद्धति 'वाक्य-शिक्षण-विधि' का ही दूसरा रूप है। इसके अनुसार किसी विषय या कहानी का वर्णन छोटे-छोटे वाक्यों द्वारा किया जाता है। प्रारम्भ में ये वर्णन पाँच-छः पंक्तियों से अधिक नहीं होते।

इस प्रणाली के प्रयोग की अनेक रीतियाँ हैं। प्रथमतः, बड़े बड़े चित्रफलक काम मे लाये जाते हैं। प्रत्येक फलक मे पॉच-छः छोटे छोटे चित्र होते हैं। इन चित्रों के द्वारा एक छोटी कहानी बन जाती है। प्रत्येक चित्र के नीचे कहानी के वाक्य बड़े-बड़े अक्षरों में लिखे रहते हैं। वाक्य-शिक्षण-विधि के अनुसार बालकगण प्रत्येक वाक्य का उच्चारण करते हैं; और अन्त मे उन वाक्यो को मिलाकर, पूरी कहानी कह कर सुनाते हैं। इसी प्रकार किसी भी वस्तु के विभिन्न भागों का वर्णन भी स्वतन्त्र वाक्यों द्वारा किया जा सकता है, तथा अन्त मे इन वाक्यों को जोडकर सम्पूर्ण वस्तु या विषय का वर्णन किया जाता है। कभी-कभी विभिन्न खेलों की भी सहायता ली जा सकती है।

इस प्रकार बच्चों की रुचि के अनुसार, सात-आठ कहानियो या वर्णनो के द्वारा बालकों को अनेक वाक्य तथा शब्द सिखाये जाते हैं। विद्यार्थीगण उन्हें भली भाँति पढ़ना तथा उनका उच्चारण करना सीख जाते हैं। अन्त में शब्द-विग्रह कर अक्षर-बोध कराया जाता है।

यह विधि बहुत ही रुचि-पूर्ण है। कारण, बालकों को एक पूरी कहानी या वर्णन सुनने तथा सुनाने का अवसर मिलता है। पर इस प्रणाली मे सबसे बड़ा दोष यह है कि बालकों का शब्द-कोश बहुधा सीमित रह जाता है; क्योंकि इस पद्धति के द्वारा केवल वे ही शब्द सिखाये जा सकते है, जो उस पाठ मे स्वाभाविक रूप से आ सकते हैं, और आकार या बनावट मे परस्पर मिलते-जुलते हैं।

३. संयुक्त विधि की आवश्यकता.—उपरोक्त पाँचो वर्णित विधियो मे कुछ-न-कुछ विशेषताएँ तथा कमजोरियाँ हैं। इस कारण प्रारम्भ मे हम राष्ट्र-भाषा-शिक्षा के लिए किसी भी पद्धति पर पूर्णतः निर्भर नही कर सकते। पर हमे पाँचों विधियों से लाभ उठाना चाहिए। इसके साथ, हमे राष्ट्र-भाषा-शिक्षण के निम्नकिंत सात मूल सिद्धान्तों को याद रखना चाहिए :

(१) उच्चारण पर आरम्भ से ही ध्यान देना उचित है।
(२) वाचन को पिछड़ने नही देना चाहिए।
(३) शब्द से वाक्य की ओर, तथा वाक्य से शब्द की ओर।
(४) क्रमिक अभ्यास।
(५) आगमन पद्धति से व्याकरण का ज्ञान।
(६) अन्त मे लेखन।

पद्धति (ध्वनि साम्य-विधि तथा देखो-कहो विधि) :

(१) उद्देश्य—शिक्षक पाठ के पढ़ाने की विधि तथा उद्देश्य मातृ-भाषा में समझाता है।

(२) उच्चारण—शिक्षक एक शब्द श्याम--पट पर लिखता है। (अ) आदर्श उच्चारण (शिक्षक द्वारा), (आ) सामूहिक उच्चारण (समूची कक्षा द्वारा) और (इ) वैयक्तिक जाँच (कुछ विद्यार्थियो की)।

इस प्रकार, एक ही उच्चारण वाले सब शब्दों के उच्चारणों का अभ्यास शिक्षक एक के बाद एक करता और कराता है।

(३) वाचन—फिर वह श्याम-पट पर लिखे शब्दो को एक एक कर पढ़ता है। शिक्षक के साथ साथ, बालकगण शब्दों का समवेत वाचन करते हैं।

(४) उच्चारण तथा वाचन का अभ्यास—उपर की पद्धति के अनुसार, शिक्षक समान उच्चारण वाले शब्द-समूह एक साथ लेता है, तथा उनके उच्चारण और वाचन का अभ्यास कराता है। इसके पश्चात्, वह अन्य समान उच्चारणवाले शब्दसमुहो के उच्चारण तथा वाचन का क्रमशः अभ्यास कराता है। इस तरह, सब शब्दों का पढ़ाना खतम होता है।

(५) सस्वर वाचन—संपूर्ण पाठ का वाचन : आदर्श वाचन, समवेत वाचन, व्यक्तिगत वाचन ।

(६) अक्षर-ज्ञान—शिक्षक अब प्रत्येक शब्द के कार्ड (अलग अलग अक्षरों के कार्डों द्वारा बने हुए),लकडी के बने हुए सूचना-पट (sign-board) पर लगाता है। इसके साथ-साथ वह वर्णों का उच्चारण सिखाता है। फिर वह शब्द के अक्षरों को अलग करता है, और उनकी तुलना, पहले पाठ का उपयोग कर मातृ-भाषा के अक्षरों से करता है। वह अक्षरों को मिलाकर शब्द बनाता है। इसी प्रकार वह चुने हुए शब्दो द्वारा हिन्दी का अक्षर-ज्ञान कराता है।

(७) जाँच—विद्यार्थीगण अक्षर-कार्ड द्वारा शब्द बनाते हैं।

इ. पाठ ३—कुछ चित्रों का वर्णन, मात्रा हीन शब्दो से बने हुए वाक्यों द्वारा। वाक्य दो या तीन शब्दो के बने हो।

पद्धति* :

(१) उद्देश्य—शिक्षक पाठ के पढ़ाने की विधि तथा उद्देश्य मातृ-भाषा में समझाता है।

(२) उच्चारण-अभ्यास (नये शब्द)—पिछले पाठ की नाईं।

(३) अर्थ बोध।

(४) सस्वर वाचन—(१) पाठ का आदर्श वाचन (शिक्षक द्वारा), (२) समवेत वाचन (पूरे वर्ग द्वारा) और (३) व्यक्तिगत वाचन (विद्यार्थियों द्वारा पृथक्-पृथक्)।

(५) जाँच और अभ्यास।

(६) प्रयोग।

ई. पाठ ४—(मात्राओं का परिचय—प्रत्येक मात्रा का क्रमिक उपयोग): मात्राओं के संयोग से बने हुए ऐसे हिन्दी शब्द, जो मातृ-भाषा में प्रचलित हों। एक चित्र, जिसका वर्णन कुछ वाक्यों-द्वारा किया गया हो। वाक्य के शब्दों में अपरिचित मात्राओं का उपयोग न हो।

पद्धति :

(१) उद्देश्य—शिक्षक मातृ-भाषा में समझाता है।

(२) मात्रा-परिचय—शिक्षक एक मात्रा लेता है। इसकी तुलना वह मातृ-भाषा की मात्रा से करता है।

(३) उच्चारण।

(४) अर्थ बोध।

(५) सस्वर वाचन—पिछले पाठ की नाईं।

(६) जाँच और अभ्यास—पिछले पाठ की नाईं।

उ. पाठ ५—७ (वाक्य-गठन तथा शब्द-रूपान्तर)—पिछले चार पाठों द्वारा विद्यार्थियों को अक्षर-ज्ञान तथा मात्रा-परिचय कराया जाता है। वे कुछ शब्द भी सीख लेते हैं तथा प्रत्येक शब्द का स्पष्ट उच्चारण कर सकते हैं। अब उन्हें कुछ आवश्यक वाक्य-गठन तथा शब्द-रूपान्तर से परिचय कराना है—काल, लिंग तथा वचन।

---

* पहला परिशिष्ट (पाठ-चक्र १) देखिए।

पर इसका लक्ष्य विद्यार्थियो को व्याकरण के पेच मे डालना नही है, बल्कि हिन्दी भाषा के उन अत्यावश्यक रूपो से परिचित कराना है, जिनके बिना हिन्दी सीखना असम्भव है; जैसे, वर्तमान काल (है, हैं, हूँ), भूतकाल (था, थी, थे), भविष्यत् काल (गा, गी, गे); वचन (ओं, मै–हम, तू–तुम, वह–वे)। इनका क्रमिक उपयोग साधारण वाक्यो तथा शब्दों से होना चाहिए। प्रत्येक काल के लिए, अलग-अलग पाठ हो।

पढाने के लिए आगमन पद्धति का उपयोग करना चाहिए। यह तभी हो सकता है, जब पुस्तक मे वाक्यों का सुव्यवस्थित रूप से उपयोग हुआ हो। जैसे :

राम पढता है। मदन पढ़ता है।
राम और मदन पढ़ते हैं।
लडका पढ़ता है।
लडके पढ़ते हैं।
सीता पढ़ती है। रमा पढ़ती है।
सीता और रमा पढती हैं।
लड़की पढ़ती है।
लडकियॉ पढ़ती हैं।
मैं पढता हूॅ। तू पढ़ता है। वह पढ़ता है।
हम पढ़ते हैं। तुम पढ़ते हो।

ऊपर की प्रत्येक पंक्ति के वाक्यो को ध्यान से देखिए। उनसे वाक्य-गठन तथा शब्द-रूपान्तर क्रमशः स्पष्ट होते हैं :

(१) क्रिया (पुल्लिग, एकवचन)।
(२) क्रिया (पुल्लिग, बहुवचन)।
(३) सज्ञा (पुल्लिग, एकवचन)।
(४) सज्ञा (पुल्लिग, बहुवचन)।
(५) क्रिया (स्त्रीलिंग, एकवचन)।
(६) क्रिया (स्त्रीलिंग, बहुवचन)।
(७) सज्ञा (स्त्रीलिंग, एकवचन)।
(८) सज्ञा (स्त्रीलिंग, बहुवचन)।

(९) पुरुषवाचक सर्वनाम (एकवचन)।
(१०) पुरुषवाचक सर्वनाम (बहुवचन)।

इस पाठ मे वर्तमान काल के रूप हैं। अगले दो पाठों मे क्रम से इसी प्रकार भूत और भविष्यत् कालो के रूप दिये जा सकते हैं। ऊपर के आदर्श वाक्यों के अतिरिक्त, प्रत्येक पाठ में, अन्य अनेक वाक्य देना उचित है।

पद्धति : (गठन तथा आगमन पद्धति)।

(१) वाक्य-गठन तथा शब्द-रूप की चर्चा।

(अ) शिक्षक कक्षा के एक पढते हुए बालक (मगन) की ओर बतला कर कहता है : मगन पढता है।

तीन-चार बालकों द्वारा इस वाक्य को दोहराने के बाद, शिक्षक इस वाक्य को श्याम-पट पर लिखता है।

शिक्षक इस प्रकार तीन-चार पढते हुए बालकों की ओर बतलाकर कहता है :

रामलाल पढता है। किरीट पढता है। उदय पढता है।

इन वाक्यों को वह श्याम-पट पर लिखता है, तथा बालकों को उद्बोधित करता है कि एकवचन, पुल्लिंग, वर्तमान काल मे "है" का उपयोग होता है।

(आ) अभ्यास : 'पढना' के बदले अन्य क्रियाओं का उपयोग कर।

(२) इसी प्रकार शिक्षक, एक के बाद एक, प्रत्येक वाक्य-गठन तथा शब्द-रूप का उद्बोधन कराकर, उनका मौखिक अभ्यास कराता है।

(३) पाठ का सस्वर वाचन — क्रमश आदर्श, समवेत और व्यक्तिगत।

(४) अभ्यास — (वाक्य पद्धति या शब्द-पूर्ति-द्वारा). जैसे, मगन खेलता—। चपा — है। गाये दौड़ती —। (इत्यादि)।

पाठ ६ और ७ की पद्धति भी इसी प्रकार होगी।

ऊ **पाठ ८, ९ और १०** (वर्णन-पद्धति — वार्तालाप-द्वारा) —आशा की जाती है कि पिछले पाठों को पढकर विद्यार्थीगण कम-से-कम १०० शब्द जरूर सीख गये होंगे।

उन्हें लिंग, वचन तथा काल के रूपान्तरों का भी साधारण ज्ञान हो गया होगा। अब 'क्या' तथा 'कौन' प्रश्नवाचक शब्दों के द्वारा, वार्तालाप आरम्भ किया जा सकता है।

८—९ पाठ मे भिन्न भिन्न विषय पर, कुछ छोटे-छोटे चित्र होना चाहिए। प्रत्येक चित्र किसी विषय का प्रदर्शक हो। प्रत्येक चित्र के साथ इस प्रकार के कुछ वाक्य देना उचित है; जैसे :

यह बढ़ई है।
बढ़ई तिपाई बना रहा है।
बढ़ई के हाथ मे रुखानी है।

पाठ १० मे एक ही विषय पर एक बड़ा चित्र या कई छोटे चित्र दिये जा सकते है। इनके द्वारा किसी एक सम्पूर्ण विषय का वर्णन दिया जा सकता है।

पद्धति :

(१) प्रारम्भिक अभ्यास.—इन पाठो को आरम्भ करने के पहिले शिक्षक वार्तालाप-द्वारा बालकों को 'क्या' तथा 'कौन' के उपयोग का अभ्यास प्रत्यक्ष-विधि द्वारा कराता है, जैसे :

(अ) वह 'क्या' का मातृ-भाषा मे अर्थ बतलाता है।

(आ) वह श्याम-पट पर लिखता है : "यह क्या है?"

(इ) एक वस्तु (जैसे कलम) हाथ मे लेकर वह पूछता है : "यह क्या है?"

(ई) वह श्याम-पट पर लिखता है : "यह कलम है।" (ऊपर के प्रश्न का उत्तर।)

(उ) इसी प्रकार अनेक वस्तुओं को उठाकर, वह अपना प्रश्न दोहराता है, तथा उनका उत्तर श्याम-पट पर लिखता है। इस तरह वह बालकों को समझा देता है कि 'क्या' के बदले 'वस्तु' को जतलानेवाला 'जातिवाचक संज्ञा शब्द' प्रयुक्त किया जाता है।

(ऊ) इसी प्रकार, वह 'कौन' से बने हुए प्रश्नवाचक वाक्यों के उत्तर देने का अभ्यास बालकों से कराता है।

(२) पाठ-पद्धति.—निम्नांकित क्रम उपयुक्त हैं :

(अ) नये शब्द (प्रथम चित्र) · उच्चारण तथा अर्थ (पाठ २ की विधि)।

(आ) विषय-चर्चा (प्रथम चित्र) : शिक्षक चित्र पर प्रश्न पूछता है। प्रश्न ऐसे हों कि इसके उत्तर ही पाठ के वाक्य हों, जैसे, यह कौन है? बढ़ई क्या कर रहा है? बढ़ई के हाथ में क्या है?

(इ) इसी प्रकार प्रत्येक चित्र का निरूपण।

(ई) सस्वर वाचन (सम्पूर्ण पाठ)—क्रमश. आदर्श, समवेत और व्यक्तिगत।

(उ) पुनरावृत्ति (सम्पूर्ण पाठ)।

(ऊ) प्रयोग–(अभ्यासार्थ प्रश्न : यदि ये कक्षा में पूरे न हो सकें, तो गृह-पाठ के लिए दिये जावें।)

ऊपर की रूप-रेखा में इन बातों की ओर ध्यान दिया गया है :

(१) परिचित तथा परिमित शब्दावली से आरम्भ।

(२) ध्वनि-साम्य विधि का उपयोग।

(३) नवीन अभ्यासों का क्रमिक उपयोग।

(४) शब्द से अक्षर, शब्द से वाक्य, तथा वाक्य से शब्द।

(५) वाक्य-गठन तथा शब्द-रूपान्तर।

(६) आगमन-पद्धति से व्याकरण।

(७) मातृ-भाषा का उचित उपयोग।

(८) अन्त में, वर्णन-पद्धति।

यहाँ दस आदर्श पाठ के नमूने दिये गये हैं। आवश्यकतानुसार अनेक पाठ जोड़े जा सकते हैं। शिक्षकगण यह कदापि न सोचें कि उन्हें प्रत्येक पाठ एक ही घण्टे में समाप्त करना होगा। वरन् प्रत्येक पाठ के लिए, कई पिरियड लगेंगे। इसके अनुसार,

प्रत्येक पाठ को कई अन्वितियों मे बॉट लेना चाहिए। इस अवधि मे लगभग १५० शब्द सिखाये जा सकते हैं।

अब यह देखना उचित है कि अपरिचित लिपिवालो के लिए कैसी प्रवेशिका उपयोग में लाई जावे, तथा उसकी शिक्षण-विधि कैसी हो। आगे, हम इस विषय पर प्रकाश डालेंगे।

५. **संयुक्त विधि** (अपरिचित लिपिवालों के लिए).—प्रवेशिका लिखते समय एक आधार-भूत शब्दावली के प्रयोग की अत्याधिक आवश्यकता है। कारण, लिपि भिन्न होने पर भी, भारत की अनेक भाषाओं मे ऐसे शब्द हैं, जो हिन्दी मे भी प्रचलित हैं। प्रवेशिका के पाठ-क्रम की शिक्षण-विधि की विवेचना नीचे की जाती है।

(१) **पाठ १** (पिछली प्रवेशिका के दूसरे पाठ के आधार पर).—इस पुस्तिका के प्रथम पाठ मे बिना मात्रा वाले प्रायः तीस शब्द हों। इन शब्दों के द्वारा विद्यार्थियो को वर्ण-परिचय कराया जाय। चूँकि विद्यार्थीगण देवनागरी लिपि से एकदम अपरिचित हैं, अतएव पचास के बदले तीस शब्द लिये गये हैं। यह आवश्यक नही है कि अक्षर-परिचय वर्णमाला के अनुसार हो।

पद्धति : पिछली प्रवेशिका के पाठ २ के सिखाने की विधि का अनुसरण किया जाय। पर किसी भी घण्टे मे दस से अधिक शब्द न सिखाये जावें। शब्दों के वर्णों को पृथक् किया जावे, तथा वर्णों के आकार की तुलना मातृ-भाषा के वर्णो से की जावे। प्रत्येक पिरियड मे कुछ चुने हुए अक्षर सिखाये जावें। इस तरह पूरी वर्ण-माला सिखाया जा सकती है।

(२) **पाठ २**, वर्ण-माला (राष्ट्र-भाषा).—वर्णों को मिलाकर शब्द बनाने का अभ्यास कराया जावे।

(३) **पाठ ३**—लगभग तीस बिना मात्रावाले शब्द, जिनमे कुछ क्रियाएँ भी हों, सिखाये जावें। जहॉ तक हो, ये शब्द क्षेत्रीय भाषा मे प्रचलित हों। अपरिचित शब्द, प्रत्यक्ष विधि के अनुसार, सिखाये जावे। शिक्षक शब्दों के वर्णों को पृथक् कर तथा वर्णों को जोड जोंड कर अक्षर-परिचय का अभ्यास करावे।

अक्षर-ज्ञान के साथ शिक्षक ध्वनि-उच्चारण का भी अभ्यास करावे। कहना अनावश्यक है कि इस पाठ के अक्षरो का क्रम उच्चारण के अनुसार हो, ताकि ध्वनि-साम्य-विधि से काम लिया जाय।

(४) **पाठ ४–११**.—(पिछली प्रवेशिका के ३–१० पाठ के अनुसार)।

यह सम्भव है कि जो काम हम परिचित लिपिवालो के साथ तीन महीने में कर सकेंगे, वही काम अपरिचित लिपिवालों के साथ करने के लिए कुछ अधिक समय लगेगा। पर एक बार नींव पक्की हो जाने पर, भविष्य मे अधिक बाधाओं का सामना न करना पडेगा। इस प्रारम्भिक अवधि के बाद, दोनो वर्गों के विद्यार्थियों की अभ्यास-पद्धति प्रायः एकसी ही होगी।

३. द्वितीय तीन महीने का कार्य

१. मुख्य उद्देश्य.–इस अवधि के समय, राष्ट्र-भाषा-शिक्षण के मुख्य उद्देश्य होंगे .

(१) सुलेख लेखन। *

(२) सयुक्त अक्षरो का ज्ञान।

(३) वार्तालाप का अभ्यास।

(४) सस्वर वाचन का विशेष अभ्यास।

(५) व्याकरण के शब्द-भेदों का ज्ञान। †

इस अवधि मे लगभग १० पाठ तथा १०० नये शब्द पढ़ाये जा सकते हैं। सयुक्त अक्षरा का क्रमिक उपयोग वाञ्छनीय है। पाठ प्रत्यक्ष विधि तथा वर्णन-पद्धति के अनुसार पढाये जावे। बालकों को शुद्ध शब्दोच्चारण तथा सस्वर वाचन का अभ्यास कराया जावे।

२. पद्धति.‡—पाठन-विधि के स्वीकृत 'पच सोपान' हैं: (१) प्रस्तावना, (२) हेतु-कथन, (३) विषय-निरूपण, (४) पुनरावर्तन और (५) प्रयोग §। इनके अनुसार इस अवधि के पाठों के पढाने के विविध अङ्ग क्रमशः इस प्रकार होंगे .

अ. प्रस्तावना (पुराने पाठ का पुनरावर्तन)।

आ. हेतु-कथन (नये पाठ का विषय कहना)।

इ. विषय-निरूपण

(अ) नये शब्द (उच्चारण):

(१) आदर्श उच्चारण — शिक्षक श्याम-पट पर पर एक नया शब्द लिखता है, और स्वतः उच्चारण करता है।

---

* चौथे भाग का दूसरा अध्याय देखिए।
† चौथे भाग का चौथा अध्याय देखिए।
‡ पहला परिशिष्ट (पाठ सूत्र २) देखिए।
§ पृष्ठ ३१ देखिए।

(२) समवेत उच्चारण — शिक्षक का अनुकरण कर वर्ग के सभी विद्यार्थी शब्द का ठीक ठीक उच्चारण करना एक साथ सीखते है। यह ध्यान रखना चाहिए कि कमज़ोर विद्यार्थी सदा अपनी कमजोरी छिपाने की कोशिश करते है, पर सामूहिक अभ्यास के द्वारा, उन्हे नये शब्द के उच्चारण करने का यथेष्ट अभ्यास मिल जाता है।

(३) व्यक्तिगत जॉच — शिक्षक कुछ विद्यार्थियों को नया शब्द उच्चारण करने को कहता है। तथा उनकी ग़लतियॉ सुधारता है। यदि बहुतसे विद्यार्थियो का उच्चारण अशुद्ध हो, तो फिर से समवेत उच्चारण का अभ्यास और फिर वैयक्तिक जॉच कराया जावे।

(४) जॉच (सब शब्दों की)—शिक्षक इस प्रकार क्रम से सब नये शब्दों के उच्चारण का अभ्यास कराता है। अन्त मे वह सब शब्दो के उच्चारण की परीक्षा कराता है, और आवश्यकतानुसार कुछ शब्दों के सामूहिक उच्चारणो का फिर से अभ्यास कराता है। उच्चारण के साथ साथ कुछ कठिन शब्दों के हिज्जे की जॉच बहुत आवश्यक है।

(आ) **चर्चा :**

अब शिक्षक पाठ के नये शब्दों तथा मुहावरो के अर्थ उद्बोधित करता है, तथा पाठय-विषय की चर्चा कराता है। इसके लिए अत्यन्तावश्यक है कि पाठ कहानी रूप मे हो, या, उसके विविध भागों को दर्शन के लिए उपयुक्त चित्र (एक बड़ा चित्र या कई छोटे चित्र) हों।

यदि पाठ कहानी रूप मे है, तो शिक्षक पाठ मौखिक कहता है। अपने पाठ-वर्णन के समय, वह विद्यार्थियों से नये शब्दों के अर्थ उद्बोधित करता है। इस तरह वह पाठ का पूरा विषय समझाता है।

यदि पाठ उचित रीति पर चित्रित हो, तो वह चित्र या चित्रो पर प्रश्न पूछते हुए पूरे पाठ के शब्दार्थ तथा विषय की चर्चा करता है।

आशय उद्बोधित करने के समय, प्रत्यक्ष विधि विशेष उपयोगी है। कारण, मातृ-भाषा का उपयोग नही होता तथा नये शब्द का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तु या क्रिया से स्थापित होता है। इस कारण शब्द विद्यार्थियों के मस्तिष्क पर अच्छी तरह जम जाते हैं। नये शब्द या मुहावरे, इस विधि के अनुसार, इस प्रकार प्रत्यक्ष दर्शाये जा सकते हैं :

(१) वस्तु, चित्र या मूर्ति दिखाना (आम, अनार, काला, पीला, बलवान्, कमजोर)।

(२) कार्य या अभिनय द्वारा (दौडना, बैठना, लिखना)।

(३) स्पर्श या सकेत-द्वारा समझाना (चिकना, भारी, एक, चार)।

(४) विरोधी शब्दों द्वारा (बहुत-थोडा, गरम-ठंडा)।

(५) वाक्यों द्वारा (वह बीमार है, उसे दवाई चाहिए)।

यदि प्रत्यक्ष-विधि-द्वारा शब्दार्थ उद्बोधित न किये जा सकें, तो अधिक खींचा-तानी की जरूरत नहीं है, केवल मातृ-भाषा का पर्याय बता दिया जावे। यदि पाठ में कोई नवीन वाक्य-गठन आये हों तो शब्दार्थ समझाते समय उनका रूप समझा दिया जाय, तथा कुछ अभ्यास दिये जायें।

इस समय यह भी बताना आवश्यक है कि मातृ-भाषा मे केवल उन्हीं शब्दों के शब्दार्थ श्याम-पट पर लिखे जावें, जो प्रत्यक्ष विधि से नहीं समझाये जा सकते हैं। दूसरे शब्दों के शब्दार्थ लिखने की आवश्यकता नहीं। विद्यार्थियों का राष्ट्र-भाषा का शब्द-भंडार इस समय इतना विशाल नहीं होता कि उन्हें हिन्दी के शब्दार्थ दिये जा सके। वस्तु-निरूपण के समय, उनका मातृ-भाषा मे शब्दार्थ देना, मातृ-भाषा तथा प्रत्यक्ष विधि का दुरुपयोग है। पुनरावर्तन तथा प्रयोग के समय मातृ-भाषा के शब्दार्थ पूछे जा सकते हैं।

(इ) सस्वर वाचन :

(१) आदर्श वाचन (शिक्षक द्वारा)—बाँचते समय शिक्षक जहाँ ठहरे, विद्यार्थीगण अपनी पुस्तक मे, उस स्थान पर विराम-चिह्न लगाते हैं।

(२) समवेत वाचन (पूरे वर्ग द्वारा)—शिक्षक थोडा-थोड़ा अंश बाँचता है। विद्यार्थीगण उसका अनुसरण करते हैं। शिक्षक अग्रसर होता है। पूरी कक्षा उसका अनुगमन करती है। इस तरह पूरे पाठ का समवेत वाचन समाप्त होता है।

(३) व्यक्तिगत सस्वर वाचन (कई विद्यार्थीयों द्वारा)—सस्वर वाचन सदा विद्यार्थियों के सामने होना चाहिए। कारण, इस वाचन के द्वारा श्रोताओं का ध्यान आकर्षित करना पडता है।—शिक्षक विद्यार्थियों की गलतियाँ सुधारता है। यदि किन्हीं पंक्तियों का सस्वर वाचन ठीक न हो, तो समवेत वाचन द्वारा ग़लतियों को सुधारना उचित है। इस के बाद, फिर से वैयक्तिक सस्वर वाचन कुछ विद्यार्थियों द्वारा कराना चाहिए।

(ई) पुनरावर्तन—पूरे पाठ की बोध-परीक्षा।

(उ) प्रयोग—(अभ्यासार्थ प्रश्नों द्वारा)—यदि ये कक्षा मे पूरे न हो सके तो ये गृह-पाठ के लिए दिये जावें।

—★—

चौथा अध्याय

गद्य-शिक्षा

१. प्रारम्भ

यह पहले ही बतलाया गया है कि किसी भी भाषा को सीखने के लिए दो प्रकार की पाठ्य पुस्तके आवश्यक है : (१) सूक्ष्म-पाठ पुस्तक और (२) द्रुत-पाठ पुस्तक।

सूक्ष्म-पाठ की पुस्तकों मे दो प्रकार के पाठ होते हैं : गद्य और पद्य। इस अध्याय मे गद्य-शिक्षा का विवरण दिया गया है। पद्य-शिक्षा तथा द्रुत-पाठ की विवेचना अगले दो अध्यायों में क्रम से की गई है।

गद्य-शिक्षण-विधि समूचे माध्यमिक विभाग मे एक ही नहीं हो सकती। पिछले अध्याय मे यह स्पष्ट कर दिया गया है कि मिडिल तथा हाई स्कूलों मे शिक्षण-विधि भिन्न होगी। मिडिल स्कूल की कक्षाओं को हम दो अलग-अलग भागों मे बॉट सकते हैं :

(१) प्रथम वर्ष : प्रथम तीन महीने—द्वितीय तीन महीने—अन्तिम चार महीने, और

(२) द्वितीय तथा तृतीय वर्ष।

पिछले अध्याय मे, पहली कक्षा के प्रथम तीन महीने तथा द्वितीय तीन महीने के उपयोगी भाषा-शिक्षण-पद्धति की विवेचना की गई है। इस अध्याय मे अवशिष्ट प्रक्रमों की उपयुक्त गद्य-शिक्षण-विधि का विवरण दिया जा रहा है।

२. मिडिल स्कूल

अ. प्रथम वर्ष (अन्तिम चार महीने)

१. मुख्य उद्देश्य.—प्रथम छः महीने मे विद्यार्थी प्रायः २५० शब्द सीख जाता है, उसे सस्वर वाचन का विशेष अभ्यास दिया जाता है तथा वह थोड़ा-बहुत वार्त्तालाप कर सकता है। इस प्रक्रम मे सस्वर वाचन तथा वार्त्तालाप का अभ्यास चालू रखना आवश्यक

है। इसके साथ साथ मौन वाचन आरम्भ करना उचित है। कारण, विद्यार्थी का शब्द-भंडार अब भाव पूर्वक पढ़ने के लिए यथेष्ट हो जाता है।

२. **पाठो के प्रकार**—इस विधि में लगभग सोलह पाठ तथा १०० नये शब्द सिखाये जा सकते हैं। ये पाठ दो प्रकार के हो सकते हैं। प्रथमतः, पिछले प्रक्रम की नाई कुछ पाठ, जो या तो कहानी के रूप मे हों, या जो चित्रों के आधार पर पढाये जा सकें। इनके अध्यापन के लिए पिछले प्रक्रम की पद्धति चालू रखना चाहिए। द्वितीयतः, कुछ नये प्रकार के पाठ, जो न तो कहानी हो और न जिनके भावार्थ-व्यञ्जन के लिए क्रमिक चित्र ही हो, जैसे, जीवन-चरित्र, किसी शहर का वर्णन, कोई वनस्पति, इत्यादि। इस प्रकार के पाठों की आवश्यकता है। कारण, विद्यार्थियों को सब समय केवल साकार रूप मे (in concrete form) विषय नहीं समझाना चाहिए। उन्हे प्रकट से अप्रकट की ओर ले चलना उचित है। उन्हें बोध-पूर्वक वाचन का भी अभ्यास कराना चाहिए। इसके लिए मौन वाचन आवश्यक है।

३. पद्धति.*—द्वितीय प्रकार के पाठों की पाठन-विधि की यहाँ चर्चा की गई है।

(अ) **प्रस्तावना** (पुराने पाठ का पुनरावर्तन)।

(आ) **हेतु-कथन** (नये पाठ का विषय बताना)।

(इ) **विषय-निरूपण**

(१) नये शब्द :

(क) उच्चारण — आदर्श, समवेत और व्यक्तिगत (पिछले पाठों की नाई)।

(ख) चर्चा — जहाँ तक हो सके, शिक्षक पाठ के चित्रों का उपयोग कर तथा पाठ्य-विषय की चर्चा कर, कठिन शब्दों का शब्दार्थ उद्बोधित करे, पर इन पाठों में बहुत से शब्द ऐसे रहेंगे, जिनका भाव इस तरह नही निकाला जा सकता। इनके शब्दार्थ बाहरी दृष्टान्त, वाक्यों के उदाहरण, इत्यादि देकर प्रत्यक्ष विधि के द्वारा उद्बोधित किये जायँ। आवश्यकतानुसार टेढे-मेढे शब्दों के शब्दार्थ मातृ-भाषा मे दिये जायँ, और केवल ये शब्दार्थ श्यामपट पर लिखे जावें। यदि कुछ शब्दों के हिन्दी मे सरलार्थ दिये जा सकें, तो उन्हे भी लिख देना उचित है।

---

* **परिशिष्ट पहला** (पाठ-सूत्र ३) देखिए।

(२) सस्वर वाचन.—आदर्श, समवेत, और व्यक्तिगत (कुछ चुने हुए विद्यार्थियों द्वारा) — कारण, पाठ की प्रथमावस्था मे भद्दे सस्वर वाचन से पाठ का वातावरण बिगड़ जाता है।

(३) मौन वाचन (विद्यार्थियो द्वारा)—प्रारम्भ मे बोधपूर्वक मौन-वाचन अत्यन्त कठिन है। कठिन शब्द तथा विषय की कठिनाइयाँ पग-पग मे बाधा डालती हैं। इनके दूर हो जाने से मौन वाचन सुगम तथा सफल हो जाता है। इसी नीव पर भावी सफलता निर्भर रहती है।

(४) विद्यार्थियों की कठिनाइयो का हल (शिक्षक द्वारा) — उन कठिनाइयों का हल, जो (ख) मे समझाये न गये हों और जिन्हे विद्यार्थीगण मौन वाचन के पश्चात् भी न समझ सके हों।

(५) व्यक्तिगत सस्वर वाचन (कुछ विद्यार्थियों द्वारा)।

(ई) पुनरावर्तन (पूरे पाठ का)।

(उ) प्रयोग (अभ्यासार्थ प्रश्न — यदि ये कक्षा मे पूरे न हो सके, तो गृह-पाठ के लिए दिये जावें।

आ. द्वितीय तथा तृतीय वर्ष

१. प्रारंभिक कठिनाइयाँ.—प्रथम वर्ष, विद्यार्थियो को एक नवीन भाषा सीखने मे अनेक प्रारम्भिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है: अक्षरों तथा शब्दो का पहचानना तथा उनका ठीक उच्चारण करना, शब्दों का अर्थ समझना तथा उनका उपयोग सरल वाक्यो मे करना, प्रश्नो के उत्तर देना, सस्वर वाचन तथा बोध-पूर्वक पढना। इन कठिनाइयो को पार करने मे, कम-से-कम, एक वर्ष लग जाता है।

दूसरी और तीसरी कक्षा मे भाषा-शिक्षा, इस बुनियाद पर देनी चाहिए।

२. द्वितीय वर्ष तथा तृतीय वर्ष में गद्य-शिक्षा के ध्येय.—द्वितीय और तृतीय वर्षों मे, गद्य-शिक्षा के मुख्य ध्येय हैं:

(१) विद्यार्थीगण जो कुछ पढे; उसका अर्थ स्वय निकालने की चेष्टा करें।
(२) वे बोध-पूर्वक पढे,
(३) वे शुद्धता के साथ पाठ का विषय बोलकर तथा लिखकर प्रकट करे; और
(४) पठित शब्दों तथा मुहावरो का उचित उपयोग कर सकें।

हैं। वाचन का उचित अभ्यास न होने के कारण, अनेक विद्यार्थी ठीक भावार्थ नहीं निकाल सकते हैं। इस कारण मौन वाचन प्रारम्भ करने के पहिले, विद्यार्थीयों के सामने कुछ हेतु-प्रश्न रखना चाहिए। यदि पाठ्य-पुस्तक की टिप्पणी में ये प्रश्न न दिये हों, तो शिक्षकगण स्वयं इन्हे श्याम-पट पर लिख सकते हैं।

(४) आत्मीकरण :

(क) शिक्षक चावी-शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों और मुहावरों का अर्थ तथा पाठ का आशय उद्बोधित करता है।* वह कठिन शब्दों के सरलार्थ हिन्दी में श्याम-पट पर लिखता है।

(ख) पठित शब्दों तथा आवश्यक वाक्य-गठनों के उपयोग का मौखिक अभ्यास शिक्षक कराता है।

(५) व्यक्तिगत सस्वर वाचन (कुछ विद्यार्थियों द्वारा)।

(ई) पुनरावर्तन

(१) बोध–परीक्षा।

(२) प्रश्नों–द्वारा शिक्षक को कुछ ऐसे चावी-शब्द उद्बोधित करना चाहिए, जिनके द्वारा विद्यार्थीगण पाठ का साराश बढ़ा सकें। ये शब्द श्याम-पट पर लिख दिये जायँ।

(उ) प्रयोग

(१) अभ्यासार्थ प्रश्न।

(२) विद्यार्थीगण पाठ का साराश चाबी-शब्दों की सहायता से घर में लिख सकते हैं।

३. हाईस्कूल

१ **हाई स्कूल में गद्य-शिक्षा का ध्येय.**—मिडिल स्कूल मे तीन वर्ष तक राष्ट्र-भाषा का अध्ययन करने पर विद्यार्थी को हिन्दी का साधारण परिचय हो जाता है। वह हिन्दी मे अपने भावों को शुद्ध उच्चारण के साथ व्यक्त कर सकता है। पठित पाठों के आशय को अपने शब्दों मे विद्यार्थी लिख सकता है। और, सस्वर वाचन के अतिरिक्त मौन वाचन मे उसका मन लगता है।

---

* देखिए अगला प्रकरण।

वही बालक अब हाई-स्कूल में आता है और चार वर्ष हिन्दी सीखता है। आशा की जाती है कि इन अवधि में वह गद्य का अध्ययन कर अपने पैरों पर स्वतः खड़ा हो सकेगा।

(१) उसकी वाचन गति तथा अर्थ-बोध-शक्ति को पूर्णता प्राप्त होगी।

(२) उसका शब्द-भंडार इतना बढ़ जावेगा कि वह किसी शब्द के परिवर्तित रूप का अर्थ बिना कोश देखे ही समझ लेगा और

(३) उसे पुस्तकों का महत्व और उनके प्रयोग भली भाँति विदित हो जायेंगे। मनोरंजन तथा ज्ञानार्जन—दोनों ही—उसके पठन के प्रिय उद्देश्य हो जावेंगे।

मिडिल स्कूल में विद्यार्थी पढ़ता था एक ही लेखक-द्वारा लिखित पाठ्य पुस्तक। वही पुस्तक उसकी भाषा-शिक्षा की वेद थी। वाचन, रचना, व्याकरण—सभी कुछ—उसे इसी पुस्तक के आधार पर पढ़ना पड़ता था। पर, हाई स्कूल में, वह इन अंगों को अलग-अलग पुस्तकों के द्वारा सीखता है। वाचन की पाठ्य-पुस्तक में भिन्न-भिन्न लेखकों के लेखों का समावेश रहता है। ध्येय यह है कि इन्हें पढ़कर, वह विविध शैलियों से परिचित हो जावे।

२. **गद्य-शिक्षण-पद्धति.**—अब हमें विद्यार्थी को स्वावलम्बी बनाना है—उसे अपने पैरों पर खड़े होना सिखाना है। अब यह आवश्यक है कि बालक पाठ के भाव को बिना कुछ शब्दों के समझाये हुए, स्वतः अनुभव कर सके। इस कारण चाबी शब्दों को पाठ के आरम्भ में समझाना आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त, हाई स्कूल के विद्यार्थियों को विविध लेखकों की शैलियों को अपना सकने की भावना हो, इस कारण पाठ्य विषय को विशद रूप से आलोचना करने की आवश्यकता है। इस तरह, जो पद्धति मिडिल स्कूल में चलती थी, उससे अब काम नहीं चलेगा। उसमें कुछ परिवर्तन की आवश्यकता है।

हाई स्कूल में गद्य-शिक्षा के निम्न लिखित प्रधान अङ्ग हैं:*

अ. प्रस्तावना

प्रस्तावना में हम विषय को विद्यार्थियों के समक्ष उनकी रुचि तथा पूर्वार्जित ज्ञान के आधार पर उपस्थित करने का प्रयत्न करते हैं। पहले तो हम पिछले पाठ को कुछ प्रश्नों द्वारा दोहराते हैं। इसके बाद हम नये पाठ के विषय में कुछ ऐसी बातें कहते हैं कि जिससे पाठ की विचार-धारा समझना सरल हो जावे तथा

* **पहला परिशिष्ट** (पाठ-सूत्र ५) देखिए।

बालको के मन मे कौतूहल उत्पन्न हो जावे। इस प्राक्कथन के विभिन्न रूपों की चर्चा नीचे की जाती है।

(१) **लेखक के विषय में कुछ कह कर.**—इसका अर्थ लेखक की पूरी जीवनी देना या उसकी रचनाओं से छात्रो को परिचित कराना है। परन्तु यह कार्य कालिज में किया जा सकता है, स्कूलों में नहीं। यहाँ लेखक की जीवनी का उतना ही भाग कहना चाहिए, जो पाठ पर प्रकाश डाले। उदाहरणार्थ 'एक लेखक की आत्म-कथा' को लीजिए। इस समय शिक्षक को बताना आवश्यक है कि "इस पाठ के लेखक प० महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक थे। उनकी कहानी उनके ही मुँह से सुनो।"

(२) **पाठ के विषय पर भूमिका.**—विद्यार्थियों के सम्मुख लेख के ध्येय को उपस्थित करने के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है। जैसे, प्रो० रामचन्द्र शुक्ल का निबन्ध 'जान पहचान'। वार्तालाप-द्वारा, शिक्षक को 'जान-पहचान' की आवश्यकता बताना उचित है। यदि यह भूमिका न दी जाय, तो बालको को कुछ काल तक अँधेरे मे हाथ टटोलना पडता है।

(३) **पाठ के विषय में कौतूहल उत्पन्न करना.**—जैसे, मुशी प्रेमचन्द लिखित "गुल्ली-डण्डा"। शिक्षक इन प्रश्नो द्वारा इस पाठ का समारम्भ करता हैं: (१) तुममे से कौन कौन गुल्ली-डण्डा खेलते हो? (२) क्या तुम्हें अपने छुटपन के गुल्ली–डण्डा के साथियों के नाम याद आते हैं? अच्छा, इस पाठ में मुंशी प्रेमचन्द की इस खेल के सम्बन्ध मे आप–बीती सुनो।

इस तरह, प्रस्तावना के समय केवल उतनाही कहना चाहिए, जिससे विद्यार्थियो को पाठ की विचार–धारा समझने मे सहायता मिले। प्रस्तावना के लिए कुल मिलाकर तीन–चार मिनट से अधिक समय नहीं लगाना चाहिए।

आ. हेतु-कथन

प्रस्तावना के बाद, शिक्षक को पाठ का विषय स्पष्ट रूप से कह देना चाहिए। जैसे, अपनी पुस्तक खोलो 'पृष्ठ २४, पाठ–'गुल्ली–डण्डा'। आज, हम इस पाठ को शुरू करेंगे।

इ. विषय-निरूपण

सभवतः, पाठन–विषय एक घण्टे मे समाप्त नहीं किया जा सकता है अतएव शिक्षक को पहले ही निश्चय कर लेना चाहिए कि वह कितने अनुच्छेद या कितनी

२. व्युत्पत्ति-द्वारा : (१) उपसर्ग के सयोग से (पराजय, कपूत), (२) प्रत्ययो से बने शब्द (गुणवान्, घबराहट) (३) सन्धि-समास तोडकर (हिमालय, गृहलक्ष्मी)।

३. अन्य शब्द का प्रयोग कर : (१) शब्दार्थ (पार्श्व-पास, विह्वल—व्याकुल) (२) विलोम शब्द (कायर-वीर, दुर्बल—सबल) (३) मातृ-भाषा मे अर्थ बताकर जब हिन्दी मे कोई सरलार्थ न दिये जा सके; (४) अर्थ का विस्तार कर ('अधि-कार-गर्व'—अधिकार के गर्व मे डूबा हुआ, 'रत्न-जडित स्वर्ण-सिहासन'—रत्नों से जडा हुआ सोने का सिंहासन , (५) ऐतिहासिक, भौगोलिक, वैज्ञानिक अथवा साहित्यिक व्याख्या (अजता, रेड-इडियन, परमाणु, वाल्टर स्काट) ।

४. वाक्य-प्रयोग-विधि : (१) शब्द समझाने के लिए : (कोयल की वाणी मधुर होती है, पर कौए की कर्कश । हरिश्चन्द्र सत्यवादी राजा थे) । (२) मुहावरे को वाक्यो मे प्रयोग कर (नौकरी के छूटने के बाद, मोहन को **आटे-दाल का भाव मालूम हो गया**) ।

५. आधारित कथा तथा प्रसग (ऐतिहासिक, भौगोलिक, पौराणिक, वैज्ञानिक इत्यादि) समझाकर : "जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचन्द", "कोहनूर का सच्चा मोल पजाब-केसरी रणजीतसिह ने ऑका था—पॉच जूतियॉ।"

६. अलकारों को सरल भाषा मे समझाकर : राजाराम की क्रोधाग्नि अभी शान्त न हुई थी)।

७. वाक्य-विच्छेद कर, अर्थात् गुम्फित वाक्य को कई भागो मे बॉटकर; जैसे, "दीन-दुर्बलों को, अपने असह्य अत्याचारों की चक्की मे पीसनेवाला धनी पर-मात्मा के चरणो तक कैसे पहुॅच सकता है ?" यह वाक्य कई वाक्यो मे बॉटा जा सकता है : "जो धनी दीन-दुर्बलों को अपने असह्य अत्याचारों की चक्की मे पीसता है, वह परमात्मा के चरणो तक कैसे पहुॅच सकता है ? आदि ।

८. कल्पना जगाकर : "कमल के पत्तो से हरे-भरे सरोवर तुम्हारे मार्ग को सुन्दर बनावें, घनी छायावाले वृक्ष सूर्य के ताप से बचावे, रास्ते की धूल मे कमल-पराग की कोमलता हो और शान्त-स्निग्ध पवन तुम्हारे पीछे-पीछे पखा झलता हुआ चले।" (शकुन्तला)—इस पाठ का वर्णन कल्पना उद्बुद्ध कर के ही समझाया जा सकता है ।

इस प्रकार विद्यार्थी के प्रत्यक्ष, अनुमान या कल्पना का लाभ उठाकर, शिक्षक शब्द, मुहावरों इत्यादि का अर्थ समझा सकता है। अर्थ स्वय न बतलाते हुए, उसे इन साधना के द्वारा उद्बोधित करना चाहिए। व्याख्या सदैव विद्यार्थी के पूर्वार्जित ज्ञान के सहारे कराना आवश्यक है। शब्दार्थ की भाषा ऐसी हो कि जिससे विद्यार्थीगण परिचित हो। प्रत्यक्ष उदाहरण देते समय, जीवित, भयानक तथा गन्दे पदार्थ कक्षा मे दिखाना अनुचित है। अंग-सचालन तथा प्रदर्शन उचित तथा स्वाभाविक होना चाहिए।

(आ) **विचार-विश्लेषण.**--इस प्रकार व्याख्या द्वारा भाषा की कठिनाइयाँ दूर की जाती हैं। पर इसके साथ साथ हमें यह भी देखना चाहिए कि विद्यार्थीगण पाठ के विचार ग्रहण कर सके हैं या नहीं। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो भाषा-पाठ निरर्थक ही होता है। व्याख्या के साथ-साथ शिक्षकों को सरल, स्पष्ट और क्रमिक प्रश्नों द्वारा विद्यार्थियों से पाठ का पूरा पूरा ब्यौरा निकलवा लेना चाहिए। इस क्रम को विचार-विश्लेषण कहते हैं।

कई विद्वानों का कथन है कि विचार-विश्लेषण विस्तृत व्याख्या हो चुकने पर कराया जाय। पर हमे स्मरण रखना चाहिए कि विचार शब्दो के द्वारा प्रगट किये जाते हैं। जिस प्रकार, शब्दों के अर्थ समझे बिना विचार-बोध नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना विचार समझे शब्दार्थ भी हृदयगम नहीं हो सकते। इस कारण व्याख्या और विचार-विश्लेषण साथ-साथ चलना वाछनीय हैं।

व्याख्या करते समय, शिक्षक को प्रत्येक वाक्य तथा अनुच्छेद के विचार छात्रों को उद्बोधित करना चाहिए। जटिल विचारों का स्पष्टीकरण, दृष्टान्त तथा उदाहरणों द्वारा सरल हो जाता है। इसके निमित्त भिन्न भिन्न प्रकार के प्रसगों तथा तत्सबधी वार्ताओं का भी उल्लेख किया जा सकता है। शिक्षकों को उचित है कि लेख में आये हुए विचारों तथा निजी अनुभवों के साथ, नये विचारों का सबध जोडना, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

विषय-विश्लेषण का अन्तिम सोपान है — **बोध-परिक्षा**। शिक्षक लेख-सम्बन्धी प्रश्न पूछ कर इस बात की जाँच कर सकते हैं कि छात्रों ने कितना कुछ समझ लिया। यदि ये प्रश्न क्रम से पूछे जावे तो समस्त पाठ के विचारों की शृखला निर्मित हो सकती हो।

(६) **वाचन** (विद्यार्थियों द्वारा) — यदि पाठ विशेष कठिन न हो तो व्यक्तिगत सस्वर वाचन अथवा मौन वाचन। मौन-वाचन द्वारा विद्यार्थीगण वाचनीय विषय का भावार्थ फिर से पढकर समझ सकते हैं, तथा अपनी रही-सही कठिनाइयों के विषय मे फिर से प्रश्न पूछ सकते हैं।

ई. पुनरावर्तन

पूरे पाठ का दोहराना (भावार्थ तथा शब्दार्थ पर प्रश्न)।

उ. प्रयोग

ऐसे अभ्यासार्थ प्रश्न या समस्याएँ, जिनसे बालक नवार्जित ज्ञान का प्रयोग कर सके। यदि प्रयोग कक्षा मे समाप्त न हो सके तो इसे घर से पूरा करके लाने को दे दिया जाय।

३. **उपसंहार.**—यह हुई उच्च कक्षाओ की गद्य-शिक्षा-प्रणाली। मिडिल स्कूल और हाई स्कूल की राष्ट्र-भाषा-शिक्षा के ध्येय मे भी विशेष अन्तर है। मिडिल स्कूल मे हमारा ध्येय विद्यार्थी को भाषा-पढ़ाना होना है, परन्तु हाई स्कूल मे उसे साहित्य का — विशेषकर वर्तमान हिन्दी साहित्य का — कुछ परिचय देना रहता है। इसी कारण हाई स्कूल की पाठ्य पुस्तकों मे कुछ प्रसिद्ध लेखको का समावेश रहता है, ताकि विद्यार्थियों को उनकी भाषा-शैली तथा विशेषताओं को समझने तथा परस्पर तुल्ना करने का अवसर मिले। पर इसका उद्देश्य विद्यार्थी को समालोचक बनाना नहीं है।

इसका असली लक्ष्य होना चाहिए, विद्यार्थियो के मन मे साहित्यिक रुचि और आनन्दास्वादन का प्रारम्भ करना। प्रत्येक लेखकों के लेखो की भाषा, कहने के ढङ्ग, विचार-तारतम्य आदि मे कुछ-न-कुछ ऐसी विशेषताएँ रहती हैं, जो दूसरो मे नहीं मिल्ती हैं। कोई उर्दू के शब्द अपनाता है, तो कोई सस्कृत शब्दों के तत्सम रूपो की झड़ी लगा देता है तो कोई तद्‌भवो की भरमार करता है। कोई विनोदी है, तो कोई वकवादी है, और कोई तौल तौल कर शब्द रखने वाला है। पाठ पढाने के बाद, शिक्षकगण इस प्रकार के प्रश्न पूछ सकते है:

(१) इन शब्दो के विशेष अर्थ क्या हो सकते हैं?

(२) जिन शब्दों या वाक्यो के द्वारा भाषा रोचक हो गई है, उन्हे रेखांकित करो और बताओ कि उनके द्वारा भाषा में क्या परिवर्तन हुआ है?

(३) इस पाठ मे किस भाव की प्रधानता है?

(४) इस पाठ मे कौन सी नवीन शैली दिखाई पडती है?

४. **गद्य–शिक्षा–पद्धति पर विचार**

अब जरा गद्य-शिक्षा-पद्धति पर विचार किया जावे। भाषा-अध्ययन मे, प्रत्येक

विद्यार्थी को दो कठिनायों का सामना करना पडता है . (१) भाषा की कठिनाइयॉ (कठिन शब्द, मुहावरे, वाक्य-गठन, आदि) और (२) विचार-विषयक कठिनाइयॉ (पाठ मे अनेक विचार रहते हैं जो साधारणत विद्यार्थियो की समझ मे नहीं आते)। भाषा-शिक्षा तभी सफल हो सकती है, जब कि विद्यार्थीगग इन दोनों कठिनाइयों का ठीक ठीक सामना करना सीखे ।

इनके सिवा भाषा-शिक्षा का एक और उद्देश्य है। वह है विद्यार्थी की मौन वाचन शक्ति का विकास करना, ताकि वह किसी पाठ या पुस्तक को पढकर स्वत उसका भाव ग्रहग कर सके। कारग, भावी जीवन मे वाचन का सारा कार्य विद्यार्थी को मौन पठन से ही करना पडेगा।

विद्यार्थी को क्रमश. इन्हीं कठिनाइयों का सामना करना सिखाना पडता है। उसकी मूक-वाचन शक्ति का भी धीरे-धीरे विकास होता है। विद्यार्थी के भाषा विषयक ज्ञान की वृद्धि के लिए हम उसे पहिली कक्षा से सातवीं कक्षा तक क्रमश ले आये हैं। पहली कक्षा मे, पाठ के प्रथम में ही. शब्दों की व्याख्या तथा विचार-विश्लेषग किया जाता है, जिससे सस्वर वाचन के समय उसे पाठ समझने मे किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पडे।

दूसरी और तीसरी कक्षा मे, कुछ चावी-शब्दों की चर्चा प्रारम्भ मे की जाती है। उसका ध्येय विद्यार्थियों को मौन वाचन के लिए तैयार करना है। इनके द्वारा वे पाठ्य विषय के आशय को बहुत कुछ समझ सकते हैं, तथा शब्द की विशेष कठिनाई उनके मार्ग में आडे नहीं आती है।

अब वाचन को लीजिए। प्रथम वर्ग के प्रथम छः महीने मे विद्यार्थियों को सस्वर वाचन (समवेत तथा व्यक्तिगत) का पूर्ण अभ्यास कराया जाता है। इस समय, मौन वाचन का कोई स्थान नहीं होता। प्रथम वर्ष के शेष भाग मे, मौन वाचन का प्रारम्भिक अभ्यास दिया जाता है। पर यह तो छोटे बच्चे को अँगुली पकड़कर चलना सिखाना मात्र है। इस समय मौन वाचन का क्रम रहता है विषय-चर्चा के बाद, ताकि कठिन शब्द और विचार विद्यार्थियों की बोध शक्ति मे बाधा न डालें।

द्वितीय तथा तृतीय वर्ष में, मौन वाचन के बाद चर्चा की जाती है। इस समय, विद्यार्थियों का शब्द-भंडार, पाठ का आशय समझने के लिए काफी बडा हो जाता है। तिस पर भी कुछ चावी-शब्द पाठ के आरम्भ मे समझा दिये जाते हैं, और बोध-पूर्वक मौन वाचन के लिए कुछ हेतु-प्रश्न लिखे जाते हैं।

उच्च कक्षाओं चौथी से सातवीं। मे न आरम मे चाबी–श[illegible] ही [illegible]य जात हैं, और न मौन वाचन की सहायता के लिए अनेक हेतु–प्रश्न ही दिये जाते हैं। इस समय का मुख्य उद्देश्य रहता है विद्यार्थी को अपने पैरों पर खडे होने को तैयार करना; अर्थात्, जो कुछ वह पढे, उसका अर्थ बिना किसी अन्य की सहायता के समझ सके।

विद्यार्थियों को मिडिल स्कूल पद्धति से हाई स्कूल पद्धति की ओर क्रमशः ले जाना चाहिए। विशेपकर चौथी तथा पॉचवी कक्षाओं मे आवश्यकतानुसार दोनों पद्धतियो का संमिश्रण करना उचित है। उदाहरणार्थ, कुछ चाबी–शब्दों की चर्चा पाठ के आरम्भ मे की जा सकती है। इसी प्रकार जब पाठ विशेष कठिन हो, तब आत्मीकरण के बाद, मौन वाचन लाभप्रद होता है। कठिनाइयों के हल होने पर, मौन वाचन द्वारा कठिनतम पाठ का आशय हृदय पर जम जाता है।

पाँचवाँ अध्याय

पद्य-शिक्षा

१ गद्य और पद्य

प्रसिद्ध अँग्रेज कवि कोलरिज ने कहा है : "गद्य—शब्दों का उत्तमोत्तम क्रम-विधान है, और पद्य—उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम क्रम-विधान है।" इससे स्पष्ट है कि पद्य गद्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है। इसका प्रभाव मनुष्य की नस-नस में पडता है, वह अपनी छाप न केवल हृदय पर किन्तु अग-प्रत्यग पर लगा देता है। कविता मानवीय आन्तरिक भावना को जगाती है। कवि की तूलिका स्वर्ग, मर्त्य और पाताल के दृश्य खींच कर शब्दों में प्रत्यक्ष करती है

कविता का असर मनुष्य के हृदय पर गद्य से अधिक होता है। उदाहरणार्थ, निम्न लिखित पक्तियाँ पढ़िए .

> वृक्षन से मत ले,
> मन तू वृक्षन से मत ले,
> काहे वाको क्रोध न करहीं,
> सिंचत न करिहैं नेह।

सूरदासजी की उक्त पक्तियों मे कितना लालित्य और माधुर्य है! यही भाव यदि गद्य-रूप मे प्रकट किया जाता, तो रग फीका पड जाता। अपने गति-मय लालित्य के कारण कविता गद्य से शीघ्र याद भी हो जाती है। कवि अपनी रचना के समय शब्दों को केवल सावधानी से ही नहीं चुनता, वरन् उन्हें इस प्रकार सजाता है कि कविता के प्रत्येक शब्द तथा पद से ताल और सगीत फूट पडता है, जिसे सुनकर श्रोतागण विभोर हो उठते हैं, वे या तो सो जाते हैं, या, सजग हो उठते हैं, उनके दर्द-भरे हृदय पर शान्ति का प्रलेप हो जाता है, उनकी आँखों से अश्रु के स्रोत निर्झरित हो जाते हैं, वे सँभल कर खडे हो जाते और कर्तव्य की ओर उन्मुख हो जाते हैं। कवि तभी सफल होता है, जब वह अपनी कविता के शब्द, गति, भाव आदि के द्वारा मानव-हृदय में ऐसी प्रेरणा का उद्रेक करता है।

चूँकि कविता ताल पर सधी है, इस कारण वह छन्दोबद्ध होती है। पर गद्य नियमित गति में नहीं चलता। रागहीन होने के कारण वह हृदय को स्पन्दित नहीं कर सकता। बाणभट्ट की कादम्बरी में शब्द-माधुर्य और वाक्य-माधुर्य दोनों ही हैं, पर छन्दोबद्ध न होने के कारण यह प्रसिद्ध ग्रन्थ गद्य है, पद्य नहीं है।

साराश यह है पद्य छन्दोबद्ध रचना का नाम है। मात्रा और अक्षर—इन दोनों के योग से जब गद्य संगीतात्मक स्वर और ताल में बाँध दिया जाता है, तब उसे 'पद्य' कहते हैं। सभी पद्य कविता नहीं हैं। पद्य-बद्ध विशेष रचना ही कविता कहलाती है। "कविता," जैसा कि बाबू श्यामसुन्दरदास ने कहा है, "कलात्मक गति में सजी हुई भाषा है, जिसमें भावों का अभिव्यंजन होता है।"

२. पद्य-शिक्षा के उद्देश्य

स्कूल में पद्य-शिक्षा का क्या प्रयोजन है? पद्य वस्तुतः एक कला है। कला का उद्देश्य है सौन्दर्य का भाव जाग्रत करना। इस प्रकार, पद्य-शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए, छात्रों को काव्य के सौन्दर्य से प्रभावित करना, उनकी सौन्दर्यानुभूति की वृद्धि करना, उनके हृदय में सौन्दर्य के प्रति प्रेम उत्पन्न करना, तथा उन्हें काव्य-सौन्दर्य परखने के योग्य बनाना है।

कविता अपने सौन्दर्य से छात्रों को प्रभावित करती है और उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करती है। वह उनमें अपने लिए रुचि का प्रादुर्भाव करती है। इस उत्तरोत्तर रुचि-वृद्धि के साथ-साथ छात्रों के हृदय में कवि की अनुभूतियों तथा कल्पनाओं को समझने एवं ग्रहण करने की शक्ति का संचार होता है, तथा उनकी रागात्मक प्रवृत्तियों का संशोधन होता है। कविता विद्यार्थियों को भाषा की मार्मिकता का बोध कराती है, तथा विचारों को परिष्कृत एवं सुसज्जित रूप में व्यक्त करने की क्षमता बढ़ाती है।

कविता मनुष्य के जीवन को प्रभावित करती है। प्रसिद्ध कवि कीट्स ने कहा है, "कविता सौन्दर्य है, सौन्दर्य सत्य है।" इस कारण कविता सौन्दर्य-मय तथा सत्य-मय है। हृदय में सौन्दर्य भाव जगाकर कविता मनुष्य को सत्य की ओर ले जाती है। कविता मनुष्य के सामने रखती है—जीवन में सत्य क्या है और असत्य क्या है: कहाँ कूड़ा-कर्कट है, और कहाँ स्वच्छ एवं सुरम्य दृश्य है। वह मनुष्य को सत्य के परखने योग्य बनाती है, उसके दूषित मनोभावों को परिष्कृत करती है, उसके उदात्त भावों को संवर्द्धन देती है, तथा सात्त्विक भावनाओं का सञ्चार, विकास एवं परिपोषण करती है।

आज के विद्यार्थी देश के भावी नागरिक हैं। मानव-जाति की उन्नति उन्हीं पर निर्भर । इस भावी पीढ़ी में सत्य और सौन्दर्य को जाग्रत करने की आवश्यकता है।

यह महत्कार्य उचित पद्य-शिक्षा के ही द्वारा सम्भव है। स्कूल में पद्य-शिक्षा के उद्देश्य अधो-लिखित हैं :

(१) विद्यार्थियों को स्वर-प्रवाह तथा भावों के अनुसार कविता-पाठ के योग्य बनाना।

(२) उनमें कविता का भाव समझने, उसका रस लेने और अपने शब्दों में उसकी व्याख्या कर सकने की शक्ति उत्पन्न करना।

(३) उनको काव्य-सौन्दर्य परखने तथा काव्यानन्द का रसास्वादन करने के योग्य बनाना।

(४) उनमें किसी कवि के विशेष भाव, विचार या शैली का आनन्द लेने का सामर्थ्य उत्पन्न करना।

(५ सुन्दर समीक्षा के द्वारा, उनमें दूसरों के भावों के गुण-दोषों को परखने की क्षमता जागरण करना।

२. पद्य-शिक्षक

यदि कविता सत्यमय तथा सौन्दर्यमय है, तो इसे बालक के हृदय में वास्तविक रूप में जगाना शिक्षक के ही हाथ की बात होती है। वही कवि का सन्देश विद्यार्थियों को पहुँचा सकता है। वही उनके हृदय में कविता के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकता है। पर यदि शिक्षक स्वयं कविता-प्रेमी नहीं हुआ तो वह कवि की उक्तियों और कल्पनाओं को समझने एवं अनुभव करने में असमर्थ ही होगा। फलतः वह अपने विद्यार्थियों के हृदय में पद्य-रुचि जाग्रत करने में भी असफल ही रहेगा। जिसने स्वयं पथ नहीं देखा है, वह दूसरों को क्या पथ-प्रदर्शन करेगा? ऐसी स्थिति में शिक्षक का काव्य-रसिक होना आवश्यक है।

पद्य-शिक्षक का मुख्य गुण है पद्य-प्रेम। यदि वह स्वयं शुष्क-हृदय हुआ, तो उसके नीरस हृदय की छाप उसके विद्यार्थियों पर पड़े बिना नहीं रह सकती। परिणाम यह होगा कि विद्यार्थी भी अपने शिक्षक की भाँति शुष्क-हृदय बन जावेंगे तथा उनमें भी कविता के प्रति अरुचि एवं उदासीनता जाग उठेगी। फिर, जिस व्यक्ति के लिए कविता मृत-वत् हो, उसे तो उसके पढ़ाने का कार्य अंगीकृत करना ही नहीं चाहिए।

पर ऐसे नीरस और पाषाण-हृदय मनुष्य बहुत ही कम होते हैं। कविता-प्रेम तो सामान्यतः सभी के हृदय में भरा पड़ा है। माँ गीत गा-गाकर अपने दुलारे लालों को

सुलाती हैं, हिंस्र-पशु भी संगीत की स्वर-लहरी से विमोहित होकर उसके सुनने मे अपनी तल्लीनता का परिचय देते हैं। यों प्रत्येक प्राणी-विशेषकर मनुष्य मे कविता की कुछ-न-कुछ रुचि अवश्य ही होती है। वह रुचि उस समय जाग उठती है, जब वह किसी पद्य-प्रेमी के द्वारा पद्य-पाठ करते सुनता है।

शिक्षक का कर्तव्य है कि वह विद्यार्थियों मे इस भाव की वृद्धि करे। प्रशिक्षण-परीक्षा पास कर लेने पर ही शिक्षक को कविता पढ़ाने का परवाना नही मिल जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वह शिक्षक कविता पढ़ाने के योग्य ही नही है, जिसके हृदय मे कविता के प्रति प्रेम नहीं है। जिस कविता को वह पढाना चाहता है, वह उस कविता की भलीभाँति अध्ययन करे, कवि की भाषा तथा भावों को समझने का प्रयत्न करे और उसके विचारो मे अभिभूत होने मे अपने आपको तन्मय कर दे। धीरे-धीरे वह कवि के कल्पना-राज्य मे निश्चय ही अपने आपको विचरता हुआ पावेगा, वह कवि की अनुभूतियो को जैसे स्वयं अनुभव करने लगेगा और कविता के प्रभाव से उसके भीतर छिपी हुई शक्तियों का अपने आप विकास हो जायगा।

कविता पढ़ाने के लिए केवल विद्वता की आवश्यकता नही है। कविता शिक्षा के लिए शिक्षक मे गुण होना चाहिए: प्रफुल्लित मुखाकृति, जागृत हृदय, अदम्य उत्साह और कविता के लिए अगाध प्रेम। चेष्टा करने पर मानव-हृदय की रागात्मक वृत्तियो का संशोधन हो सकता है। स्कूल का सरल बालक, शिक्षक के सामने पद्य-जीवन के लिए खडा है। उपयुक्त शिक्षक उसे उस कविता-जगत् की ओर ले जाता है, जो सत्य-मय और सौन्दर्य-मय है। यदि ऐसा शिक्षक नहो मिला, तो वही बालक असमर्थता, अज्ञान और अवनति की दलदल मे पटक दिया जाता है, जहाँ वह फटफटाता है, चिल्लाता है और बेबसी की साँसे भरता है। थोड़ी देर बाद सब नीरव-चुप-शान्ति।

पद्य सभी शिक्षक पढ़ाना चाहते है; पर सभवतः सभी सफलता-पूर्वक नहीं पढ़ा सकते हैं। हाँ, प्रयत्न करने पर सफलता अवश्य मिल सकती है।

४. पद्य-प्रकार

कविताएँ नाना प्रकार की होती हैं, पर विद्यालय के विचार से कविताएँ साधारणत. तीन प्रकारो मे बाँटी जा सकती है: (१) बाल-गीत, (२) वर्णनात्मक पद्य और (३) साहित्यिक कविताएँ।

१. बाल-गीत.—ये कविताएँ प्रायमरी तथा मिडिल स्कूलों के लिए विशेष उपयोगी होती हैं। ये सगीतात्मक तथा अभिनयात्मक हों, तो फिर क्या कहना! इनमे वर्णित

विषय बालोपयोगी ही हों, बालकों की अनुभव–सीमा के बाहर की बातों का समावेश न होना ही श्रेयस्कर है। इनकी कड़ियाँ छोटी-छोटी होनी चाहिए। यथा सम्भव एक कविता अधिकतम २०–३० पंक्तियों की हो।

बालकों को जो कविता पढ़ाई जाय, उसकी भाषा, जहाँ तक बने, खड़ी बोली में ही हो, अथवा, खड़ी बोली से अधिक भिन्न न हो। पर इसका अर्थ यह नहीं है ये कविताएँ कोरी तुकबन्दियाँ हों। शब्द-माधुर्य तथा अर्थ-माधुर्य के साथ, इनमें राग और वृत्त का विचार चाहिए। अभाग्यवश, हिन्दी भाषा में बालकों के कवि बिरले ही पैदा हुए हैं।

२. **वर्णनात्मक पद्य.**—इन पद्यों में विविध घटनाओं, ऐतिहासिक तथा पौराणिक कहानियों, प्राकृतिक दृश्यों, महान् पुरुषों की कथाओं, विविध पात्रों तथा घटनाओं, आदि का वर्णन रहता है, जैसे, रामचरित उपाध्याय : भरत, सुभद्राकुमारी चौहान : झाँसी की रानी, सुमित्रानन्दन पन्त : पावन, गोपालदास व्यास : नेताजी का भारत से प्रस्थान, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : भिक्षुक, तुलसीदास : सीता-स्वयवर, इत्यादि।

३. **साहित्यिक कविताएँ.**—ये कविताएँ कल्पना-पूर्ण तथा विचारात्मक होती हैं। इनके विषय गम्भीर से गम्भीर तथा नीति, कारुण्य, दया, मानवता, विश्व-बन्धुत्व, आदि भावों से सम्बन्धित रहते हैं। इन कविताओं में भक्ति-काल तथा रीति-काल की अनेक रचनाएँ आ सकती हैं। आधुनिक कवियों के अनेक पद्यों को हम इस पर्याय मे रख सकते है, जैसे, हफीज जालन्धरी . बसाले मनमे प्रीति, अयोध्यासिंह उपाध्याय : कर्मवीर, सूर्य-कान्त त्रिपाठी 'निराला' : क्या गाऊँ ?, बालकृष्ण 'नवीन' : विप्लव-गान, गयाप्रसाद 'सनेही' : अछूत की चाह, मैथिलीशरण गुप्त : विश्वराज्य, इत्यादि।

सुभीते के लिए इस प्रकार कविताओं का वर्गीकरण किया गया है। यथार्थ में बहुत से पद्य ऐसे हैं, जिनको हम किसी भी वर्ग मे रख सकते हैं। बाल-गीत वर्णनात्मक भी हो सकते है, और साहित्यिक भी। वर्णनात्मक पद्य, मधुर बाल-गीत तथा साहित्य के सर्वांगों से पूर्ण कविताएँ—दोनों ही हो सकते हैं। कुछ साहित्यिक कविताएँ बाल-गीत भी हों सकती हैं, और वर्णनात्मक पद्य भी।

कविताएँ कवियों की लेखनी की झङ्कारें हैं। उन झकारों से झकृत हो बालक, युवक, वृद्ध — सभी नाचने लगते हैं। यदि कविता का राग सरल हुआ, तो वह बाल-गीत होगी। यदि उस कविता से किसी विशेष वस्तु, विशेष दृश्य, विशेष घटना या विशेष आकृति का ठीक-ठीक चित्र प्रस्तुत किया गया हो, तो वह वर्णनात्मक पद्य कही जा सकती है। और, यदि वही कविता मानव-हृदय के गूढ़तर रहस्यों से भरी पड़ी हो, तो वह साहित्यिक कविता हो जावेगी।

५. पद्य-चयन

अब प्रश्न उठता है कि हमे किस प्रकार के पद्य बालको के लिए चुनना चाहिए। कविता छात्रो के हृदय मे सौन्दर्य के प्रति प्रेम उत्पन्न करती है। इस कारण, प्रत्येक कविता सुन्दर होनी चाहिए, जिसकी सुगन्ध से बालकों के हृदय विभोर हो उठे, जिसका अर्थ वे समझ सके और जो उन्हे कवि के कल्पना-जगत् मे ले जा सके।

पाठ्य पुस्तक मे विविध प्रकार की कविताओं का चयन होना चाहिए। एक दृष्टि मे यह नाना प्रकार के सुमनो का सचय होवे। विविध रग और गन्ध के पुष्प निश्चय ही विद्यार्थी-हृदय को आकृष्ट करते हैं। फिर तो विद्यार्थीगण भौरों की नाई गुलाब, कमल, चम्पा, चमेली, जुही, मोगरा आदि फूलो पर मॅडराने लगते हैं। विद्यार्थियो के हाथो मे हमे चुने हुए नाना प्रकार के पुष्पो की ऐसी ही माला रखनी पडेगी, जिसमे होगी: भजन और प्रार्थनाएँ, हास्य रस तथा शान्त रस की कविताएँ, नैतिक दोहे, मानवता-पूर्ण तथा काल्पनिक कविताएँ, आदि। ऐसी कविताएँ, जिन्हे पढकर बालको के हृदय के विभिन्न भावो का पूर्ण विकास हो, कविता के प्रति उनमे अभिरुचि का प्रादुर्भाव हो और उनकी जिज्ञासा की तृप्ति हो। इस 'सुमन-सचय' या 'पद्य-माला' मे बालकों की मानसिक अवस्था के अनुकूल ऐसी कविताएँ उपलब्ध हो सके, जिनकी वे वस्तुतः खोज मे व्यग्र हो। जो उन्हे हॅसा सके, उनके हृद्गत घावो मे मरहम पट्टी कर सके, जिनमे सजीवन, सम्मोहन और शीतलता हो — ऐसी कविताओं का सचयन अपेक्षित है।

पर विद्यार्थीगण कविता-पाठ का पूर्ण लाभ तभी उठा सकेंगे जब कविताएँ उनकी मानसिक अवस्था, अभिरुचि, प्रवृत्ति तथा भाषा-ज्ञान-भडार के अनुरूप होगी। इन बातो की ओर ध्यान रखकर हम माध्यमिक शिक्षा की अवधि को चार भागों मे बॉट सकते हैं: (१) प्रथम वर्ष, (२) द्वितीय और तृतीय वर्ष, (३) चतुर्थ और पञ्चम वर्ष, और (४) षष्ठ तथा सप्तम वर्ष।

भिन्न भिन्न विभागो की छात्रोचित कविताओं का उल्लेख आगे किया गया है।

१. **प्रथम वर्ष**.—इस वर्ष विद्यार्थियो को बाल-गीत ही पढाना चाहिए। प्रथम छः महीने मे तो कविता-पाठ अत्यन्त कठिन है। कारण, विद्यार्थियो की शब्दावली २०० शब्दो से अधिक है ही नहीं। बहुत-सी पुस्तको मे कुछ तुकबन्दियॉ अवश्य रखी गई है, और कुछ पुस्तको मे ऐसे गीत रखे गये है जिन्हे हिन्दी-भाषी छात्र प्राथमिक पाठशालाओं मे प्रथम या द्वितीय वर्ष मे पढते है — ऐसी प्रमाप-हीन कविताएँ १०–११ वर्ष की आयुवाले अहिन्दी विद्यार्थियो के लिए हास्यास्पद प्रमाणित होती है। केवल इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कि पाठ्य-पुस्तक मे पद्य-पाठ आवश्यक है, औचित्य-हीन पद्य भर देना सर्वथा अशोभन होते है।

प्रथम वर्ष के अन्तिम चार महीनो की अवधि मे कविता-पाठ का आरम्भ करना चाहिए। इन कविताओ की भाषा अत्यन्त सरल होनी चाहिए। कविताओं मे विविधता सर्वथा प्रयोजनीय है, उदाहरणार्थ, (१) प्रार्थना, (२) नीति, (३) पशु-पक्षी का वर्णन, (४) देश-भक्ति, (५) अभिनयात्मक सवाद और (६) कथा।

२ **द्वितीय और तृतीय वर्ष.**—इस अवधि मे छात्रों की शब्दावली पर्याप्त बढ़ जाती है, इसलिए पद्य-पाठ के लिए किन्हीं विशेष कठिनाइयों का सामना नही करना पडता है। इस अवधि के अनुकूल अनेक उपयुक्त कविताएँ आजकल प्रकाशित हुई है। जहाँ तक बने, विद्यार्थियों के पाठ्य-क्रम मे आधुनिक काल के पद्य रखे जावे, और उन्हे वर्णनात्मक होना चाहिए। बालकों की अभिरुचि के अनुसार कविताओं मे विविध भावों का सामञ्जस्य होना चाहिए। यथा,—(१) प्रार्थना, (२) नीति, (३) इतिहास, (४) पौराणिक चर्चा, (५) अभिनयात्मक सवाद, (६) प्रकृति-वर्णन, (७) काल्पनिक वर्णन और (८) कहानी।

३ **चतुर्थ और पञ्चम वर्ष.**—इस समय विद्यार्थी १३–१४ वर्ष का हो जाता है। भाषा के प्रति उसका प्रेम बढता हुआ होता है, उसकी कल्पना-शक्ति वृद्धि-प्राप्त रहती है तथा उसकी ज्ञान-पिपासा तृप्ति के लिए लालायित होने लगती है। उस समय हम उसके हाथ मे प्रायः वर्णनात्मक, किन्तु अन्तोगत्वा भावात्मक तथा कुछ कल्पना-पूर्ण कविताएँ रख सकते हैं। जैसे ही विद्यार्थी चतुर्थ वर्ष से पञ्चम वर्ष की ओर बढे, वैसे ही कविताओं मे क्रमशः कल्पनाओं तथा भावों का आधिक्य होता जावे, जिससे पंचम वर्ष उत्तीर्ण होते ही वह गम्भीर कविताओं को समझ सकने योग्य हो जावे।

आधुनिक कविताओं के अतिरिक्त भक्ति-काल तथा रीति-काल के कुछ सहज पद्यों का समावेश पाठ्य-पुस्तक मे होना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों को मीरा, सूर, तुलसी, रहीम, इत्यादि कवियों का कुछ-कुछ परिचय हो जावे।

४. **षष्ठ और सप्तम वर्ष**—माध्यमिक विभाग के ये अन्तिम वर्ष हैं। इस समय विद्यार्थियों के समक्ष गम्भीर तथा कला-पूर्ण कविताएँ रखी जा सकती हैं। कतिपय वर्णनात्मक पद्यो के अतिरिक्त, अधिकाश पद्य पूर्ण रूप से भाव तथा कल्पना प्रधान एवं साहित्यिक हों। पिछली दो कक्षाओ की नाई आधुनिक काल की खड़ी बोली की कविताओं के अतिरिक्त, भक्ति-काल तथा रीति-काल की कुछ चुनी हुई कविताएँ रखी जावें। इनके द्वारा विद्यार्थियों को हिन्दी-कविता की विविध धाराओं का ज्ञान हो जावेगा।

कविताओं के सकलन के समय हमें यह सदैव ध्यान मे रखना चाहिए कि यह संग्रह उन विद्यार्थियों के लिए किया जा रहा है, जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है। यद्यपि

उनकी मानसिक स्थिति, अभिरुचि और प्रवृत्ति अपने सम वयवाले हिन्दी भाषा-भाषी छात्रों के समान अवश्य है, तथापि अहिन्दी भाषा भाषियो का भाषा-ज्ञान उनसे न्यून ही है। भले ही कविताओं के विषय तथा भाव एक ही हो, किन्तु भाषा हिन्दी भाषियों की अपेक्षा सरल होना चाहिए। इसके साथ ही हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्य-पुस्तक मे कविताओ का बाहुल्य न हो जावे। प्रत्येक पाठ्य-पुस्तक मे अधिकतम एक-चौथाई भाग पद्य के लिए सुरक्षित होना चाहिए। कविताएँ थोड़ी होवे, पर वे चुनी हुई हो तथा वे अच्छी तरह से पढ़ाई जावे।

६. पद्य–शिक्षा–पद्धति

अब प्रश्न उठता है कि कविताएँ किस प्रकार पढ़ाई जावें। इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है, प्रत्युत विचारणीय है। प्रोफ़ेसर हेडो का कथन है :

> Poetry-teaching is like love-making...each teacher must do in his own way,...that teaching poetry is like life, that we can lay down a few main principles that ought to be followed, but that method of applying these principles varies with the class, the poem, and the teacher *

अर्थात् पद्य-शिक्षा प्रणय-प्रणाली के सदृश्य है। प्रत्येक पद्य की निजी पद्धति होनी है। कविता जीवन की आलोचना है। पद्य शिक्षा के लिए कुछ सिद्धान्त स्थिर किये जा सकते हैं, तथापि ये सिद्धान्त कक्षा, कविता तथा शिक्षक की आवश्यकता के अनुसार बदलते रहेगे। इन सिद्धान्तों पर नीचे प्रकाश डाला जा रहा हैं।

अ. प्रस्तावना

गद्य-शिक्षा की नाई, अनेक कविताओं के पढ़ाते समय प्रारम्भिक भूमिका या प्राक्कथन की आवश्यकता पडती है। यह भूमिका विभिन्न प्रकार की हो सकती है : (१) कवि का परिचय—उसकी जीवनी, उसकी शैली, उसकी विविध रचनाएँ, आदि; (२) कविता का परिचय—कविता क्यों लिखी गई ? ऐतिहासिक, भौगोलिक, पौराणिक, सामाजिक आदि कारणो का उल्लेख, और (३) शब्दार्थ—कविता के कठिन शब्दो का बोध-पूर्ण परिचय।

* A Haddow On The Teaching of Poetry. London, Blackie & Sons, n d, p 32

शिक्षक को यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रस्तावना का मुख्य उद्देश्य यही है कि कविता के अध्ययन के लिए ऐसे वातावरण की सृष्टि की जावे, जिससे शिक्षक के आदर्श वाचन के समय कविता की भाव-धारा विद्यार्थीगण समझ सकें। यदि प्रस्तावना लम्बी चौडी या आडी-टेढी हुई तो पाठ का साराश क्लिष्ट एव बनावटी हो जाता है। विद्यार्थी-गण कवि से कविता सुनना चाहते हैं, न कि शिक्षक से। शिक्षक केवल सहायतार्थ है। यदि भूमिका की आवश्यकता हो तो उसकी योजना की जावे, अन्यथा सीधे कवि को ही अपना सन्देश विद्यार्थियों को सुनाने दिया जाय।

भूमिका की कब आवश्यकता है? जैसा कि पिछले अनुच्छेद मे बताया गया है, भूमिका विद्यार्थियो को कविता की ओर प्रवृत्त करने के लिए वाञ्छय है।

अब, विभिन्न प्रकार की प्रस्तावना की चर्चा नीचे की जाती है।

१. कवि का परिचय　कविता की भाव-धारा समझने के लिए, कवि की जीवनी का ज्ञातव्य अश देना आवश्यक है, उदाहरणार्थ, मीरा की ये पक्तियाँ लीजिए :

मैं तो मेरे नारायण की, आपहि हो गई दासी, रे।
लोग कहैं मीरा भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी, रे॥
विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीरा हाँसी, रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अविनासी, रे॥

कविता के भाव तथा अनेक शब्द समझने के लिए, विद्यार्थियों को मीरा की जीवनी का कुछ अश जानना अत्यावश्यक है। शिक्षक ऐसे समय कवि का आशिक परिचय दे। पर मीरा की शैली के विषय मे कुछ बताने की आवश्यकता नहीं है। पाठ के अन्त मे, शिक्षक चाहें तो इसे उद्बोधित कर सकते हैं।

२. कविता का परिचय.—इसका अर्थ कविता का साराश देना नही है, प्रत्युत कविता-अध्ययन की पूर्व पीठिका तैयार करना है। उदाहरण के लिए सुभद्राकुमारी चौहान की "झाँसी की रानी" कविता को लीजिए। विद्यार्थीगण कविता के विचार तभी जान सकेंगे, जब कि वे प्रथम स्वातन्त्र्य-युद्ध के विषय में कुछ जानें। इसी प्रकार रामधारीसिंह 'दिनकर' की कविता "दानवीर कर्ण" को समझने के लिए, विद्यार्थियों को कर्ण के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी कराना आवश्यक है। इन उदाहरणों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि आवश्यकतानुसार भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सम्बन्धित पूर्व पीठिका पठनीय कविता के पूर्व परिचय में देना अपेक्षित है। यदि पाठ किसी काव्य या लम्बी कविता का अश हो, तो इसका प्रसङ्ग समझा दिया जावे।

२. शब्दार्थ.—कई शिक्षक प्राक्कथन के समय, कविता के सब कठिन शब्द समझाते रहते हैं। यह अप्राकृतिक है। कविता का भाव समझते-समझते शब्दो का अर्थ-माधुर्य स्वयमेव फूट पडता है। बहुधा आदर्श वाचन के समय ही विद्यार्थीगण कठिन शब्दों का अर्थ ताड लेते हैं। कविता-पठन का मुख्य उद्देश्य सौन्दर्यानुभूति की वृद्धि करना है, न कि शब्दो की चीरा-फाडी करना है। पाठ्य पुस्तक के लिए ऐसी ही कविताएँ चुनी जावें, जिनमे अधिक कठिन शब्द न हों। यदि अभाग्यवश, कुछ ऐसी कविताएँ पाठ्य पुस्तक में हों तो उनके कठिन शब्दों की चर्चा आत्मीकरण के समय की जावे। कवि या कविता का परिचय देते समय कुछ चाबी-शब्द अवश्य समझा दिये जावें। ये ऐसे शब्द हो, जिनके स्पष्टीकरण के बिना कविता की भाव-धारा समझना वस्तुतः कठिन हो।

इसी प्रकार, प्रस्तावना बहुत ही समझ कर देना उचित है। इसकी आवश्यकता न हो तो कवि को ही अपनी कविता प्रारम्भ करने देना चाहिए। उदाहरणार्थ, मैंने अनेक शिक्षको को मैथिलीशरण गुप्त की "विश्वराज्य", 'बच्चन' की "कलियों से", बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की "विप्लव-गान" या 'रहीम के दोहे' पढ़ाते समय लम्बी-चौडी भूमिका देते देखा है। इस कृत्रिम भूमिका से कविता की नवीनता नष्ट हो जाती है। इसे कवि ही दे सकते हैं, शिक्षक नहीं।

आ. हेतु-कथन

भूमिका के पश्चात्, तुरन्त पाठ का विषय बतलाया जाय। इसके लिए व्यर्थ समय न नष्ट किया जाय।

इ. विषय-निरूपण

(गद्य-पाठ के समान, शिक्षक को पहले ही निश्चित कर लेना अभीष्ट है कि वह पूरे घण्टे मे कितनी पंक्तियाँ पढा सकता है, तदनुकूल पाठ को कितनी अन्वितियों में विभाजित करना उपयुक्त है।)

१. आदर्श वाचन (शिक्षक-द्वारा).—पद्य-शिक्षा मे आदर्श वाचन का स्थान बहुत ही महत्व-पूर्ण है, जैसा कि श्री हेडो ने कहा है: Poetry is an art of the ear, not of the eye — in other words, poetry is sound, not sight" कविता संगीत के समान है। इसका आनन्द बहुत कुछ श्रवण के द्वारा ही मिलता है, कोरे पठन से नहीं।

* Haddow op cit, p 24

इस कारण, पद्य-पाठ की सफलता बहुत कुछ सुवाचन पर निर्भर है। पद्य-वाचन तीन प्रकार का होता है: (१) राग-पूर्वक वाचन अर्थात् संगीत-प्रणाली में पढ़ना (२) केवल छन्द की गति और यति का ध्यान रखकर पढ़ना और (३) वाचन के साथ-साथ कविता के विभिन्न भावों को हाव-भाव, चेष्टा, अंग-संचालन आदि के द्वारा व्यक्त करना।

नीचे की कक्षाओं में राग-पूर्वक वाचन हृदय-ग्राही होता है क्योंकि गा-गाकर पढ़ाने से छोटे छोटे विद्यार्थियों का मन कविता की ओर खिंच जाता है। पर यदि शिक्षक का गला (स्वर) सुरीला नहीं हुआ तो संगीत हास्यास्पद हो जाता है। ऊँची कक्षाओं में द्वितीय पद्धति अधिक उपयोगी है। कारण, इस समय उचित आवृत्ति के द्वारा ही कविता के विचार विद्यार्थियों के समक्ष व्यंजित किये जा सकते हैं। अभिनय-प्रणाली का उपयोग उस समय किया जावे, जब कि कविता के कुछ शब्द और भाव अंग-संचालन-द्वारा विद्यार्थियों को समझाना आवश्यक हो। इस समय विद्यार्थीगण अपनी पाठ्य पुस्तकें बन्द रखें। वे अपने शिक्षक के अभिनय-नाट्य का निरीक्षण करें। इसके पश्चात् शिक्षक कविता का पुनर्वार सस्वर पाठ करे। उस समय विद्यार्थीगण अपनी पाठ्य पुस्तक की उन्हीं पंक्तियों पर दृष्टि गड़ाये रहें। पर यदि कविता में हाव-भाव प्रदर्शन के योग्य नाट्योचित-न होवे, तो अभिनय की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त अभिनय स्वाभाविक होना चाहिए, बनावटी नहीं। अंग-संचालन की अतिशयता, कृत्रिम अभिनय का प्रदर्शन तथा अत्युच्च स्वर के आरोहावरोह से छात्रों का ध्यान कविता की वास्तविकता से हटकर अध्यापक की ओर जाता है। फलस्वरूप कविता का आनन्द नष्ट हो जाता है।

सार अर्थ यह है कि आदर्श वाचन आकर्षक और प्रभावोत्पादक हो, जिससे विद्यार्थियों की आँखें आनन्द से चमक उठें। आदर्श वाचन के समय, शिक्षक कुछ शब्दों तथा भावों को समझा सकता है। यदि कविता पर ग्रामोफोन का कोई रिकार्ड हो, तो आदर्श वाचन के बाद वह बजाया जा सकता है।

२ भाव-परीक्षा—आदर्श पाठन के बाद, शिक्षक दो-तीन प्रश्न पूछ कर, कविता के मुख्य विचारों को छात्रों के प्रति उद्बोधित करे। यदि उपयुक्त उत्तर न मिले तो उसे फिर से कविता का सस्वर पाठ करना चाहिए। जब तक विद्यार्थीगण कविता का मुख्य विचार (central idea) न समझें, तब तक आत्मीकरण शुरू न किया जाय।

आदर्श पाठ पूरी कविता का हो, चाहे वह कविता कितनी ही लम्बी क्यों न हो। सम्पूर्ण कविता के आदर्श पाठ के बाद, शिक्षक कविता की भाव-परीक्षा करे। तत्पश्चात्, वह फिर से कविता की उन पंक्तियों को पढ़े, जिन्हें इस पिरियड में पढ़ाना है।

३. **आत्मीकरण.**—भाव-परीक्षा के बाद, आत्मीकरण आता है। इस समय समवेत वाचन, व्यक्तिगत सस्वर वाचन (विद्यार्थियों द्वारा) और मौन-वाचन मे से किसी एक को भी नही आना चाहिए। कविता का माधुर्य ताल और स्वर पर निर्भर रहता है। कविता के भाव और शब्दों को समझे बिना, ताल और स्वर का ज्ञान असम्भव है। और, इस ज्ञान के बिना, विद्यार्थियो-द्वारा सस्वर वाचन (समवेत और व्यक्तिगत) निरर्थक है।

आदर्श पाठ के बाद, कविता का विद्यार्थियों-द्वारा मौन-वाचन कराना प्रज्ज्वलित अग्नि मे शीतल जल छोडना है। जिस वातावरण की सृष्टि आदर्श पाठ-द्वारा की जाती है। वह इस समय मौन वाचन से नष्ट हो जाती है। आदर्श-वाचन कविता का प्राण है। जब तक विद्यार्थीगण कविता का पूरा भावार्थ न समझे, तब तक न मौन वाचन आ सकता है, और न आदर्श वाचन का त्याग किया जा सकता है। आत्मीकरण के समय भी शिक्षक को कविता के प्रभावशाली शब्दो तथा पक्तियों को बार बार उचित आरोह एव अवरोह के साथ पढना चाहिए, जिससे विद्यार्थियो का हृदय स्पन्दित हो, और वे कविता का भाव समझ सकें।

आत्मीकरण के समय, शिक्षक को विस्तृत व्याख्या और विचार-विश्लेषण की ओर ध्यान देने की आवश्यकता पडती है। यह विस्तृत व्याख्या और विचार-विश्लेषण गद्य-शिक्षण के प्रसग में बताई हुई शिक्षण-विधियो द्वारा किया जाय। * पर गद्य-शिक्षा और पद्य-शिक्षा मे एक विशेष अन्तर है। गद्य-शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है विद्यार्थियों को भाषा-ज्ञान, अर्थ-बोध, शब्द-भडार-वृद्धि तथा भावाभिव्यञ्जन मे सहायता पहुँचाना। पर पद्य-शिक्षा का उद्देश्य है कविता का भाव हृदयङ्गम करना, कवि के कल्पना-राज्य मे विचरण करना और कवि के शब्दों को जादू के समान अनुभव करना। पद्य शिक्षा मे न तो शब्दार्थो की ओर ही विशेष ध्यान देना उचित है, और न वाक्य-प्रयोग तथा व्याकरण के पचडे मे पडना ही आवश्यक है। ऐसा करने से कविता की सरासर हत्या हो जाती है।

कविता-शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है कवि के भावों को समझना और कविता के रस का आस्वादन करना। शब्दो के अर्थ प्रवचन-विधि-द्वारा बताये जावे। उनका स्पष्टीकरण मात्र यथेष्ट है। कविता पढ़ाते-पढाते, आवश्यकतानुसार, समय समय पर, कुछ पक्तियों का अन्वय देना आपत्तिजनक नहीं होगा, क्योंकि इससे अर्थ समझने मे पर्याप्त सहायता मिलती है। पर यदि कविता सरल है और खडी बोली मे है तो अन्वय बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। व्याख्या करते समय उदाहरण दृष्टान्त अधिक न लाये जावें, और

* देखिए पृष्ठ ७६ ७८।

न चित्रों या वस्तुओं द्वारा प्रत्यक्ष उदाहरण ही अधिक दिये जावे। पद्य-द्वारा हम विद्यार्थियों को कवि के कल्पना-जगत् की ओर ले जाना चाहते हैं, पर दृष्टान्तों या उदाहरणों का प्राचुर्य इस अनुभूति मे बाधक हो जाता है।

उदाहरणार्थ, सुमित्रानन्दन पन्त की 'सावन' शीर्षक कविता लीजिए। इसे पढ़ाते समय किसी शिक्षक ने विद्यार्थियो के सामने वर्षा के दृश्य का चित्र टॉगा। चित्र में चमचमाती हुई बिजली, नभाच्छादित मेघ-माला, गिरती हुई जल-धारा, तथा ताड वृक्षों से झरती हुई बूँदों का दृश्य था। चित्र लटकाकर तथा प्रश्न पूछ कर शिक्षक ने बालकों को उद्बोधित किया : चमक रही घन-उर मे, जल-फुहार गिरती झर-झर, फैले-फैले ताडों के दल, लम्बी-लम्बी अगुलियॉ, .इत्यादि।

इस प्रणाली से शिक्षक ने बालकों को चित्र परिचय दिया, और बालकों ने उसे भली भॉति समझ भी लिया, परन्तु विद्यार्थी पन्तजी के कल्पना-राज्य में विचरण करने से वञ्चित ही रहे। उनकी ऑखों के सामने न झूमा झम झम झम झम मेघ और न झमकी छम छम छम छम बूँदें ही। न डोला उनकी ऑखों में चर चर चर चर तरु, और न नाची चम चम चम चम बिजली, पख बिना तारे, शशि, दिनकर!! तब, इस आडम्बर की क्या महत्ता या सार्थकता रही?

४. **मौन-वाचन**.—विद्यार्थीगण कविता को शान्तता-पूर्वक पढें, तथा पूरे पाठ को समझने का प्रयत्न करें।

५. **बोध-परीक्षा**.—विद्यार्थीगण पुस्तक बन्द करे, और शिक्षक सम्पूर्ण पाठ पर प्रश्न पूछे।

६. **रसास्वादन** * (Appreciation) के विषय मे प्रश्न।

७. **व्यक्तिगत सस्वर वाचन** (विद्यार्थियों द्वारा) :

(१) प्रथम और द्वितीय वर्ष — समवेत वाचन और विद्यार्थियों द्वारा व्यक्तिगत सस्वर वाचन।

(२) शेष कक्षाओं में छात्रों-द्वारा समवेत वाचन की आवश्यकता नही है।

(३) विद्यार्थियों द्वारा अभिनय (यदि कविता इस योग्य है)।

ई. पुनरावर्तन—भावार्थ तथा शब्दार्थ।

---

* देखिए पृष्ठ ९५।

ड. प्रयोग—कविता के अनुसार।

७. रसास्वादन

कविता के पाठ दो प्रकार के होते हैं : (१) रसास्वादन के लिए और (२) भावार्थ के लिए। इस स्तम्भ में हम पहले प्रकार के पाठो का विवेचन करेंगे। आगे, दूसरे प्रकार के पाठों की चर्चा की जायगी।*

कविता सौंदर्यमय होती है। कविता पढ़ाने का लक्ष्य यही होता है कि विद्यार्थीगण कविता को समझ कर उसके सौन्दर्य की अनुभूति कर सके। कविता पाठ के समय, शिक्षक विद्यार्थियो को निम्नाङ्कित चार प्रकार के सौन्दर्यों की अनुभूति करा सकते हैं :

(१) विचार–सौन्दर्य—कविता मे कौन-कौन से विचार सुन्दर हैं। कवि उनको पाठों के सम्मुख कैसे रखता है। उनका पाठकों पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

(२) कल्पना-सौन्दर्य—कवि कल्पना का पुजारी होता है। वह अपनी कविता मे भूत, वर्तमान, भविष्य, दृश्य–अदृश्य, एव देश-विदेश मे प्रजापति की नाई घूमता फिरता है। पाठकों के सामने वह चाक्षुष-चित्रो, गध-चित्रों, स्पर्श-चित्रों, श्रवण-चित्रों तथा क्रिया-चित्रों को उपस्थित करता है। सफल शिक्षक वही है, जो विद्यार्थियों को कवि के कल्पना-प्रदेश में प्रवेश करा सके।

(३) शैली-सौन्दर्य—सुन्दरतम शब्दो का चयन कर तथा उन्हे यथा-स्थान अवस्थित कर कवि कविता की सृष्टि करता है। कविता-सृजन के समय कवि को ध्यान रखना पढता है शैली-सौन्दर्य का—अलकार, शब्द-शक्तियों, गुण, रीति, छन्द तथा सगीत के औचित्य का। एक छोटे से छोटा बालक भी गीत-तत्व की अनुभूति करता है, और वही बड़ा होकर उन शब्दो के सौन्दर्य का अनुभव करता है, जिनसे काव्य-सौन्दर्य की पुष्टि होती है।

(४) भाव-सौन्दर्य—प्रत्येक कवि मे एक प्रधान भाव की अभिव्यञ्जना रहती है। कवि अपनी रचना मे इस भाव की अन्यान्य भावों से पुष्टि करता है। धीरे-धीरे वही प्रधान भाव-धारा कविता के अंग-प्रत्यग से निःसृत हो पड़ती है। कविता की व्याख्या करते समय, शिक्षक विद्यार्थीयों के हृदय मे इन भावनाओं को जागरित करता है, तथा भाव-सौन्दर्य के पान-द्वारा उन्हे आनन्द-विभोर बना देता है।

---

* चौथे भाग का अध्याय छठवाँ देखिए।

व्याख्या तथा विचार-विश्लेषण के साथ, शिक्षक को इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए। कविता के पाठ से विद्यार्थियो को आनन्दानुभूति तभी होगी, जब कि वे कवि के भाव, विचार, शैली तथा कल्पना का आस्वादन कर सके। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि शिक्षक स्वय यह ढिढोरा पीटने लगे कि देखो श्रीसुमित्रानदन पन्त ने 'सावन' का कितना सुन्दर चित्र खीचा है, उस दृश्य मे कैसी अनुपमता है, ये शब्द कितने कर्ण-मधुर, सजीव एव उत्प्रेरक हैं, आदि। शिक्षक कवि के भावों को विद्यार्थियों के सामने उपस्थित करने मे केवल सहायक मात्र होता है। विद्यार्थीगण कविता का अधिकतम एव वास्तविक रसास्वादन तभी कर सकेंगे, जब कवि ही अपने विचारों को स्वय उनके सामने रखे, दूसरे शब्दों मे, विद्यार्थी स्वय कवि के भाव-जगत् मे अपने आप को प्रविष्ट कर दे।

जब तक सम्पूर्ण कविता का पढाना समाप्त न हो जाय, तथा विद्यार्थियों की कठिनाइयों का हल न हो जाय, तब तक छात्रों से रसास्वादन के विषय में प्रश्न करना असगत ही है। छात्रगण कविता के सौदर्य की पूर्ण रूप से तभी अनुभूति कर सकेंगे, जब कि वे कवि के सम्पूर्ण भाव और विचार समझ गये हों। भाव-विचार जानकर ही, कवि की शैली तथा काव्य-कौशल का मूल्याङ्कन किया जा सकता है। यह नही सोचना चाहिए कि कविता का रसास्वादन केवल उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी ही योग्यता-पूर्वक कर सकते हैं। ससार मे सभी सौन्दर्य के पुजारी हैं। प्रारम्भिक कक्षाओं के विद्यार्थीगण भी कविता चाव से पढते हैं, सुनते हैं, गाते हैं तथा आनन्द मे मग्न होकर नाचने लगते हैं। कविता पाठ के बाद, शिक्षक उनसे बिना हिचकिचाहट के पूछ सकते हैं : "तुम्हें इस कविता मे कौन से शब्द तथा विचार सब से अधिक पसन्द आये?"

८. कविता मे अभिरुचि बढाने के साधन

कविता मनुष्य को सत्य की ओर ले जाती है। वह उसके मनोभावों को परिष्कृत करती है। वास्तव मे शिक्षा का यह एक महान उद्देश्य है, अतः विद्यालयों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों के हृदय मे कविता के प्रति अक्षय प्रेम प्रादुर्भूत करें—ऐसा प्रेम जो जीवन भर उनमे अक्षुण्ण रहे। इसके लिए कक्षा में अनेक उपायो का अवलम्बन लिया जा सकता है। नीचे कुछ उपायों का उल्लेख किया जाता हैं।

१. कविता कठस्थ करना.—विद्यार्थियों को अपनी रुचि के अनुसार कविताएँ कठस्थ करने के लिए प्रोत्साहित करना उचित है। बचपन की स्मरण की हुई कविताएँ जीवन-पर्यन्त काम आती हैं, तथा नित्य नवीन आनन्द वृद्धि का साधन होती है।

२. काव्य-संग्रह-संकलन—एक सुन्दर काव्य-सग्रह के सकलित करने के हेतु छात्रों को प्रवृत्त करना वाछनीय है। खोज-खोजकर कविताएँ चुनने से, बालकों मे कविता पढने की रुचि बढती है।

३. कविता-प्रतियोगिता.—समय समय पर कविताओं के पाठ करने की प्रतियोगिताओं का आयोजन करना चाहिए। प्रतियोगिता के दो रूप हैं पहला, जिसमे कक्षा के सभी छात्रगग भाग ले सकते हैं. और दूसरा, जिसमे विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं के, अथवा, विभिन्न विद्यालयों के प्रतिनिधि छात्रगग भाग लेते हैं। प्रतियोगिताएँ अनेक प्रकार की हो सकती हैं: प्रथमतः, 'सुभाषित प्रतियोगिता' जिसमे विद्यार्थिगग कुछ चुनी हुई कविताएँ सरस कण्ठ से अभिनय-पूर्वक सुनाते हैं। द्वितीयतः, विद्यार्थीगग किसी निर्धारित विषय पर कविता-पाठ कर सकते हैं: जैसे, वर्षाऋतु, मित्रता, दुर्गा-स्तुति, आदि। तृतीयतः, कंठस्थ की हुई कविताओं का अन्त्याक्षरी के खेल-द्वारा सुन्दर प्रयोग किया जा सकता है। इस खेल मे एक दल का एक विद्यार्थी एक पद सुनाता है। इसके उत्तर मे, प्रतिद्वन्द्वी दल का विद्यार्थी ऐसा पद सुनाता है, जिसका प्रथम अक्षर पूर्व पठित पद का अन्तिम अक्षर से शुरू होता है। तीसरे पद का प्रारम्भ दूसरे पद के अन्तिम अक्षर से होता है। इसी प्रकार दोनों दल के लोग परस्पर कविता-पाठ करते चलते हैं। यदि कोई दल उपयुक्त कविता नहीं सुना पाता तो प्रतियोगिता मे उस दल की हार हो जाती है। जैसे :

पहला दल—सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्ताँ हमारा।

दूसरा दल—राणे भेजा जहर-प्याला, मै अमृत कर पी जाना।

पहला दल—नाथ, तुमने ही हमे पैदा किया:
रक्त, मज्जा, माँस भी तुमने दिया।

इन साधनो के सिवा, विद्यालयो मे समय-समय पर अन्य उपाय भी अपनाये जा सकते हैं। जैसे :

(१) कवि-जयन्ती—किसी कवि के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य मे उसकी कविताओं का पाठ करना।

(२) कवि-सम्मेलन—नगर या आसपास के प्रसिद्ध कवियों को निमन्त्रित करके कवि-सम्मेलन का आयोजन करना।

(३) कवि-दरबार (किसी भी विशेष युग के कवियो के नाट्य-विधि से अभिनयात्मक सम्मेलन की योजना)—विद्यार्थीगग विभिन्न कवियो की वेश-भूषा से सजित होकर, भावभङ्गिमा के साथ साभिनय उनकी रचनाओं की आवृत्ति कर सकते हैं।

(४) विविध उत्सव—किसी उत्सव के समय, प्राचीन कवियो की रचनाएँ सुनाना: जैसे, जन्माष्टमी के समय श्रीकृष्ण-काव्य का पठन, गान्धी-जयन्ती के अवसर पर गान्धीजी पर कविताएँ सुनाना, होली के समय होली विषयक कविताएँ पढना, इत्यादि।

——*——

छठा अध्याय

द्रुत वाचन

१. द्रुत वाचन का महत्व तथा उद्देश्य

वाचन, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दो प्रकार का होता है, सूक्ष्म और द्रुत। सूक्ष्म वाचन का उद्देश्य पाठ्य पुस्तक के प्रत्येक शब्द, वाक्य तथा विचार का विद्यार्थियों-द्वारा अध्ययन है, जिससे वे पाठ्य विषय को अपने शब्दो मे स्पष्ट व्यक्त कर सके। द्रुत वाचन का प्रधान ध्येय विद्यार्थियों मे समझ कर पढने मे तीव्रता उत्पन्न करना है, जिससे वे भावी जीवन मे साहित्य की अनेक पुस्तके सरलता-पूर्वक पढ सके, तथा समझ सके।

द्रुत वाचन के समय विद्यार्थीगण अपने पूर्वार्जित ज्ञान के सहारे पाठ को समझने की चेष्टा करते हैं। इस समय वे बहुधा शिक्षकों की सहायता नही लेते है। इस प्रकार द्रुत वाचन उन्हे स्वतन्त्र रूप से साहित्य के अध्ययन का अभ्यास कराता है। ज्ञान-वृद्धि तथा साहित्यिक रसास्वादन के लिए, भावी जीवन मे विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता होती है। विद्यार्थियो की वाचन-शक्ति बढाकर तथा उन्हे स्वाध्यायी बनाकर, द्रुत वाचन उन्हें भावी जीवन के योग्य निर्माण करता है।

सार अर्थ यह है कि द्रुत वाचन वेग से पुस्तक पढ़ कर, उसका अर्थ समझने की शक्ति बढाती है। पर यह तीव्रता न तो सूक्ष्म-पाठ द्वारा ही आती है, और न सस्वर वाचन द्वारा ही उत्पन्न होती है। इसका आविर्भाव होता है मौन-वाचन-द्वारा। सूक्ष्म पाठ के समय, विद्यार्थीगण पाठ्य विषय को शान्तता से अवश्य पढ़ते हैं· पर उन्हे मौनवाचन का यथेष्ट अभ्यास नही मिल पाता है। इसका वास्तविक उपयोग द्रुत पाठ के प्रसग मे ही कराया जा सकता है।

२. सहायक पुस्तकें*

द्रुत वाचन के लिए उपयुक्त सहायक पुस्तकों की आवश्यकता होती है। इनका विषय रोचक तथा विद्यार्थियों की अवस्था के अनुकूल होना चाहिए। इनकी शब्दावली

---

* देखिए पृष्ठ ५१।

ऐसी हो, जिसका ज्ञान विद्यार्थियों ने पहले ही सूक्ष्म-पाठ्य पुस्तकों मे प्राप्त किया हो, जिससे कोई कठिन शब्द या वाक्य उनके वाचन-प्रवाह मे विघ्न न डाले। विभिन्न कक्षाओं की भाषा और उनके विषय मे अनेक-रूपता अपेक्षित है।

हिन्दी-साहित्य में उपयुक्त सहायक पुस्तकों की बहुत ही कमी है। शिक्षकगण विद्यार्थियो के हाथ मे उन पुस्तको को कभी न रखे, जिनकी भाषा क्लिष्ट हो तथा जिनका विषय दुर्गम हो, और बोधगम्य न हो। क्लिष्टता एव दुर्गमता से भरी पुस्तकों को विद्यार्थी-गण स्वतः नही समझ सकेगे। फलतः उन्हे समझाने के लिए शिक्षकों को सूक्ष्म पाठ-पद्धति के सहारे शिक्षण देना होगा, और इस प्रकार की शिक्षा से द्रुत पाठन का उद्देश्य ठण्डे बस्ते मे पड जायगा। द्रुत पाठन के उद्देश्य की वास्तविक सफलता के लिए समुचित सहायक पुस्तकों का चुनाव बहुत ही आवश्यक है। शीघ्र पाठन की सफलता तमी सम्भव है, जब कि विद्यार्थीगण स्वयं वेग-पूर्वक पुस्तक पढकर उसका तात्पर्य समझ ले, और उन्हें शिक्षकों की आंशिक सहायता की ही आवश्यकता अनुभूत हो। विद्यार्थियो को आत्म-निर्भर बनानेवाली तथा शिक्षक के सहारे की प्रतीक्षा न करानेवाली सहायक पुस्तको का चयन करना चाहिए।

२. द्रुत वाचन पद्धति

द्रुत वाचन का आरम्भ उसी समय किया जा सकता है, जब कि विद्यार्थीगण शब्दों का भाव-बोध, उच्चारण करने की अपेक्षा, सत्वरता-पूर्वक कर सकें। इसके साथ-साथ विद्यार्थियों को मौन वाचन का कुछ-कुछ अभ्यास होना चाहिए। इस अभ्यास के बिना, शीघ्र पठन आरम्भ करना असम्भव है। इस दृष्टि-कोण से द्वितीय वर्ष के पूर्व द्रुत वाचन का आरम्भ किसी भी स्थिति मे सम्भव नही है।

द्रुत वाचन के शिक्षण मे निम्न लिखित शैली-क्रम का प्रयोग करना चाहिए :

अ. प्रस्तावना

पाठ्य-विषय के प्रति कौतूहल उत्पन्न करना तथा पृष्ठ-भूमि तैयार करना—शिक्षक विद्यार्थियों के साथ, विषय की रूपरेखा की चर्चा करे; यथा, "किस देश की कहानी, कथा या चर्चा है"—"भौगोलिक तथा ऐतिहासिक वातावरण"—"मुख्य पात्र"—जैसे प्रमुख विषयों पर सरासरी वार्ता करे। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि विषय की सम्पूर्ण सामग्री का शोध या विवेचन किया-कराया जावे।

आ. हेतु-कथन

पुस्तक तथा पाठ्य-विषय का उद्देश्य कहना।

इ. विषय-निरूपण

१ मौन वाचन.—पाठ या अन्विति का विद्यार्थियों-द्वारा मौन वाचन, तथा हेतु-प्रश्नों के उत्तर खोजना। यदि पुस्तक में हेतु-प्रश्न न दिये हों (जो सहायक वाचन की पुस्तक का एक अक्षम्य दोष है) तो शिक्षक स्वयमेव उपयोगी प्रश्न चुनकर श्याम-पट पर अङ्कित करे। विद्यार्थीगण, आवश्यकतानुसार, अँगुली उठाकर शिक्षक को अपने पास बुलावें, तथा उनसे कठिन शब्दों के अर्थ समझें। उच्च कक्षा के विद्यार्थियों को अपने पास 'जेबी कोश'* रखना चाहिए। इसकी सहायता से, शिक्षक को आमन्त्रित किये बिना ही, विद्यार्थीगण स्वयं शब्दार्थ निकालें। यदि कोई अंश कठिन प्रतीत हो, तो शिक्षक उसकी व्याख्या करने या सरलार्थ बतलाने में संकोच न करे। पर व्याकरण, रचना, आदि की ओर कोई ध्यान न दिया जाय।

विद्यार्थियों के मौन वाचन के समय, शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी के वाचन के ढंग की ओर ध्यान देना उचित है—वह ठीक प्रवाह और गति से पढ़ रहा है, या, उसके दृष्टि-सोपान में लय का अभाव है। कमजोर विद्यार्थियों को तो मौन वाचन का यथेष्ट अभ्यास देना ही चाहिए।

२ बोध-परीक्षा.—मौन वाचन के अनन्तर, शिक्षक हेतु-प्रश्नों को पूछ कर कुछ चाबी-शब्द श्याम-पट पर लिखता है।

३. आवृत्ति.—चाबी-शब्दों की सहायता से, शिक्षक विद्यार्थियों से पाठ का सारांश कहलवाता है। ऊँची कक्षाओं में, श्याम-पट पर चाबी-शब्द लिखने की आवश्यकता नहीं है।

ई प्रयोग.—उचित गृह-अभ्यास।

४. स्कूल-पुस्तकालय

१. भूमिका.—द्रुत पाठ का उद्देश्य केवल निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों को पढ़ लेने मात्र से नहीं फलता। द्रुत पाठ का वास्तविक उद्देश्य तभी चरितार्थ हो सकता है, जब विद्यार्थीगण स्वेच्छा-पूर्वक पुस्तकों को पढ़ें और उनका रसास्वादन करें। इसके लिए पुस्तकालय की सहायता अपेक्षित है। सब से अच्छी प्रणाली यह है कि प्रत्येक कक्षा में उपयोगी पुस्तकों का सामान्य संग्रह हो, तथा स्कूल के पुस्तकालय में कुछ पुस्तकों का कक्षानुसार विभाग हो।

२. कक्षा-संग्रह.—प्रत्येक कक्षा में एक ऐसा पुस्तकालय हो, जिसमें कक्षा के समस्त विद्यार्थियों की गिनती से अधिक संख्या में राष्ट्र-भाषा की पुस्तकें संग्रहीत हों।

---

* देखिए पृष्ठ १०३।

३ स्कूल का पुस्तकालय.—वाचन-पिपासा इतनी तीव्र होती है कि कुछ विद्यार्थी कक्षा-सग्रह से सन्तुष्ट नहीं होंगे। वे नई नई पुस्तकें पढना चाहेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि शाला के पुस्तकालय मे कक्षा के अनुसार पुस्तकों का विभाग किया गया हो। इसका सबसे अच्छा परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी को उपयुक्त पुस्तक खोजने के लिए इधर-उधर भटकना नही पडता है। वह जानता है कि पुस्तकालय मे कहाँ हाथ डाल देने पर अनुकूल पुस्तक मिलेगी। यदि बार-बार विद्यार्थी के हाथ सरल या कठिन (स्वेच्छा-विरुद्ध) पुस्तक लगे तो वह निराश हो जाता है, और फिर वह पुस्तकालय की ओर कभी भूल कर भी नही जाता है।

शिक्षकों को चाहिए कि वे सूक्ष्म वाचन या द्रुत वाचन के पाठ पढाते समय कुछ ऐसे लेखों या पुस्तकों के नाम बतावें, जिनका सम्बन्ध पाठ के विषय से हो, जैसे, पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखित "वीर दुर्गादास" का पाठ पढाने के बाद शिक्षक विद्यार्थियों को द्विजेन्द्रलाल राय रचित "दुर्गादास नाटक" पढने की सलाह दे सकता है।

विद्यालय मे वाचनालय की भी आवश्यकता है। वहाँ सभी अवस्था के बालकों की अवस्था, योग्यता और रुचि के अनुरूप विभिन्न विषयो की पत्र-पत्रिकाएँ मँगाने का प्रबन्ध होवे। विद्यालय मे विद्यार्थियों-द्वारा हस्त लिखित पत्रिका के सञ्चालन की योजना भी क्रियान्वित की जाना चाहिए। इस साधन से द्रुत पाठ को पर्याप्त प्रश्रय प्राप्त होगा।

५ हिन्दी साहित्य मे बाल-साहित्य का अभाव

अभी हिन्दी-साहित्य का निर्माण-काल है। हिन्दी-साहित्य के प्राचीन और मध्य युग मे केवल काव्य-ग्रन्थों की प्रमुखता है। गद्य-साहित्य का निर्माण तो आधुनिक युग मे हो रहा है। काव्य-साहित्य और कथा-साहित्य मे मौखिक रचना शक्ति का विशेष प्रदर्शन हो रहा है, पर सब से बडी आवश्यकता तो बाल-साहित्य की है। हिन्दी-साहित्य मे १८ वर्ष तक के बालकों के लिए ऐसे मौलिक ग्रन्थों का अभाव है, जो उनकी कल्पना-शक्ति को उत्तेजित कर उनमें सच्चे गुणों की अभिवृद्धि करे।

अनेक भाषाओं में अनेक ग्रन्थों के बाल-सस्करण प्रकाशित हुए हैं। अँग्रेजी साहित्य का उदाहरण लीजिए। इस साहित्य मे अनेक बालोपयोगी ग्रन्थ हैं, जैसे, ट्रेजर आइलैण्ड, किडनैपूड, राबिन्सन क्रूसो, गल्लीभर की कहानी, इत्यादि। अनेक ग्रन्थ बालकों के उपयोग के लिए सरल भाषा मे लिखे गये हैं, जैसे, शेक्सपियर की कहानियाँ, स्कॉट के ग्रन्थ, डिकन्स के उपन्यास, इत्यादि। इनके बावजूद अँग्रेजी साहित्य की यह विशेषता भी है कि विश्व-साहित्य के कितने ही श्रेष्ठ ग्रन्थों के बाल-सस्करण उस भाषा मे प्रकाशित हैं।

हिन्दी के प्रकाशकों को उचित है कि वे अन्य भाषाओं के बालोपयोगी ग्रन्थों को हिन्दी में, सरल भाषा में अनुवादित करावें। इसके अतिरिक्त वे हिन्दी के अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों के गद्य-संस्करण निकाल सकते हैं। केवल बालकों के लिए ही नहीं, वरन् अहिन्दी भाषी अल्प शिक्षित जनता के लिए ऐसी पुस्तकें विशेष लाभदायक होंगी। जब तक हिन्दी भाषा के श्रेष्ठ ग्रन्थों के ऐसे संस्करण प्रकाशित नहीं होंगे, तब तक ये ग्रन्थ साहित्य-मर्मज्ञों के सिवा, अन्य लोगों के लिए अज्ञातप्राय ही रहेंगे।

६. कोश का उपयोग

भाषा-शिक्षा में कोश का बहुत ही महत्व-पूर्ण स्थान है। शब्दों का ठीक ठीक अर्थ तथा हिज्जे जानने के लिए कोश अत्यन्त सहायक हैं। उनके द्वारा मुहावरों के अर्थ भी भली भाँति समझे जा सकते हैं। लोकोक्तियों का प्रयोग भी कोशों की सहायता से सुगमता-पूर्वक हृदयंगम किया जा सकता है।

मिडिल स्कूल के विद्यार्थियों की आयु तथा शब्दावली इतनी छोटी रहती है कि उनके द्वारा कोश का उपयोग सम्भव नहीं हो सकता। उनके सामने कोश उपस्थित करना, उन्हें कठिनाइयों के काँटों में छोड़ देना है। पर हाई स्कूल के बालकों को कोश से वास्तविक सहायता मिल सकती है। अच्छा हो, प्रत्येक विद्यार्थी के पास सहायतार्थ गुटका-कोश (जेबी कोश) रहे। विद्यार्थी कोश का उपयोग अधोलिखित अवसरों पर सुगमता पूर्वक कर सकते हैं :

(१) सूक्ष्म-पाठ.—पाठों की पूर्व तैयारी के लिए: छात्र पाठ के कठिन शब्दों तथा मुहावरों के अर्थ घर से ही कोश में से ढूंढ़कर ला सकते हैं।

(२) द्रुत-पाठ.—कक्षा में मौन वाचन के समय, कोश की सहायता से अपनी कठिनाइयों को बालक स्वयं हल कर सकते हैं।

(३) रचना.—लेखांशों का भावार्थ लिखने या संक्षेपी-करण करने के समय कोश की सहायता ली जा सकती है।

(४) हिज्जे.—अपनी हिज्जे-सम्बन्धी भूलों को सुधारने के लिए, छात्र कोश देख सकते हैं।

(५) व्याकरण.—लिंग, वचन, शब्द-भेद आदि की जानकारी के लिए भी शब्द-कोश सहायक हो सकता है।

विद्यार्थी-जीवन समाप्त होने पर भी प्रत्येक शिक्षित मनुष्य को ज्ञानार्जन के लिए कुछ-न-कुछ पढ़ना पड़ता ही है। उन्हें भी जब-तब भाषा-विषयक अनेक कठिनाइयाँ आया करती हैं। इन कठिनाइयों के तात्कालिक निवारण का मूल आधार कोश ही है। ज्ञानार्जन के प्रमुख साधन भाषा-ज्ञान को सशक्त और समुन्नत बनाने के लिए कोश अपरिहार्य सम्बल है।

७. उपसंहार

वाचन मनुष्य-जीवन को अत्यन्त उपयोगी करता है। इस शक्ति के विकास के बिना, मनुष्य अपनी उन्नति नहीं कर सकता है। इसकी नींव विद्यालय में ही डाली जाती है। इस कारण यह कार्य शिक्षक की एक विशेष जिम्मेदारी है। वाचन सिखाते समय उसे छात्र की निम्नांकित बातों की ओर ध्यान देना चाहिए :

(१) बाँचते समय छात्र की मुद्राएँ।

(२) उच्चारण।

(३) दृष्टि-सोपान—छात्र अटक अटक कर तो नहीं पढ़ता, उसके पढ़ने में उचित लय का अभाव तो नहीं है।

(४) सस्वर तथा मौन वाचन में एकाग्रता।

(५) बोध-पूर्वक शीघ्र गति से पढ़ने तथा पठित अंश को समझ कर उसका भाव अपने शब्दों में व्यक्त करने की योग्यता।

(६) छात्र की अभिरुचि तथा प्रवृत्ति को जागरित करना।

— ★ —

तीसरा भाग

छायाणि

पहला अध्याय

वाणी-परिचय

१. वाणी का महत्त्व

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रहता। अपने दैनिक काम-काज के लिए अपने विचारों को प्रकट करने के लिए उसे सदा वाणी की सहायता लेनी पड़ती है।

परन्तु जीवन में वही मनुष्य सर्वाधिक सफलीभूत होता है, जिसकी वाणी मीठी तथा प्रिय होती है। पुराने समय में और आजकल भी ऐसे राजदूत रखे जाते हैं, जो विद्वान् होने के साथ ही वार्तालाप तथा वक्तृत्व-कला में दक्ष होते हैं। सामान्य जीवन में भी देखिए कि जो लोग वाक्-पटु होते हैं वे प्रायः अपना काम-काज बड़ी सफलता से चला लेते हैं। मधुर वाणी के द्वारा लोग अपने शत्रु को भी मित्र बना लेते हैं, व्यावसायिक उन्नति कर लेते हैं तथा कितने ही बिगड़े हुए काम इसके द्वारा बन जाते हैं।

ओजमयी वाणी के द्वारा वक्ता श्रोताओं को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। अभिनेता अपने वाणी-चातुर्य से रोतों को हँसा देता है और हँसते हुओं को रुला देता है। इसी वाणी की साधना से नेता-गण जनता के हृदय पर राज्य करते हैं।

सुवाणी के विषय में हमारे कवियों ने कहा भी है :

प्रियवाणी, शीतल हृदय, संयम सरल उदार।
जो जन ऐसो जगत में, तासों सब को प्यार॥

× × ×

बोली तो अनमोल है, जो कोइ जानै मोल।
हिये तराजू तौल कर, तब मुख बाहर खोल॥

× × ×

कुटिल वचन सब से बुरा, जार करै तन छार।
साधु वचन जल-रूप है, बरसै अमृत धार॥

× × ×

'तुलसी' मीठे वचन तें, सुख उपजत चहुँ ओर ।
वसीकरण इक मत्र है, तज दे वचन कठोर ॥

वार्त्तालाप की कला से अनभिज्ञ होने के कारण बडे-बडे अनर्थ हो जाते हैं। हाथापाई और लड़ाई-झगड़े की भी नौबत आ जाती है। असन्तुलित भाषण पारस्परिक वैर-भाव का कारण हो जाता है, और इसी कारण आपस मे मिलना-जुलना तक बन्द हो जाता है। ऐसी बातचीत करने का शब्द-चित्र स्व० सर सैयद अहमद खॉ साहब ने अपने एक निबन्ध मे बड़ी सुन्दरता से अङ्कित किया है। वे लिखते हैं :

> नामुँहज़ब आदमियों की मजलिस मे, आपस मे तकरार होती है। पहले साहब सलामत कर आपस में मिल बैठते हैं। फिर, धीमी-धीमी बातचीत शुरू होती है। एक कोई बात कहता है, दूसरा बोलता है : "वाह, यों नही, यों है।" वह कहता है : "वाह, तुम क्या जानो?" वह बोलता है : "तुम क्या जानो?" दोनो की निगाह बदल जाती है, त्योरी चढ़ जाती है, रुख मे फर्क आ जाता है, ऑखे डरावनी हो जाती है, बॉछे चढ़ जाती हैं, दॉत निकल पडते हैं, थूक उड़ने लगती है, रगे तन जाती हैं, ऑखे, नाक, भौ, हाथ अजीब-अजीब हरकतें करने लगते है, आस्तीने चढ जाती है। फिर तो, इसकी गर्दन उसके हाथ मे, और उसकी दाढ़ी इसकी मुट्ठी मे!

वाणी की अनुकूलता और प्रतिकूलता का महत्व समझ कर व्यवहार करना ही सफलता मे साधक होता है।

२. वाणी और शिक्षा

प्रसिद्ध अँग्रेज लेखक फ्रासिस बेकन का कथन है, "Speech maketh a ready man."—अर्थात् जो मनुष्य युक्ति-पूर्वक बोल सकता है, वह सफल होता है। ढीली वाणी ढीले मनुष्य का परिचय देती है। वह जैसा वक्ता निकलता है, वैसा ही श्रोता। न वह अपने विचारो को दूसरो के सामने यथा-विधि रखता है, और न वह उसके विचार ठीक-से समझ ही सकता है। टमकिनसन कहते है :

> Looseness of speech inevitably reacts on thought .. a slovenly speaker is again an incapable hearer. His own speech is so indefinite that it is doubtful whether he can receive with speed and accuracy the speech of others *

* W S Tomkinson The Teaching of English London, O. U. P, 1940, p. 8

· भाषा की शिक्षा मे वाणी का बहुत ही महत्व-पूर्ण स्थान है। जिस विद्यार्थी का उच्चारण ठीक नहीं है, उसका सस्वर वाचन ठीक नही हो सकता है। वही विद्यार्थी कुशल लेखक निकलता है, जो कि अपने विचारों को उचित ढग पर जमाकर मौखिक प्रकट कर सकता है। यथार्थ में भाषा-शिक्षा का प्रथम सोपान वाणी ही है। भावों की अभिव्यंजना का मूलाधार वाणी ही है। सर्व प्रथम वाणी के रूप मे ही भाषा अवतरित होती है। वाणी ही प्रायः शिक्षा की आधार-शिला होती है। मौखिक भाषा—वाणी—के बहुत पश्चात् लिखित भाषा का उपयोग होता है। दूसरे शब्दों मे लिखित भाषा को वाणी का विकसित रूप कहा जा सकता है।

३ वाणी के रूप

वाणी के दो रूप हैं : (१) वार्तालाप और (२) भाषण। वार्तालाप के समय किसी भी विषय की चर्चा दो या अधिक व्यक्तियों के बीच, प्रश्नोत्तर-रूप मे होती है। भाषण देने के समय, एक ही वक्ता, एक श्रोता-मण्डली के सम्मुख अपने विचारों को सुलझे हुए रूप मे उपस्थित करता है। ये विचार जितनी ही अधिक सुन्दरता से प्रदर्शित किये जाते हैं, वे उतने ही रोचक, प्रभावशाली और उपयोगी सिद्ध होते हैं।

४. वार्तालाप और भाषण के आवश्यक गुण

वार्तालाप अथवा भाषण तो जीवन का एक पृथक् ही विषय बन गया है, जिस पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। पर इनकी पूर्णता और सफलता के लिए निम्नांकित गुण आवश्यक हैं :

(१) ससक्तता— अर्थात् विचारों को ठीक भाषा मे व्यक्त करने की शक्ति।

(२) प्रभावोत्पादकता— अर्थात् ओजमयी वाणी।

(३) शुद्धता— अर्थ, व्याकरण और उच्चारण की दृष्टि से शुद्ध भाषा।

(४) मधुरता— मधुर वाणी।

(५) शिष्टता— जिसमे ग्रामीणता, अशिष्टता, श्रुति-कटुता, आदि दोष न हो।

(६) व्यावहारिकता— श्रोताओं के अनुकूल भाषा।

(७) अवसरानुकूलता— आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के हाव-भाव, स्वर का उतार-चढाव, क्रोध, स्नेह, घृणा, इत्यादि भाव प्रकट करना।

(८) गति-शीलता— अर्थात् भाषा मे उपयुक्त गति तथा प्रवाह। वक्ताओं को बार बार रुकना, झिझकना और स्वर-भंग नहीं करना चाहिए।

(९) स्वराघात— उल्लेखयोग्य शब्दों या उक्तियों को जोर से या जमाकर कहना।

उक्त सभी गुण, वार्तालाप या भाषण—दोनो — के लिए आवश्यक हैं; पर भाषण या व्याख्यान मे साधारण बोलचाल की अपेक्षा कुछ और बातो की आवश्यकता होती है। वार्त्तालाप स्वाभाविक होता है; पर व्याख्यान मे कभी कभी बनावटीपन रहता है। अपनी बात की पुष्टि के लिए व्याख्यान-दाता को कभी अभिनय करना पड़ता है, कभी दूसरों की उक्तियाँ उच्चारित करना पडती हैं और कभी अंग-सचालन करना पडता है। वार्त्तालाप मे श्रोता और वक्ता के बीच जो स्वाभाविकता, घनिष्ठता तथा आत्मीयता रहती है, भाषण मे उसका अभाव रहता है।

५. वाणी-शिक्षा

आज भारत एक राष्ट्र है। यहाँ के जन-समुदाय मे एक अपूर्व जागृति है, और है आपस मे पहचानने तथा समझने की तीव्र इच्छा। विभिन्न प्रान्तों के निवासी एक दूसरे के अत्यन्त समीप पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं। पर इसके लिए उन्हें राष्ट्र-भाषा के ज्ञान की सब से अधिक आवश्यकता पडती है। जब तक अहिन्दी भाषी राष्ट्र-भाषा का ठीक उच्चारण तथा वार्तालाप करना नही सीखेगे, तब तक वे एक दूसरे को सच्चे अर्थों मे नही समझ सकेगे।

हमारे नेता, सुधारक तथा विद्वान् पुरुष प्रान्त-प्रान्त मे भ्रमण करते है और भाषण देते हैं। पर, कभी-कभी उनका हिन्दी-ज्ञान इतना अल्प या सीमित होता है कि वे या तो उस भाषा मे व्याख्यान ही नही देते है, अथवा, उनका व्याख्यान प्रभावशाली ही नहीं होता है। इस कारण, उनके ज्ञान का पूरा लाभ जन-समुदाय को नहीं मिलता। ऐसी स्थिति मे यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि उन्हे अपनी राष्ट्र-भाषा का समुचित ज्ञान हो।

आज सम्पूर्ण देश की समस्त माध्यमिक शालाओ मे हिन्दी की शिक्षा अनिवार्य है। इन विद्यालयो का कर्तव्य है कि वे विद्यार्थियों मे हिन्दी की सुवाणी की जड जमा दे। इसके लिए आवश्यकता है :

(१) ठीक उच्चारण,
(२) आसानी से वार्त्तालाप, और
(३) भाषण देने की शक्ति।

इस प्रकार वाणी-शिक्षा के तीन प्रधान अङ्ग है : (१) उच्चारण-शिक्षा, (२) वार्त्तालाप-शिक्षा और (३) भाषण-शिक्षा। इनकी चर्चा अगले तीन अध्यायो मे क्रमशः की जावेगी।

—— * ——

दूसरा अध्याय

उच्चारण-शिक्षा

१. उच्चारण-विकार

यह पहले ही बताया गया है कि हमारे पूर्वज भाषा के शुद्ध उच्चारण की ओर यथेष्ट ध्यान देते थे।* याज्ञवल्क्य-शिक्षा तथा पाणिनीय शिक्षा ने भी इस विषय पर काफी जोर दिया है।

भारत की प्रायः सभी भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं, इस कारण प्रत्येक भाषा के उच्चारण की प्रक्रिया बहुत कुछ मिलती जुलती है। पर भौगोलिक तथा विदेशी प्रभाव के कारण, प्रत्येक भाषा के उच्चारण में, कुछ-कुछ निजी विशेषताएँ आ गई हैं। इसके साथ ही, सविधि उच्चारण सिखाने की व्यवस्था छूटने के कारण, मूल ध्वनियों के उच्चारण मे अनेक भूलें होने लगी हैं।

धीरे-धीरे नागरी-भाषा मे अनेक परिवर्तन हुए हैं। इस भाषा मे संस्कृत भाषा से अधिक अनुनासिक का प्रयोग हुआ है। शब्दों के रूपों मे तथा संज्ञाओं और क्रियाओं के एकवचन से बहुवचन रूपान्तर करते समय अनुनासिक ध्वनि का ही प्रयोग होता है। नागरी की मूल प्रकृति तद्भवात्मिका थी। वह अब धीरे-धीरे तत्समात्मिका हो चली है। इसके अतिरिक्त, नागरी वर्णमाला में कुछ ध्वनियाँ ऐसी भी हैं, जिनका प्रयोग या तो उठ चुका है या, जिनके उच्चारण अभी निश्चित नहीं हैं। ङ, ञ, ऋ, ष, ऌ, क्ष, और ज्ञ ऐसे ही अक्षर हैं। इनमें ङ, ञ और ऌ के क्वचित् ही उपयोग होते हैं। ऋ, ष, क्ष और ज्ञ के उच्चारण भ्रमात्मक तथा अनिश्चित हो गये हैं।

२. क्षेत्रीय प्रभाव

भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा की कुछ-न-कुछ निजी विशेषताएँ हैं। विभिन्न प्रान्तवासियों के उच्चारण की चर्चा करते हुए, ग्यारहवीं शताब्दी मे राजशेखर ने कहा ही था :

---

* देखिए पृष्ठ ५।

गौडाद्याः संस्कृतस्थाः परिचितस्चयः प्राकृते लाटदेशयाः ।
सापभ्रंशप्रयोगाः सकलमरुभुवष्टक्कभादानकाश्च ॥
आवन्त्याः पारियात्राः सह दशपुरजैर्भूतभाषा भजन्ते ।
यो मध्ये मध्यदेशे निवसति स कविः सर्वभाषानिषण्णः ॥

गौड अर्थात् बंगाल के निवासियो की रुचि सस्कृत के प्रति है; लाट (गुजरात) के लोग प्राकृत के प्रेमी हैं, सम्पूर्ण मारवाड, पूर्वी पंजाब से आनक (आना सागर, अजमेर) पर्यन्त के निवासी अपभ्रंश व्यवहार करते है, उज्जैन, मालवा तथा दशपुरवासी पैशाची का प्रयोग करते है, किन्तु मध्यदेश (हिमालय और विन्ध्य के बीच का भाग) के निवासी उच्चारण-पटु होते है।

वर्तमान समय में देश-भेद के कारण, नागरी के उच्चारण मे, अनेक विकार आ गये है। पंजाब मे 'क, ख, ग और घ' के बदले क्रमशः 'का, खा, गा और घा' तथा 'घ और भ' के बदले 'त और प' बोलते हैं। बंगाल मे प्रत्येक स्वर को ओष्ठ बनाकर 'क, ख, ग' के बदले 'को, खो, गो' बोलते हैं, तथा बँगला मे 'व' न होने के कारण 'व' के स्थान पर हर समय 'ब' का ही प्रयोग करते हैं। पश्चिमी उत्तरवाले 'क, ख, ग' को 'कै, खै, गै' कहते हैं। महाराष्ट्र मे तालव्यवर्ण 'च, छ, ज, झ' का कूर्स और दन्त्य बनाकर 'च, छ ज, झ' उच्चारण होता है। गुजरात और मारवाड मे 'ऐ, औ, न' के बदले 'ए, ओ, ण' का क्रमशः उपयोग होता है। मेवाड मे 'स' का 'ह' हो जाता है। मध्य भारत मे 'वह' का 'वो' तथा उत्तर भारत के पूर्वी भाग मे 'भ' को 'ज' कहने का अभ्यास है। तामिल मे 'थ' के बदले 'त' का उपयोग होता है। दक्षिण-वासी 'व' का शुद्ध उच्चारण करते हैं, किन्तु उत्तर भारत मे 'व' की जगह 'ब' का अधिक प्रयोग होता है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी-भाषा-भाषियो मे सन्ध्यक्षरों को तोडकर बोलने की आदत बढ रही है; जैसे, अरपण (अर्पण), करज (कर्ज), सरग (स्वर्ग), इत्यादि। बहुधा 'स्' से आरम्भ होनेवाले सयुक्ताक्षरो के पहले 'अ' या 'इ' जोड़ दिया जाता है; जैसे, अस्थान, इस्कूल, इस्टूल, आदि।

पजाब मे सन्ध्यक्षरो का अलग अलग उच्चारण करते हैं; जैसे, सकूल, परताप, कलास, इत्यादि।

२. उच्चारण-दोष के कारण

शिक्षा मे शुद्ध उच्चारण की बहुत ही आवश्यकता है। भाषा का अशुद्ध उच्चारण उस पर आघात है। अशुद्ध उच्चारण से भाषा बिगडती है। अशुद्ध उच्चारणवालों के

भाषण तथा वार्तालाप हास्यास्पद होते हैं। राष्ट्र-भाषा-उच्चारण-दोष के निम्न लिखित कारण हैं :

(१) **मातृ-भाषा का प्रभाव**—विद्यार्थी जब माध्यमिक पाठशाला मे आता है, तब उसे अपनी मातृ-भाषा का भली भाँति ज्ञान हो जाता है। यह स्वाभाविक ही है कि उसका हिन्दी उच्चारण उसकी मातृ-भाषा के अभ्यस्त उच्चारण से प्रभावित होगा ही।

(२) **दोष-पूर्ण आदत**—शोक की बात यह है कि अनेक विद्यार्थी अपनी मातृ-भाषा का ही यथावत् उच्चारण नहीं कर सकते हैं। माता-पिता, कुटुम्बी, परिजन या पडोसियों के अशुद्ध उच्चारणो को सुनकर बहुधा विद्यार्थी अशुद्ध बोला करते हैं। उनके सस्कारजन्य उच्चारणों मे क्षेत्रीय या ग्रामीण बू आ जाती है। बहुधा प्रारम्भिक शिक्षा के समय, विद्यार्थियों के उच्चारण की और आवश्यकता से कम ध्यान दिया जाता है। फलतः विद्यार्थी स्वर तथा व्यञ्जनों का ही वास्तविक उच्चारण नहीं कर सकते हैं।

(३) **अति शीघ्रता तथा असावधानता.**—शुद्ध उच्चारण जानते हुए भी, विद्यार्थी प्रायः अति शीघ्रता से असावधानता पूर्वक, उच्चारण का ध्यान रखे बिना, बोलते हैं, अतएव उनके उच्चारण मे अनेक त्रुटियाँ आ जाती हैं। कभी-कभी सकोच तथा भय के कारण विद्यार्थी उच्चारण विषयक अपनी पूर्ण योग्यता का प्रयोग नहीं कर पाता है।

(४) **शिक्षकों की अयोग्यता**—बहुधा शिक्षकों को ध्वनि तत्व का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। उनका उच्चारण भी भ्रष्ट रहता है। भला, तब वे अपने विद्यार्थियों को कैसे विशुद्ध उच्चारण का पाठ पढा सकते हैं ? शिक्षक का यह दोष अत्यन्त लज्जास्पद है।

(५) **अंग-विकार.**—कभी भी विद्यार्थियों के उच्चारण-यन्त्र, यथा, ओठ, तालु, दाँत, आदि में ऐसा कोई विकार उपस्थित हो जाता है, जिससे उनके उचित उच्चारण में व्याघात होता है, और वे अशुद्ध उच्चारण के दोष के पात्र हो जाते हैं।

४. उच्चारण-दोष के सुधार के उपाय

यदि प्रारम्भ से ही विद्यार्थियों के उच्चारण-दोष के निराकरण की ओर ध्यान न दिया जाय, तो उच्चारण में विशुद्धता लाना कठिन हो जाता है। उच्चारण सुधारने के अनेक उपाय हैं। कुछ मुख्य उपायों का विवरण नीचे दिया जाता है।

१. **नागरी ध्वनि-तत्व को समझना.**—पाश्चात्य देशों में ध्वनि-तत्व की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। अनेक विश्वविद्यालयों में इसे सिखाने के लिए स्वतन्त्र आचार्य ही रहते हैं। हमारे देश के प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अंग्रेजी ध्वनि-तत्व सिखाया जाता है, पर नागरी-ध्वनि तत्व की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक शिक्षक स्वयं नागरी-ध्वनि-तत्व का पूरा ज्ञान प्राप्त करे।

यह सब को विदित ही है कि स्वर-यन्त्र में श्वास के आघात से सम्पूर्ण ध्वनियाँ निकलती हैं। स्वर-यन्त्र तीन प्रकार से प्रभावित कर सचालित किये जाते हैं: (१) स्वरों का उच्चारण करते समय मुँह रूप बदल कर; (२) व्यजनों का उच्चारण करते समय कंठ, जीभ, दाँत, ओठ तथा तालु के द्वारा, और (३) प्रभावोत्पादक करने के लिए कम्पन यन्त्रों द्वारा, अर्थात् स्वर-यन्त्र के पल्लो, कण्ठनाली, नासारन्ध्र के ऊपर के अस्थि-विवर, माथे के पीछे के अस्थि-विवर, नासारन्ध्र तथा कठिन तालु के द्वारा।

शिक्षक विद्यार्थियों को ध्वनि-क्रिया समझावे। उन्हे ऐसा अभ्यास देना चाहिए कि वे सहज ही में विभिन्न ध्वनियों का अन्तर समझ जावें। यह चेतना शक्ति तभी आ सकती है, जब कि वे अपनी मातृ-भाषा के ध्वनि तत्व को समझ लें। जहाँ हिन्दी तथा मातृ-भाषा के वर्णों के उच्चारण में कुछ फर्क हो, वहाँ हिन्दी-शिक्षक उन्हे समझा दे तथा उसका पर्याप्त अभ्यास देवें।

उच्चारण का अभ्यास केवल वर्णों का न कराकर पूरे शब्द का कराना अधिक वाछनीय है। यह पद्धति विद्यार्थियों को हृदय-ग्राही होती है; क्योंकि वह शब्दों का अर्थ समझता है। इस पद्धति के द्वारा अपरिचित अक्षरों का उच्चारण-परिचय सुगमता-पूर्वक हो जाता है।

वर्णों के उच्चारण का, शब्दों के उच्चारण के साथ, अभ्यास कराते रहना चाहिए। इसीलिए प्रथम वर्ष की शिक्षण-पद्धति में शब्दों के उच्चारण के प्रति विशेष जागरूकता बरतना कहा गया है।* इस अभ्यास के समय स्वरोच्चारण पर अधिक जोर दिया जावे। जैसा टमकिन्सन कहते हैं: "Beauty of tone depends upon good vowels Vowels are the jewels (in a setting of consonants) which give warmth and colour to speech." † यथार्थ में स्वर आभूषण-रूपी शब्दों में चमकते हुए हीरे के समान हैं।

* देखिए पृष्ठ ५३।

† Tomlinson op cit., 25.

वाचन पर शुद्ध उच्चारण निर्भर रहता है। यदि विद्यार्थियों का वाचन ठीक हुआ, तो वे बोलते समय, सत्वरता के आवेग में लपसी-सी नहीं चाटेंगे।

विद्यार्थीगण सगीत-प्रेमी होते हैं। कविताओं की आवृत्ति तथा गायन के द्वारा उन्हें स्वराघात का विशेष अभ्यास कराया जा सकता है। समय-समय पर उन्हें हिन्दी के आदर्श चल-चित्र भी दिखाये जायँ। इनके संगीत तथा अभिनय का प्रभाव बालकों के हृदय पर अत्यन्त गहरा पडता है। चित्र के प्रभावशाली वाक्य तथा सगीत की पंक्तियॉ वे गुनगुनाते रहते हैं। इस प्रकार अधिक प्रयत्न किये बिना ही, बालकों के हृदय मे सुस्वरता का भाव अपने आप आ जाता है।

४. **विशेष अभ्यास.**—विद्यार्थियों का ध्यान हिन्दी उच्चारण की विशेष गलतियो की ओर आकर्षित किया जाय। ये गलतियॉ दो प्रकार की हैं: (१) वर्ण-उच्चारण, जैसे, 'श' और 'ष', 'न' और 'ण', 'व' और 'ब', 'ड' और 'ढ़', 'छ' और 'क्ष', आदि; और (२) प्रकृत सन्ध्यक्षरो को तोड़कर बोलने की कुरीतियॉ।*

उच्चारण मे कच्चे विद्यार्थियों को विशेष अभ्यास दिया जावे, तथा वे शुद्ध बोलने-वालों के ससर्ग मे अधिकतर रखे जावें।

५. **उच्चारण-अंग-विकार.**—जिन विद्यार्थियों के किसी उच्चारण अङ्ग में कोई विकार होता है, उनके सुधारने मे बहुत विलम्ब लगता है। पर योग्य चिकित्सक, शिक्षक और अभिभावक के सगठित प्रयत्न से यह दोषभी दूर हो सकता है।

५. उपसंहार

उच्चारण सुधारने की सम्पूर्ण चेष्टाएँ प्रारंभिक अवस्था मे ही कर लेना उचित है। बुरी टेव पड़ जाने पर उसका सुधारना असम्भव हो जाता है। अध्यापक स्वय शुद्ध उच्चारण करें, और बालकों से बार बार तद्वत् शुद्ध उच्चारण करावें। आवृत्ति, पुनरावृत्ति तथा सशोधन के द्वारा पूरे वाक्य का उच्चारण कराना उचित है। अभ्यास के समय शीघ्र तथा अस्पष्ट बोलने पर पूर्ण प्रतिबन्ध रखा जाय। प्रत्येक अक्षर-अक्षर का स्पष्ट उच्चारण करने का अभ्यास कराया जाय। वास्तव मे ऐसे ही उच्चारण की आवश्यकता भी है।

—— * ——

* देखिए पृष्ठ ११०।

तीसरा अध्याय

वार्त्तालाप-शिक्षा

१ उद्देश्य

वार्त्तालाप एक कला है। दैनिक जीवन मे इसका स्थान बहुत ऊँचा है। राष्ट्र-भाषा-शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य है — विद्यार्थियों को वार्त्तालाप-पटु बनाना। इसके लिए निम्न लिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिए :

(१) विद्यार्थी से जो प्रश्न किया जावे, वह उसका उत्तर उचित, शुद्ध तथा पूर्ण वाक्यों में देवे।

(२) जब विद्यार्थी के मन मे किसी भी विषय पर कोई शका उत्पन्न हो, तब वह उस सन्देह का कारण पूछ सके।

(३) विद्यार्थी जो कुछ भी पढे, देखे, सुने या अनुभव करे, उसकी विवेचना दूसरों के साथ, शुद्ध भाषा मे, सक्रम और सकारण कर सके।

(४) अपरिचित मण्डली में वह अभद्र व्यवहार न करे, वरन् अतिथि-गण के साथ सयत, मधुर तथा युक्ति-युक्त शैली में सम्भाषण कर सके।

२. मूल सिद्धान्त

वार्त्तालाप शिक्षा के मूल सिद्धान्त चार हैं : (१) वाणी-शब्दावली का प्रयोग, (२) वार्त्तालाप का अभ्यास, (३) उपयुक्त विषयों पर वार्त्तालाप और (४) उपयुक्त वातावरण।

१. **वाणी-शब्दावली का प्रयोग.**—भाषा के तीन अंग हैं. — वाचन, वाणी और रचना। इनके अनुसार शब्दावली के तीन रूप होते हैं, परन्तु ये एक ही नहीं होते।* मनुष्य की वाचन-शब्दावली विस्तृत होती है। पढने के समय, वह इसका उपयोग करता

* Tomkinson op cit , p 8.

है। पर वार्त्तालाप या लिखने के समय, इस सम्पूर्ण शब्दावली का उपयोग नही होता है। मनुष्य की वाणी-शब्दावली तथा रचना-शब्दावली 'वाचन-शब्दावली' की अपेक्षा सकुचित होती है। परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि वाणी-शब्दावली तथा रचना-शब्दावली एक ही हैं। कारण, हम वार्त्तालाप या लिखने के समय एक ही शब्दावली का उपयोग नही करते हैं।*

वेस्ट का कथन है कि लगभग १,००० आवश्यक शब्द जानने पर, कोई भी व्यक्ति अच्छी तरह से वार्त्तालाप कर सकता है, और वह प्रायः ५०,००० शब्दो की पुस्तक भी समझ सकता है। १,००० शब्द लगभग तीन वर्षों मे सीखे जा सकते हैं। वेस्ट का कथन है कि भाषा सीखने के प्रथम तीन वर्षों मे केवल १,००० शब्द सिखाये जायँ। ये शब्द ऐसे हो, जिनका वार्त्तालाप मे बारम्बार उपयोग हो।†

इस प्रकार, हिन्दी भाषा की एक वाणी-शब्दावली की आवश्यकता है। इसमे १,००० आवश्यक शब्द हों। इस शब्दावली का उपयोग, मिडिल स्कूल की पाठ्य-पुस्तक मे, उसके निर्माण के समय, किया जा सकता है। तीन साल मे इस शब्दावली का अभ्यास कर, विद्यार्थीगण आसानी से वार्त्तालाप कर सकते हैं।‡

२. **वार्त्तालाप का अभ्यास.**—'तैरना' तैर कर सीखा जा सकता है, 'गाना' गाकर और 'हाकी खेलना' हाकी खेल कर। इसी प्रकार 'वार्त्तालाप' बातचीत (सम्भाषण) करके ही सीखा जा सकता है। ससार का यही नियम है। प्रत्यक्ष अभ्यास किये बिना कोई भी कला सीखी नही जा सकती है।

यदि शिक्षकगण अपने विद्यार्थियो को बातचीत करने मे कुशल बनाना चाहते हैं, तो उन्हे वार्त्तालाप का यथेष्ट अवसर देना चाहिए। वाचन या रचना के पाठ, मौखिक चर्चा पर ही निर्भर रहते हैं। शिक्षकों को उचित है कि वे इस ओर यथेष्ट ध्यान दे।

३. **उपयुक्त विषय.**—वार्त्तालाप के विषय ऐसे हो, जिससे विद्यार्थीगण परिचित हों, जिन्हे वे समझ सके, और जिनमे वे दिलचस्पी ले सके। विद्यार्थियों को ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाना चाहिए। वार्त्तालाप परिचित तथा पाठ्य-पुस्तकों के विषयों से आरम्भ किया जावे।

४. **उपयुक्त वातावरण.**—वार्त्तालाप का वातावरण इस प्रकार का हो जाना चाहिए कि विद्यार्थी को घरेलूपन का बोध हो, याने, वह अपने को बन्धन मे न अनुभव

---

* M S H Thompson, and H G Wyatt The Teaching of English in India, Bombay, O U P., 1937 p 29

† West Language in Education op, cit pp 118-119

‡ देखिए पृष्ठ ४५।

करे। उसके ध्यान में यह कभी न आवे कि वह जो कुछ कह रहा है, वह महत्त्व-हीन है। विघ्न परिस्थिति में, वह अपनी दबी हुई भावनाओं को कभी व्यक्त न होने देगा, और सर्वत्र अयोग्यता का अनुभव करता रहेगा। उसे कभी यह बोध न होवे कि जिन विषयों पर बातचीत हो रही है, उनकी कोई ऐसी सीमा है कि जिसके बाहर के किसी प्रश्न का पूछना उसकी कक्षा-सम्बन्धी या योग्यता-विषयक सीमा के बाहर होता है। यदि विद्यार्थी के मन में ऐसी आशंका का जन्म हुआ, तो उसकी जिज्ञासा तथा स्वाभाविकता — दोनों — को करारी ठेस लगती है। सारांश यह है कि वार्त्तालाप के समय विद्यार्थियों को बन्धन-हीनता का अनुभव करने देना चाहिए, जिसमें वे स्वच्छन्दता-पूर्वक अपने मनोभाव व्यक्त करने में पश्चात्पद न रहें।

अब यह देखना है कि मिडिल तथा हाई स्कूल में इन सिद्धान्तों का प्रयोग कर वार्त्तालाप का अभ्यास किस प्रकार किया जा सकता है।

३ मिडिल स्कूल में वार्त्तालाप-शिक्षा

भाषा-शिक्षा में मौखिक कार्य का महत्त्व अत्यधिक है। वार्त्तालाप के द्वारा वाचन, रचना और व्याकरण सिखाये जाते हैं। मिडिल स्कूल में एक से अधिक पाठ्य-पुस्तक नहीं रहती है। इसी पाठ्य-पुस्तक को पढ़कर विद्यार्थीगण भाषा-अध्ययन करते हैं: (अ) शब्द (आ) वाक्य-गठन, (इ) पाठ्य विषय का आशय, (ई) व्याकरण और (उ) रचना। इन्हें मौखिक कार्य-द्वारा ही सिखाना पड़ता है। इस कारण, इनके सीखने के साथ-साथ विद्यार्थियों को वार्त्तालाप का भी अभ्यास हो जाता है।

अ. शब्द

१. शब्दार्थ —वाचन सिखाते समय, कठिन शब्दों का भावार्थ प्रत्यक्ष विधि के द्वारा उद्बोधित किया जाता है। पर इसके लिए विद्यार्थियों को यथेष्ट अभ्यास कराया जाता है। उदाहरणार्थ, किसी पाठ्य पुस्तक में ये वाक्य आये हैं:

कोयल काली है।

तोता हरा है।

राजहंस सफेद है।

शिक्षक 'कोयल', 'तोता' तथा 'राजहंस' का चित्र बताता है। फिर विभिन्न चिड़ियों के चित्र की ओर अँगुली बताकर पूछता है: 'यह क्या है?'

फिर, वह 'काला', 'हरा' और 'सफेद' को प्रत्यक्ष विधि के द्वारा समझाता है।

इसके बाद बालकगण आपस मे प्रश्न पूछते हैं :

'यह कौन सी चिड़िया है ?'

'इसका रंग क्या है ?'

'हरे रग की चिडिया कौन सी है ? बताओ।'

'पत्ते का रग क्या है ?' ... इत्यादि।

इस प्रकार, कुछ थोडे से ही शब्द समझाने के लिए, विविध प्रकार के प्रश्नों का अभ्यास कराया जा सकता है।

२. प्रयोग.—पाठ के अन्त मे कई प्रकार के प्रश्न अभ्यासार्थ दिये जा सकते हैं। उनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :

(१) शब्द–परिवर्त्तन–अभ्यास (Substitution Exercise)

कोयल		है।
तोता	काला	
राजहस	काली	नहीं है।

इन शब्दों के योग से विद्यार्थी गण छः प्रश्न बना सकते हैं; यथा :

'क्या कोयल काली है ?'

'क्या राजहंस काला नही है ?'

इत्यादि।

(२) प्रश्नोत्तर

(अ) चार चीजों के नाम बताओ, जिनका रग हरा है।

(आ) तीन पक्षियों के नाम बताओ, जिनका रग काला है।

(इ) तीन चीजों पर वाक्य बनाओ, जिनके रग एक से न हो।

विद्यार्थीगण आपस मे प्रश्न पूछते हैं, और उत्तर देते हैं।

(३) समान वाक्य

अ तथा आ समूह से ठीक शब्द चुनकर वाक्य बनाओ :

अ	आ
चिड़ियॉ	हिनहिनाना
कुत्ता	चिंघाड़ना

गधा	भौंकना
हाथी	चहचहाना
गाय	रेंकना
घोड़ा	रँभाना

(४) करो और कहो

		किवाड
	दूर	खिड़की
हटो		उत्तर
	तरफ	दक्षिण

पहला बालक आज्ञा करता है : 'किवाड़ से दूर हटो।' द्वितीय बालक वैसा करता है, और कहता है : 'मै किवाड़ से दूर हट रहा हूँ।'

फिर पहला बालक, ऊपर दिये शब्दों मे से दूसरा आदेश एक वाक्य मे किसी अन्य बालक को करता है, और उससे उत्तर-सहित क्रिया कराता है। इसी प्रकार अभ्यास-क्रम चलता रहता है।

—

आ. वाक्य–गठन

वाक्य-गठन सिखाते समय, शिक्षकों को वार्त्तालाप सिखाने का अच्छा अवसर मिलता है। उदाहरणार्थ, शिक्षक सामान्य वर्तमान काल का रूप पढा रहा है। * इस पाठ को उसे इस प्रकार बढाना पड़ता है :

राम पढता है। (पढते हुए राम के प्रति बताकर)
गोविन्द पढता है (,, गोविन्द के प्रति बताकर)
राम और गोविन्द पढते है (दोनों के प्रति बताकर)
राम क्या करता है?
गोविन्द क्या करता है?
राम और गोविन्द क्या करते हैं?
मगन क्या करता है? ('लिखता है' का रूप)
मदन क्या करता है? ('लिखता है' का रूप)
मगन और मदन क्या करते है? ('लिखते हैं' का रूप)

---

* देखिए पृष्ठ ६१-६२।

इस प्रकार शिक्षक विद्यार्थियों को क्रियाओं के बदलते हुए रूप तथा वाक्य-गठन समझाता रहता है, और विद्यार्थीगण भी प्रश्न पूछते रहते है। इस प्रकार उन्हे वार्त्तालाप का अभ्यास मिलता है।

इ. पाठ्य-विषय का अभ्यास

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि प्रथम वर्ष मे पूरे पाठ्य विषय की चर्चा चित्र या कहानी के सहारे वार्त्तालाप के द्वारा की जाती है। जैसे :

प्रश्न : १. इस चित्र में तुम क्या देखते हो ?
२. इस चित्र मे बच्चा कहॉ है ?
३. बच्चा क्या कर रहा है ?
४. बच्चे की मॉ क्या कर रही है ?
५. किस चीज के टुकड़े नीचे पड़े हैं ?

इस प्रकार अनेक प्रश्न पूछ कर, पाठ बढ़ाया जाता है। द्वितीय और तृतीय वर्ष भी, पाठ की चर्चा के समय, विद्यार्थियो को वार्त्तालाप का यथेष्ट अवसर मिलता है। उदाहरणार्थ,

पाठ : बाल गंगाधर तिलक

बाल्य-काल

१. लोकमान्य तिलक का जन्म किस साल हुआ था ?
२. उनके पिता क्या करते थे ?

३. पिता की मृत्यु के समय लोकमान्य तिलक की क्या आयु थी ?
४. पिता की मृत्यु से क्या वे घबराये ?
५ उन्होंने कौन कौन सी परीक्षाएँ पास कीं ?

ई. व्याकरण

मिडिल स्कूल में व्याकरण, वाचन पाठ्य-पुस्तक के आधार पर सिखाया जाता है। उदाहरणार्थ, वाक्य-गठन तथा शब्द-रूपान्तर के पाठ, व्याकरण के आधार पर लिखे जाते है। * इस समय विद्यार्थियों को सज्ञा, सर्वनाम तथा क्रियापदों के भिन्न-भिन्न रूपों के प्रयोग पर यथेष्ट मौखिक अभ्यास दिया जा सकता है, जैसे :

राम क्या करता है ?
राम और गोविन्द क्या करते हैं ?
राम कल क्या करता था ?
राम कल कहाँ जायगा ?
सीता क्या करती है ?
सीता, तुम कल क्या खाओगी ?

उ. रचना

मिडिल स्कूल मे, विद्यार्थियों को रूप-रेखा के आधार पर पाठों का साराश कहलवाना सिखाना चाहिए। रूपरेखा के लिए कुछ चावी-शब्द देना चाहिए। पाठ के समाप्त होने पर शिक्षक प्रश्नों के द्वारा बालकों को पाठ उद्बोधित करा सकते हैं। इन चावी-शब्दों को श्याम-पट पर अंकित कर देना चाहिए। विद्यार्थीगण रूप-रेखा (ढाँचे) की सहायता से, पूरा साराश कह सकते है। †

४. हाई स्कूल मे वार्तालाप-शिक्षा

मिडिल स्कूल में विद्यार्थियों को शुद्ध उच्चारण, सस्वर वाचन, वाक्य-गठन तथा वार्त्तालाप का बहुत कुछ अभ्यास मिल जाता है। वे पाठ्य-पुस्तकों के विचारों को अपने शब्दों मे व्यक्त कर सकते है। साथ ही, वे लगभग १,००० शब्दों का उपयोग करना भी सीख जाते हैं।

हाई स्कूल मे, सम्पूर्ण भाषा-शिक्षा सूक्ष्म-पाठ-वाली पाठ्य-पुस्तक पर निर्भर नहीं रहती। इस समय द्रुत पाठ, रचना और व्याकरण की अलग अलग पुस्तकें होती हैं।

---

* देखिए पृष्ठ ६१।

† देखिए भाग पाचवा, अध्याय तीसरा।

चौथा अध्याय

भाषण-शिक्षा

१. प्रारम्भ

अनुकरण बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। वह दूसरों की बोली तथा बातचीत की नकल करता है, वह घर में या बाहर जिन बातों को देखता-सुनता है, उन बातों का अनुकरण वह खेल-खेल में किया करता है। वह अंग-संचालन कर दूसरों के हाव-भावों की तरह गति-छवि प्रदर्शित करता है। विद्यालय का प्रथम कर्तव्य अथवा उद्देश्य विद्यार्थी की इस स्वाभाविक शक्ति को कार्य में लाने का होना चाहिए।

मनुष्य एकाएक कुशल वक्ता नहीं हो जाता है। दूसरों का अनुकरण कर वह वक्तृत्व कला धीरे-धीरे ही सीखता है। इसके लिए उसे बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। उसे अधीर न होकर धैर्य को धारण करना पड़ता है।

वक्ता में दो गुणों की अत्यन्त आवश्यकता होती है: (१) प्रभावोत्पादक भाषण-शैली और (२) जोरदार भाषण।

२. भाषण-शैली

भाषण-शैली के अन्तर्गत आती हैं: (१) शब्दोच्चारण (२) अक्षर-व्यक्ति, (३) बल और विराम, (४) सुस्वरता और (५) अंग-संचालन। इन पाँचों बातों का अभ्यास विद्यालयों में ही कराया जा सकता है। उच्चारण-अभ्यास, सस्वर वाचन, वार्तालाप तथा सुभाषितों को कंठस्थ करना भाषण के मुख्य अङ्ग हैं। इनकी चर्चा पहले की गई है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे साधन हैं, जिनका उपयोग भाषण-शिक्षण में सहायक होते हैं?

१. कथा-रचना.—छोटे बच्चे कहानी बड़े चाव से सुनते हैं, और उसका सारांश भी बड़े उत्साह से सुनाते हैं। शिक्षक प्रथम और द्वितीय वर्ष विद्यार्थियों को छोटी कहानियाँ तथा घटनाएँ सुनावें। इसके बाद वे विद्यार्थियों से कहानी का सार पूछ सकते हैं।

समय समय पर अनेक प्रकार के खेल खेले जा सकते हैं: जैसे, शिक्षक एक वाक्य कहकर एक कहानी आरम्भ करता है। इसके पश्चात् कक्षा का प्रत्येक विद्यार्थी स्वेच्छानुसार एक-एक बात जोड़ता जाता है। इस प्रकार कहानी पूरी की जाती है।

२. अभिनय.—बालक-गण अभिनय-प्रिय होते हैं। छुटपन से ही वे दूसरों की नकल करते हैं। हिन्दी-शिक्षकों को प्रारम्भ से, बालकों की इस प्रवृत्ति का सदुपयोग कराना चाहिए। पाठ्य-पुस्तक में अनेक पाठ अभिनेय रहते हैं। विद्यार्थी उन पाठों का सारांश अभिनय करके सुना सकते हैं।

मौखिक कार्य में बाल-गीतों का भी प्रमुख स्थान है। गाना गुनगुनाना बच्चों का प्रिय विषय होता है। शिक्षकों को चाहिए कि वे प्रथम और द्वितीय आरंम्भिक वर्षों में कुछ बढ़िया गाने बालकों से गवावें। यदि कुछ गीतों का अभिनय किया जा सके, तो इसके लिए बालकों को अवश्य ही प्रोत्साहित करना चाहिए।

उच्च कक्षाओं में विद्यार्थीगण, विविध प्रसंगों का अभिनय कर सकते हैं: जैसे, कृत्रिम चुनाव, किसी कृत्रिम न्यायिक विचार का दृश्य, इत्यादि। पहला ही विषय लीजिए। कुछ विद्यार्थी नगर-पालिका के चुनाव में सदस्यता के लिए उम्मीदवार की भाँति खड़े होते हैं। वे इस अवसर के लिए अपना तैयार वक्तव्य या तो पढ़कर सुना सकते हैं, अथवा कहकर प्रसारित कर सकते हैं। ऐसे प्रयोगों से छात्रगण जीवन-संग्राम के लिए सहज ही तैयार हो जाते हैं।

३. संवाद (Dialogue)—पाठ्य-पुस्तकों के कई पाठ संवाद-रूप में रहते हैं। साधारण गद्य पाठों की नाईं, जब इन पाठों का विषय-निरूपण हो जावे, तब विभिन्न पात्रों के कथोपकथन का भिन्न-भिन्न-विद्यार्थियों से सस्वर वाचन कराया जावे।

अनेक विषय ऐसे हैं, जो संवाद-रूप में लिखे जा सकते हैं।* लिखने के पश्चात् कुछ रचनाओं को पात्रानुसार विद्यार्थियों-द्वारा पढ़ाना उचित है। कक्षा में कभी-कभी दो या अधिक विद्यार्थी किसी भी विषय पर कथोपकथन कर सकते हैं।

४. वाद-विवाद (Debate) और विचार-परिषद (Brain Trust)—अत्यन्त प्राचीन काल से शास्त्रार्थ के रूप में वाद-विवाद-प्रतियोगिता हमारे देश में चली आ रही है। खण्डन-मण्डन की कला, तार्किकता तथा भाषा-पटुता में वाद-विवाद कितना सहायक होता है—इसे बताने की आवश्यकता नहीं। प्रति मास कक्षाओं के बीच या

---

* देखिए भाग चौथा, अध्याय छठा।

विद्यालयों के बीच ऐसी वाद-विवाद-प्रतियोगिताओं का आयोजन अवश्य ही करना चाहिए। इससे विद्यार्थी न केवल भाषण-पटु ही होंगे, वरन् प्रत्युत्पन्नमति भी हो सकते हैं।

ऊँची कक्षाओं में विचार-परिषद् अधिक लाभदायक होती है। इसमें विद्यार्थियों का एक दल इकट्ठा होता है। इनमें से कुछ चुने हुए विद्यार्थी मेज के आस-पास अर्द्ध-चन्द्राकार पंक्ति-बद्ध विचारक बन कर आ बैठते हैं, शेष अन्य श्रोता बन कर अलग बैठ जाते हैं। विचारक-दल किसी विषय की चर्चा करता है। विचारकों-द्वारा पूर्ण और निर्णयात्मक विचार हो जाने पर श्रोतागण भी प्रश्नोत्तर करते हैं।

५. भाषण (Lecture).—इसका क्रमागत तृतीय वर्ष हो सकता है, जब कि विद्यार्थियों की शब्दावली काफी बड़ी हो जाती है, तथा उन्हें वार्तालाप का यथेष्ट अभ्यास हो जाता है। विद्यार्थियों को अपनी रुच्यनुकूल किसी भी निश्चित विषय पर भाषण देने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। आरम्भ में विद्यार्थी घर से ही व्याख्यान तैयार करके ला सकते हैं, और इसके लिए उन्हें सहायता भी दी जा सकती है।

विद्यार्थियों में से ही किसी को सभापति बनाना चाहिए। व्याख्यान के अन्त में, विद्यार्थीगण व्याख्यान-दाता से प्रश्न पूछ सकते हैं तथा उसके व्याख्यान की आलोचना कर सकते हैं। समय समय पर, शिक्षक को उचित पथ-प्रदर्शन करना आवश्यक है।

६. नाटकीकरण —कक्षा मे कही हुई अथवा पुस्तक की किसी रोचक घटना को छोटे-से नाटक के रूप मे लिखा जा सकता है। इसके बाद, इस नाटक का रंगमंच पर बालकों-द्वारा अभिनय कराया जाय।

समय-समय पर पुस्तक के संवाद तथा नाटकों के कुछ दृश्यों का रंगमंच पर अभिनय करने से बालकों की भाषण-कला में प्रवीणता आ जाती है, और समाज मे अपने विचार व्यक्त करने का साहस उनमें दृढ़ होता है।

२. जोरदार भाषा

१. प्रारम्भ.—कोई भी वक्ता श्रोताओं पर तभी अपना प्रभाव डाल सकता है, जब कि उसकी भाषा जोरदार होती है। उसे अपनी वक्तृता में चुन चुन कर शब्दों तथा मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। शब्दों में अप्रतिम जादू होता है। शब्दों ने देशों का इतिहास ही बदल दिया है। यदि द्रौपदी ने दुर्योधन को 'अन्धे का अन्धा' न कहा होता, तो कदाचित् महाभारत जैसा युगान्तरकारी संग्राम भी न छिड़ा होता। यदि जनक-राज ने सीता-स्वयंवर के समय सम्मिलित राजाओं को 'कायर' न कह दिया

होता, तो सभवतः स्वयवर अधूरा ही रह गया होता, और रामायण की कथा अधबीच मे ही त्रिशंकु-सी लटक गई होती। इस प्रकार प्रत्येक शब्द के पीछे एक इतिहास होता है, व्यक्तित्व होता है, और होती है आत्मा।

२. **शब्दावली का अभ्यास.**—राष्ट्र-भाषा शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य है, विद्यार्थियों का शब्द-भंडार बढ़ाना। शिक्षकों को चाहिए कि प्रत्येक पाठ के समय विद्यार्थियों को शब्द, वाग्धाराओं तथा लोकोक्तियों का उचित अभ्यास करावे, चाहे वे पाठ वाचन से सम्बन्ध रखते हों, अथवा व्याकरण या रचना से।

गृह-पाठ तथा प्रयोग के अभ्यास विविध प्रकार से कराये जावें। इनके कुछ उदाहरण आगे दिये गये हैं। *

३. **कंठस्थ कराना.**—छात्र-जीवन मे विद्यार्थियों की मेधा-शक्ति बहुत ही तेज रहती है। छुटपन मे बातें प्रायः शीघ्र याद हो जाती हैं, और याद की हुई बाते अधिक समय तक स्मरण भी रहती हैं। शिक्षकों को चाहिए कि वे बालकों को वाग्धाराएँ, मुहावरे, लेखकों तथा कवियों की चुनी हुई पंक्तियाँ कठस्थ करावे। स्कूल मे भाषण तथा वाद-विवाद-प्रतियोगिता के समय विद्यार्थी उन कठस्थ शब्दों, पंक्तियों आदि का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किये जावें। विद्यार्थी उन शब्दों, पक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग से भाषा पर अपना अधिकार कर चलेंगे और राष्ट्र-भाषा के प्रति उनका अनुराग बढ़ेगा।

विद्यार्थीगण अपनी एक एक दैनिकी भी रख सकते हैं। इस दैनिकी मे वे अपनी पसन्द के शब्द, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, पक्तियाँ तथा अनुच्छेद लिख सकते हैं। यह दैनिकी मनुष्य जीवन की एक बड़ी साधिका एवं बहुमूल्य सहायिका है। इसका उपयोग मनुष्य आजीवन कर सकता है।

४. उपसंहार

इस प्रकार, वार्त्तालाप-कला का जीवन मे बहुत बड़ा महत्व है। इसकी असली नीव विद्यालय में ही डाली जाती है। आरम्भिक काल से ही, जब शिक्षक बालकों के शुद्ध उच्चारण की ओर सतर्क, सावधान और सचेष्ट रहता है, तभी वार्त्तालाप, भाषण और मौखिक रचना का शिक्षण पूर्ण और उपयोगी हो सकता है

शिक्षकों को यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि वाणी-विकास केवल नियमों का अध्ययन कर लेने से ही नही, वरन् अभ्यास करने से होता है। व्याकरण के नियमों

* देखिए भाग पाँचवाँ, अध्याय तीसरा।

तथा शब्दार्थ कण्ठस्थ कर लेने से तथा शब्दोच्चारण के कानून जान लेने से विद्यार्थी वार्तालाप नहीं सीख लेता है। यदि वह सचमुच शुद्धता और सरलता के साथ राष्ट्र-भाषा बोलना चाहता है, तो उसे वार्तालाप का निरन्तर अभ्यास करना पड़ेगा। ऐसा करने से, उसमें वार्तालाप करने की आदत धीरे धीरे पड़ जाती है। आदत पड़ जाने पर, उसे सोचना या विचारना नहीं पड़ेगा। सुस्वरता तथा शुद्ध-स्पष्ट उच्चारण के साथ, उनके होठों से वाणी फव्वारे की नाईं छूटेगी। अतएव शिक्षकों को उचित है कि वे विद्यार्थियों को प्रत्येक पाठ में वार्तालाप का अवसर दें।

पाठ्य पुस्तक के अतिरिक्त, वार्तालाप का सम्बन्ध, विद्यार्थियों के नित्य प्रति के अनुभव तथा आनन्द से है। उन्हें अपने शिक्षकों के साथ घरेलूपन का अनुभव करना चाहिए। जब तक निकटता का यह वातावरण नहीं रहेगा, तब तक विद्यार्थीगण अपने मन की बातें शिक्षकों के सामने निर्भयता तथा स्पष्ट रीति से नहीं रख सकेंगे।

विद्यालय में अनेक संस्कारों में पले हुए विद्यार्थी आते हैं; अतः उनका भाषा-संस्कार ठीक कराने के लिए सुवक्ताओं को बुलाकर उनसे विभिन्न विषयों पर भाषण कराना चाहिए। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को ऐसा अवसर दिया जाय कि वे सुवक्ताओं और मृदु भाषियों के साथ अधिक से अधिक वार्तालाप कर सकें।

——★——

चौथा भाग

रचना

पहला अध्याय

रचना के अंग

१ रचना का महत्व

पृथ्वी पर दो प्रकार के मनुष्य सब से अधिक नाम पैदा करते है, एक, वक्ता और दूसरे, लेखक। वक्ता तो प्राय' अपने जीवन-काल मे ही विशेष पूज्य होता है, और उसकी मृत्यु के बाद लोग उसे धीरे-धीरे भूलने लग जाते हैं, परन्तु लेखक का नाम अजर-अमर रहता है। उसके स्वर्गलाभ के पश्चात् भी जन-समुदाय उसकी रचना पढता है, और उससे आनन्द लेता रहता है।

रचना या लेखन विद्यालय की शिक्षा की पराकाष्ठा है। वर्तमान परीक्षा के युग मे, विद्यार्थी, शिक्षक और विद्यालय की सफलता की जॉच शालान्त परीक्षा के फलाफल पर ही निर्भर रहती है। परीक्षा के प्रश्न-पत्र का जैसा उत्तर विद्यार्थी लिखता है, उसे उसी उत्तर के अनुसार गुणाङ्क भी प्राप्त होते हैं।

राष्ट्र-भाषा-शिक्षा का एक मुख्य ध्येय है, विद्यार्थियो को इस योग्य बनाना कि वे अपने विचारो को स्पष्टता-पूर्वक, क्रमबद्ध रूप मे, शुद्ध हिन्दी मे लिख सके।

२ नियम-बद्ध तथा मुक्त रचना

शब्दों की सार्थक एव कलात्मक सजावट को 'रचना' या 'भाषा-रचना' कहते है। विषय की दृष्टि के अनुसार भाषा-रचना के दो अङ्ग है: (१) नियम-बद्ध रचना (Formal Composition) और (२) मुक्त रचना (Free Composition)।

चूॅकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसे सामाजिक नियमो को जानना पडता है, और वह उनका पालन करने के लिए विवश रहता है। उन नियमो को वह तोड नही सकता है। इसी प्रकार भाषा-रचना के भी प्रतिबन्ध स्वरूप अनेक नियम है। शिक्षित मनुष्य के लिए इन नियमों की जानकारी आवश्यकीय है। किसी भी भाव को लिपि-बद्ध करते समय उसे इन नियमों का पालना पडता है। इनसे उसे रचना मे सहायता मिलती है। लेखक रचना के नियमों के विरुद्ध नहीं जा सकता है—वह इनसे

करने लगता है, उसी समय वह लिखना आरम्भ करता है। फलतः मौखिक रचना ही लिखित रचना की आधार-शिला होती है। कक्षा में निबन्ध के विषय की मौखिक चर्चा होने के बाद ही विद्यार्थीगण लेख लिखना शुरू करते हैं।

२. नियम-बद्ध और मुक्त रचना, मौखिक और लिखित रचना.—इस प्रकरण में रचना के भेद, शिक्षण-पद्धति के अनुसार किये गये हैं। नियम-बद्ध रचना-मौखिक और लिखित—दोनों ही—रूपों में हो सकती है। उदाहरण के लिए 'विराम चिह्न' का विषय ले लीजिए। इस विषय की चर्चा शिक्षक को विद्यार्थियों के साथ पहले बातचीत के द्वारा ही करनी पड़ती है तत्पश्चात् वह विद्यार्थियों को लिखित अभ्यास देता है।

यह अब स्पष्ट है कि नियम-बद्ध तथा मुक्त रचना के शिक्षण की दो पद्धतियाँ हैं . मौखिक तथा लिखित। रचना-शिक्षा के विविध अंगों को समझने के लिए, इस सारिणी को देखिए :
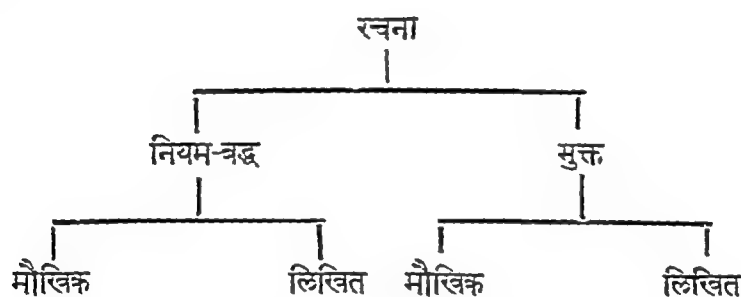
३. मौखिक रचना का महत्व.—रचना मौखिक कार्य से ही आरम्भ होती है। प्रारम्भ में विद्यार्थी पाठ्य-पुस्तक के पाठ का, तथा शिक्षक के कथन का सार कहता है। पर इस प्रारम्भिक अभ्यास के अतिरिक्त अनेक शिक्षक मौखिक कार्य का महत्व नहीं समझ पाते। यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि यदि बालक में अपने विचारों को शुद्ध हिन्दी में मौखिक प्रकट करने की शक्ति है तो उसे केवल लिपि, हिज्जे तथा विराम-चिह्न सिखाने की ही आवश्यकता है। इस ज्ञान के मिलते ही उसे लेखन-कला शीघ्र आ जाती है।

अनेक शिक्षकों का ख्याल है कि रचना का सम्बन्ध केवल लेखन से ही है इस कारण, केवल लिखित कार्यों के जाँचने तथा सुधारने की आवश्यकता है। पर वे भूल जाते हैं कि माध्यमिक शिक्षा की पूर्ण अवधि में मौखिक कार्य का बहुत ही महत्व-पूर्ण स्थान है। यदि शिक्षकों ने गद्य-पद्य, व्याकरण इत्यादि सिखाते समय, विद्यार्थियों के मौखिक कार्य की ओर ध्यान न दिया, तथा यदि वे विद्यार्थियों की भाषा-सम्बन्धी गलतियों

के प्रति उदासीन रहे, तो उन्ही ग़लतियो की छाप विद्यार्थियो के लिखित कार्य मे भी लग जायगी, तथा वे शुद्ध हिन्दी मे लिखना कभी न सीख सकेंगे।

इस रोग की अव्यर्थ औषध यह है कि हिन्दी के प्रत्येक घण्टे मे, शिक्षक विद्यार्थी के वार्त्तालाप की ओर ध्यान देवे और विद्यार्थी को शुद्ध हिन्दी का अभ्यास करावे जिससे विद्यार्थी के स्वय के विचारो मे एक सिलसिला उत्पन्न हो, उसकी भाषा सरल एव सशक्त हो, उसके उच्चारण स्पष्ट एव निर्दोष हो। माध्यमिक शिक्षा के पूर्ण काल मे भाषा-शिक्षा का यही लक्ष्य रहे। इस पद्धति के अपनाने पर, विद्यार्थीगण उच्च कोटि के लेख आसानी से लिख सकेंगे।

४. लिखित रचना की आवश्यकता.—यह स्पष्ट है कि मौखिक रचना लिखित रचना का आधार है। पर मौखिक रचना क्षणिक वस्तु है इसके सिवा वार्त्तालाप मे इधर-उधर की अनेक बाते आ जाती हैं, तथा वास्तविक गलतियों को पकडना कठिन हो जाता है। इसके विपरीत लिखित रचना स्थायी वस्तु है। लिखे हुए अंश मे सभी गलतियॉ स्पष्ट दृष्टि आती हैं। लिखित रचना मे, किसी प्रकार की त्रुटि का रहना उचित नही है। उसे सर्वदा निर्दोष एव सर्व गुणो से युक्त होना चाहिए। रचना मे भावो को लिपि बद्ध करते समय, भाषा की विशुद्धता, क्रम, स्पष्टता तथा शैली की ओर विशेष ध्यान देना पडता है। इस तरह लिखित रचना का उत्तरदायित्व मौखिक रचना की अपेक्षा अधिक है। बेकन ने कहा ही है : "Speaking maketh a ready man, but writing maketh an exact man."

४. उपसंहार

रचना के साथ लिपि तथा हिज्जे का निकटतम सम्बन्ध है। आजकल नागरी लिपि के विषय मे अनेक तर्क-वितर्क हो रहे हैं। राष्ट्र-भाषा-शिक्षक को लिपि-विषयक इस समस्या का कुछ-कुछ ज्ञान होना उचित है। हिज्जे सिखलाना भी भाषा-शिक्षण का एक मुख्य अंग है। हिज्जे की गलतियॉ भाषा-रूपी शरीर मे फोड़े-फुंसियों की नाई हैं।

इस तरह 'रचना' शब्द बहुत ही व्यापक है। वह कला के किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित हो सकता है। इस भाग के अगले अध्यायो मे क्रमशः लिपि, हिज्जे, व्याकरण, नियम-बद्ध-रचना तथा मुक्त-रचना की शिक्षण-पद्धति की विवेचना की गई है।

—★—

दूसरा अध्याय

लिपि की शिक्षा

१. लेखन-महत्व

एक सौ वर्ष पूर्व भी, हमारे देश मे 'लिखना' सिखाने पर विशेष ध्यान दिया जाता था। यहाँ 'लिखना' का मतलब 'लिखित' नहीं है, वरन् सुन्दर और सुडौल लिखावट है। हमारे देश मे एक चॉवल के दाने के ऊपर सूई से पूरा श्लोक सुन्दरता-पूर्वक उत्कीर्ण कर लिखा जाता था। पोस्ट कार्ड की लम्बाई-चौड़ाई के कागज पर, मोती के समान चमकते हुए अक्षरों मे, सम्पूर्ण श्रीमद्‌भगवद्गीता लिखनेवाले अनेक कलाकार हमारे देश में मिलते थे।

फारसी मे अति सुन्दर और सुडौल अक्षरो को नस्तालीक कहते हैं। एक समय था, जब नस्तालीक (सुलेख) मुहरों की दर बिकता था। ब्रिटिश राज्य के समय, अँग्रेजो की देखा देखी घसीट लिखने की प्रवृत्ति हम लोगों मे आ गई है। धीरे-धीरे मुद्रण-यन्त्रों तथा टाइप राइटरों के आविष्कार ने लेखन-कला की हत्या ही कर दी।।

२. देवनागरी लिपि

१. **देवनागरी लिपि का उद्‌भव**—स्वतन्त्र भारत ने देवनागरी लिपि को राज-लिपि स्वीकार कर लिया है। यह लिपि कोई नयी नहीं है। इसकी उत्पत्ति भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी से हुई है। इसका प्रयोग दसवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ है। इसी देवनागरी लिपि से, उत्तर भारत की प्राय. सभी लिपियाँ निकली हैं, जैसे बगाली, बिहारी, उडिया, आसामी, नैपाली, मैथिली, कैथी, गुजराती, गुरुमुखी, महाजनी, इत्यादि। इसी देवनागरी लिपि मे आजतक हिन्दी, सस्कृत, बौद्ध तथा जैन साहित्य लिखा गया है।

२. **देवनागरी लिपि की विशेषताएँ.**—देवनागरी लिपि की अनेक विशेषताएँ हैं, जो अन्य लिपियों में नहीं मिलती हैं। इसकी सबसे प्रथम विशेषता है : (१) "ध्वनि और प्रतीक की एकता"। नागरी अक्षरों के नाम और उच्चारण—दोनों—एक ही होते हैं। इस कारण इस लिपि मे जो लिखा जाता है, वही पढा भी जाता है। ससार की अन्य प्रचलित लिपियों मे यह बात नहीं पाई जाती। बहुत से विद्वानों का मत था

और अभी भी है कि भारत की सभी भाषाओं के लिए रोमन लिपि का व्यवहार किया जाय। इसका एक कारण यह दिखलाया जाता है कि ऐसा करने से एशिया और योरप—दोनों—महाद्वीपों की एक लिपि हो जायगी। इस विषय मे लोकमान्य तिलक का कहना है:

> रोमन वर्णमाला और रोमन लिपि मे बहुतसी त्रुटियॉ हैं, और वह हम लोगो की भाषा के उच्चारण प्रकट करने के लिए बहुत ही अनुपयुक्त है। ... कही कही तो एक ही अक्षर के तीन-तीन या चार-चार उच्चारण है, और कहीं एक उच्चारण प्रकट करने के लिए दो या तीन अक्षरों का व्यवहार करना पडता है। रोमन लिपि मे हमारी भाषाओं का उच्चारण उसके अक्षरों मे तरह तरह के चिह्न लगाये बिना प्रकट नही किये जा सकते। *

इस लिपि की दूसरी विशेषता है — वर्णमाला का स्वर और व्यञ्जनो मे विभाजन, तथा उनका स्थान और प्रयत्न के अनुकूल क्रम-विन्यास। ससार की अन्य लिपियों मे यह विशेषता नहीं पाई जाती। इस लिपि मे कवर्ग आदि पञ्चवर्ग तथा सभी स्वर, अन्तःस्थ और ऊष्म अपने उच्चारण-स्थान के अनुसार विभक्त हैं। प्रत्येक वर्ग का अपना अपना अनुनासिक है, जो दूसरी भाषाओ मे नही मिलता। तृतीयतः, यह लिपि लिखने मे सरल है। अन्य लिपियो की अपेक्षा इस लिपि मे कम अक्षरो का उपयोग होता है। इसमे अँग्रेजी भाषा की नाई विविध प्रकार के अक्षर नही हैं, जैसे, छोटे और बड़े अक्षर, लिपाई और छपाई के अक्षर।

देवनागरी लिपि की सब से बडी विशेषता यह है कि इसका अधिकार उत्तर की सभी भाषाओं पर है। देवनागरी लिपि जाननेवाले को उत्तर भारत की लिपियॉ सीखने मे देर नहीं लगती। क्या ही अच्छा हो कि शासन आर्य भाषाओ के लिए देवनागरी लिपि निर्धारित करे। जब एक लिपि चल जायगी तो एक आर्य भाषा मे छपी हुई पुस्तको का पढना उन लोगो के लिए कठिन नहीं होगा, जो उसी आर्य वश की दूसरी भाषा बोलते है। इससे देश मे एकता बढेगी, तथा राष्ट्र भाषा का प्रचार बढेगा, यद्यपि प्रारम्भ मे इस विषय का विरोध अवश्यम्भावी है।

२. **देवनागरी लिपि के दोष**—देवनागरी लिपि के निम्न लिखित दोष हैं:

(१) यह लिपि प्रेस तथा टाइप राइटर के लिए उपयुक्त नही है। अँग्रेजी भाषा मे कुल छब्बीस वर्ण हैं, किन्तु देवनागरी लिपि मे शुद्ध एवं सयुक्त वर्णो

* राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि पर लोकमान्य तिलक के विचार, सरस्वती, अगस्त, १९५६ पृष्ठ ९७।

की संख्या १२० है। छपाई के लिए, इस लिपि के लगभग ४५० टाइपों की आवश्यकता है।

(२) कई अक्षरों के पढने मे भ्रम उत्पन्न होता है, जैसे, भ और म, ध और घ, व और ब, झ और ज, ख और र व।

(३) संयुक्त अक्षर लिखने और सीखने मे कठिन हैं। कई संयुक्त अक्षरों के खण्ड पहचाने नहीं जा सकते हैं, जैसे, ज्ञ, क्ष, क्त।

(४) मात्राएँ कभी व्यञ्जनों के पूर्व लगती हैं, कभी पश्चात्, कभी ऊपर लगती हैं और कभी नीचे।

(५) 'र' के चार रूप मिलते हैं—'र', '˚', '्', '‸'।

(६) प्रत्येक अक्षर कितनी ही रेखाओं से बनते हैं।

३. देवनागरी लिपि-सुधार-सम्मेलन, लखनऊ

१. प्रारम्भिक प्रयत्न.—देवनागरी लिपि के सुधार का प्रयत्न एक अरसे से हो रहा है। सन् १९३४ ई० मे, इन्दौर के सम्मेलन में, लिपि-सुधार-समिति की स्थापना हुई थी। इस समिति ने दो-तीन वर्ष के सतत प्रयत्न से अनेक सुधार खण्डशः पारित करवाये। महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन ने तथा गाँधीजी ने अपने नवजीवन प्रकाशन-मन्दिर के द्वारा उन सुधारों को स्वीकार किया था।

सरकारी रूप से भी देवनागरी-लिपि के प्रश्न पर दो समितियों ने विचार किया: (१) नरेन्द्र समिति—यह समिति उत्तर-प्रदेशीय शासन-द्वारा जुलाई, सन १९४७ ई० मे नियुक्त हुई थी, और (२) कालेलकर समिति—यह समिति केन्द्रीय संविधान-सभा की ओर से अप्रैल, १९४८ ई० में गठित हुई थी।

इन दोनों समितियों के समक्ष मूलतः एक ही प्रश्न था: देवनागरी लिपि को किस प्रकार यन्त्रोपयोगी बनाना। दोनों समितियों ने स्वीकार किया कि लिपि में आमूल परिवर्तन न किया जाय।

२. लखनऊ-सम्मेलन.—सन् १९५३ ई० की २८ और २९ नवम्बर को, लखनऊ मे, देवनागरी लिपि पर विचार करने के लिए भारत के सब राज्यों के शिक्षा-मंत्रियों, केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधियों तथा कुछ भाषा-विशेषज्ञों का एक सम्मेलन आमन्त्रित किया गया। सम्मेलन इन निष्कर्षों पर पहुँचा:

(१) नागरी के अ, आ, ओ, औ, अं, अः के बदले अ, आ, ओ औ, अं, अः का प्रयोग किया जाय।

(२) झ, ण, क्ष के बदले झ, ण, क्ष लिखा जाय। ख, छ, ध, भ को क्रमशः ख, छ, ध, भ रूपों में लिखा जावे। एक नया अक्षर वैदिक 'ळ' वर्णमाला में बढ़ा दिया जाय। 'त्र' निकाल दिया जाय, और उसके बदले 'त्र' लिखा जाय।
अंकों में '१' के बदले '1' और '९' के बदले '9' अपनाया जाय।

(३) अॅग्रेजी पूर्ण विराम (फुल स्टाप) (.) और कोलन (:) को छोड़कर शेष सभी अंग्रेजी के विराम-चिह्न ग्रहण किये जायॅ।

(४) शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहे।

(५) ह्रस्व इ (ि) की मात्रा अक्षर के पहले अथवा बाईं ओर न लगाकर दाहिनी ओर लगाई जाय। दीर्घ ई (ी) की मात्रा से भेद करने के लिए, इसकी खड़ी पाई को आधा कर दिया जाय, अर्थात् (ि) के बजाय (ॊ)।

(६) संयुक्ताक्षर दो प्रकार से बनाये जायॅ : (१) जहॉ तक सम्भव हो, अक्षर के अन्त की खड़ी रेखा को हटाकर, या (२) सयुक्त होने वाले अक्षर के अन्त मे हलन्त (्) लगाकर। क, फ और ह को यदि किसी अक्षर के आरम्भ मे सयुक्त करना हो तो इसके लिए बिना हलन्त का प्रयोग किये, प्रचलित ढङ्ग ही काम मे लाया जाय।

सम्मेलन के निर्णय, भिन्न भिन्न राज्यों को स्वीकार करने के लिए भेजे गये। कई राज्यों ने सुधारो को स्वीकार किया, कई ने नहीं स्वीकारा और कई ने कुछ निर्णयों को अपनाया। जनता मे सुधार के प्रति अत्यन्त क्षोभ है। कई विद्वानों का कहना है, "देवनागरी लिपि का सुधार नहीं किया गया है, प्रत्युत एक नई लिपि प्रस्तावित की गई है।"*

सुधार मे सब से अधिक आपत्ति जनक है : (१) इ (ि) की मात्रा का नया रूप (ॊ) और (२) हलन्त का प्रयोग करके सयुक्त अक्षर बनाने का क्रम। मध्यप्रदेश शासन ने इन दोनों आपत्ति जनक सुझावों को स्वीकार नहीं किया। वर्धा-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए स्वर्गीय पण्डित रविशङ्कर शुक्ल ने कहा था :

> आपने लखनऊ कान्फरेंस के सुधारों के विषय मे पढ़ा ही होगा। यहॉ विशेष रूप मे मैं 'इ' की मात्रा का उल्लेख करना चाहता हू। आज यदि हम इसे

---

* रमादत्त शुक्ल : "सुधार के नाम पर राष्ट्र-लिपि पर प्रहार", **सरस्वती**, नवम्बर, १९५४; पृष्ठ ३२८।

बदलते हैं तो किस तर्क के आधार पर ? सुन्दरता, यत्र की आवश्यकता या लिखने की सुविधा ? — आपको विदित ही है कि नागरी लिपि की, भारत में प्रचलित अनेक लिपियों से अंशों तक समरूपता है। बगाली लिपि में, गुजराती लिपि मे या बाल-बोध में ह्रस्व इ की मात्रा बायीं ओर ही लगायी जाती है। क्या उन्हे यत्रों की आवश्यकता नहीं होती ?*

अभी हाल मे उत्तर प्रदेश के मुख्य मत्री श्री सम्पूर्णानन्दजी ने बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद मे भाषण करते हुए इस विषय का उल्लेख किया है। आपने स्वीकार किया है कि 'इ' की मात्रा के परिवर्तन के विषय मे पुनर्विचार करने की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है। फिर भी आपने अनुरोध किया कि एक बार जो निश्चय हो चुका है, उसका विरोध करना ठीक नहीं, उसे मान लेना चाहिए।†

३ **उपसंहार**.— ऊपर दिये हुए आक्षेपों से प्रकट होता है कि लखनवी लिपि ने देश मे असन्तोष फैलाया है। देवनागरी लिपि मे आमूल परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। आज समूचे राष्ट्र को एक सूत्र मे बाँधने, और अन्तर्क्षेत्रीय आदानप्रदान के लिए देश ने हिन्दी को चुना है।

किसी भी नई भाषा के सीखनेवालों को दो कठिनाइयों का सामना करना पडता है, एक, 'भाषा' की और दूसरी, 'लिपि' की। यों, लिपि सीखना कठिन नहीं है। वास्तविक कठिनाई नई लिपि के पढने मे गति प्राप्त करने की है।

आज हम चाहते हैं कि अहिन्दी भाषी दूसरी भारतीय भाषाएँ पढें, और अन्य क्षेत्रीय भाषा-भाषी भी दूसरी भारतीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करें। पर यदि हम विद्यार्थियों को भारतीय भाषाएँ पढाना चाहें तो कई लिपियों का बोझ उनके लिए अत्यधिक हो जाता है। हमारी भाषाओं मे एकता असम्भव है, किन्तु लिपि की एकता मे कोई असभव बाधाएँ नहीं है। देवनागरी लिपि के व्यापक प्रयोग से भाषा सीखने की अनेक कठिनाइयाँ दूर हो जावेगी, और क्षेत्रीय भाषाओ का अधिक प्रचार होगा। भारत की एकता के लिए, एक लिपि का होना अत्यन्त वाञ्छनीय है।

४ लिपि कैसे सिखलाई जावे ?

१ **अक्षर** —प्राथमिक पाठशाला मे मातृ-भाषा सीखने के पश्चात्, बालक माध्यमिक विद्यालय मे, राष्ट्र-भाषा आरम्भ करता है। भारत की अनेक लिपियाँ है, जो

* **सरस्वती**, फरवरी, १९५६, पृष्ठ ७९।

† **सरस्वती**, अप्रैल १९५६, पृष्ठ २२१।

हिन्दी लिपि से मिलती-जुलती है। इन बालकों को तुलनात्मक पद्धति से हिन्दी-लिपि सिखाई जावे—पहले वे अक्षर जो हिन्दी से मिलते-जुलते है, सिखाये जावे और तत्पश्चात् हिन्दी के वे अक्षर, जिनसे वे अपरिचित है, सिखाये जायें।

पर यह पद्धति उन बालको के लिए उपयोगी न होगी, जिनकी मातृ-भाषा की लिपि हिन्दी से भिन्न है। यह आवश्यक नही है कि विद्यार्थियो को अक्षरो का परिचय वर्णमाला के अनुसार कराया जाय, वरन अक्षर उनके समान रूप के अनुसार सिखाये जावें। उदाहरण के लिए, अक्षरो का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:

१.—अ, आ, ओ, औ, अं, अः।
२.—ग, म, न, भ, भ।
३.—र, ण, स, ए, ऐ।
४.—ट, ठ, ढ, द।
५.—व, ब, क, ख, च।
६.—प, ष, फ।
७.—ड, ङ, इ, ई, ह, ड़।
८.—य, थ।
९.—छ, घ, ध।
१०.—ज, ञ, त, ल, उ, ऊ, क्ष, त्र, ऋ। (ये सब खिचड़ी वर्ग मे है।)

प्रत्येक क्षेत्र मे स्वीकृत लिपि सुधार के अनुसार, इस वर्गीकरण मे परिवर्तन करना पडेगा।

२. बारहखड़ी.—जब बालकगण अक्षरो से पूर्ण परिचित हो जावे, तब बारहखडी आरम्भ की जाय। यहॉ भी तुलनात्मक पद्धति अपनाना चाहिए। पर यह पद्धति उन बालको के लिए प्रयुक्त न की जाय, जिनकी मातृ-भाषा और हिन्दी की बारहखड़ी मे समानता नहीं है। इन्हें एक-एक मात्रा समुचित उपयोग कर सिखाई जावे। शिक्षक एक-एक शब्द श्याम-पट पर लिखे, और बालको से उसका उच्चारण दोहरावें। जब वे उस मात्रा और उच्चारण से अभ्यस्त हो जावें, तब दूसरी मात्रा आरम्भ की जावे जैसे:

नल	नाल	नाला	नाना	नानक	भगवान
सर	सिर	तिल	तिलक	गिलास	चिड़िया

* देखिए पृष्ठ ५८।

बारहखडी सिखाते समय एक बात और अवश्य समझनी चाहिए यानें, जब किसी स्वर का व्यञ्जन के साथ संयोग होता है, तब उस स्वर का कुछ भाग लिखा जाता है, और बाकी छोड दिया जाता है।

३. संयुक्त अक्षर.—बारहखडी सीख चुकने के पश्चात् संयुक्त अक्षर आरम्भ करना चाहिए। इस समय दो बातों की ओर ध्यान देना उचित है: (१) संयुक्त अक्षरों का क्रमिक उपयोग, अर्थात्, अक्षरों को उपयोगिता के अनुसार सिखाना, और (२) व्यञ्जनों के मुख्य और गौण भागों का ज्ञान, उदाहरण के लिए 'ब' लिया जाय। इसमें आड़ी रेखाएँ मुख्य नहीं है, वरन् वर्तुलाकार '० मुख्य है। इसके लिखते ही बालकगण कह सकेंगे कि कौन-सा अक्षर लिखा जा रहा है। संयुक्त अक्षर लिखते समय मुख्य भाग का उपयोग होता है। कठिनाई के अनुसार संयुक्त अक्षरों की एक सूची नीचे दी जाती है।

(१) जिनके पहचानने मे कठिनाई कम है:

(अ) जिनका उपयोग बालकों की भाषा मे बहुत है:

क् + क = क्क – पक्का, चक्की
च् + च = च्च – सच्चा, बच्चा
ट् + ट = ट्ट – टट्टू, खट्टा
क् + ख = क्ख – रक्खा, मक्खी
क् + य = क्य – क्या, वाक्य
च् + छ = च्छ – अच्छा, इच्छा
ल् + ल = ल्ल – गल्ला, बिल्ली
प् + य = प्य – प्याज, प्याला

(आ) जिनका उपयोग बालकों की भाषा मे, कुछ कम है:

ट् + ठ = ट्ठ – गट्ठा, इकट्ठा
ङ् + ग = ङ्ग – भङ्ग, गङ्ग
स् + त = स्त – मस्त, पुस्तक
ख् + य = ख्य – ख्याल, मुख्य
ग् + य = ग्य – ग्यारह, ग्यारस
त् + य = त्य – त्याग, त्यौहार
ध् + य = ध्य – मध्य, ध्यान
श् + य = श्य – श्याम, कश्यप
स् + थ = स्थ – स्थल, स्थान, स्थिर
ज् + ज = ज्ज – लज्जा, उज्जैन

(२) जिनके पहचानने मे कुछ कठिनाई होती है :

(अ) अधिक उपयोगी

र् + द = र्द – सर्द, दर्द, मर्द
प् + र = प्र – प्रति, प्रथम
त् + त = त्त – लत्ता, बत्ती
द् + ध = द्ध – अद्धा, बुद्धि

(आ) कम उपयोगी :

र्, + ख = र्ख – चर्खा, सुर्ख़
ग्, + र = ग्र – ग्रास, ग्रामीण
त्, + र = त्र – त्रास, पत्र

(३) जिनका रूप निराला ही है :

(अ) अधिक प्रचलित :

क् + ष = क्ष – अक्षर, पक्षी
ज् + ञ = ज्ञ – ज्ञान, आज्ञा

(ब) जिनमे दो से अधिक अक्षरो का प्रयोग हुआ हो :

स् + त् + र = स्त्र—वस्त्र, स्त्री, मिस्त्री

पाठ्य-पुस्तको मे, सयुक्त अक्षरो का क्रमिक उपयोग होना चाहिए। एक साथ अनेक नये अक्षर न सिखाये जावे। सयुक्त अक्षर पढ़ाते समय शिक्षक एक पूरा शब्द श्याम-पट पर लिखे, उसका उच्चारण स्वयं करे, तथा बालकों से करावे; और फिर पूछे कि उस सयुक्त अक्षर मे, कौन से अक्षर जुडे हुए हैं। इसके पश्चात् शिक्षक इस सयुक्त अक्षर-युक्त कई सार्थक शब्द श्याम-पट पर लिखे। इनका उच्चारण शिक्षक स्वय करे, और बालकों से करावे। फिर वह यही सयुक्त अक्षर बालको से श्याम-पट पर तथा उनकी पाटी या नोट-बुक पर लिखावे। लिखावट की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

५. लेखन-कुशलता के उपाय

१. **लिखावट.**—पहले ही बताया जा चुका है कि जब बालक लिपि पूर्ण रीति से पहचानने लगे, तभी लिखना शुरू करना उचित है। लिखावट के लिए निम्न लिखित चार बाते आवश्यक हैं :

(१) **बैठने का ढंग.**—विद्यार्थियो को इस प्रकार कमर सीधी करके बैठना चाहिए कि रीढ की हड्डी अत्यन्त सीधी रहे, झुके नहीं।

(२) **कलम पकड़ने का ढंग**—कलम पकड़ने के लिए अँगूठा तथा तीसरी अँगुली काम आती है। अँगूठे के साथ की तर्जनी केवल कलम के ऊपर आवे। दावात दाहिने हाथ की ओर हो।

(३) **अक्षर**—अक्षर सुडौल हों अर्थात् अक्षर का प्रत्येक अङ्ग सानुपात हो। अक्षर बड़े-बड़े और सुस्पष्ट हों। ये सीधे लिखे जावें, और टेढ़े-मेढ़े न हों।

(४) **शब्द और वाक्य**—दो शब्दों के बीच एक अक्षर का, दो वाक्यों के बीच एक शब्द का, और दो पंक्तियों के बीच एक पंक्ति का अन्तर रहे।

२. **उपाय.**—उक्त ढंग से लिखने में कुशलता पाने के लिए दो उपाय बतलाये गये हैं : अनुलिपि और प्रतिलिपि।

अनुलिपि (Copy-writing) के लिए बाजार में विशेष सुलेख-लिपि पुस्तकें बिकती हैं। इनमें सुडौल और बड़े बड़े अक्षर छपे रहते हैं। उनके नीचे इतना स्थान छूटा रहता है कि विद्यार्थीगण उन्हें देख देखकर सुन्दर लिपि के लिखने का अभ्यास उस खाली स्थान में कर सकते हैं। पहली कक्षा में, इन लिपि पुस्तकों का उपयोग लाभ-दायक होता है।

विद्यार्थियों का हाथ जम जाने पर प्रतिलिपि शुरू करना चाहिए। अभ्यास-पुस्तिका पर किसी पुस्तक, समाचार-पत्र या लेख के किसी पृष्ठ या अंश को देखकर, उसे यथावत् अवतरित करना 'प्रतिलिपि' कहलाता है। विद्यार्थियों के सामने छपे हुए अक्षरों का आदर्श प्रस्तुत होता है, और उसको विद्यार्थीगण छपे हुए की भाँति ही अनुकरण द्वारा लिपि-बद्ध करते हैं।

ज्यों ही विद्यार्थीगण मुक्त-रचना आरम्भ करें, त्योंही प्रतिलिपि करना बन्द कर देना चाहिए। विद्यार्थी जो कुछ अपनी नोट बुक पर लिखें, वह सुन्दर अक्षरों में लिखा जावे। शिक्षकगण इस ओर यथोचित ध्यान दें। जिन विद्यार्थियों का हस्त-लेख सुडौल न हो, उन्हें विशेष अभ्यास दिया जाय।

——★——

तीसरा अध्याय

हिज्जे सिखाना

१. आवश्यकता

भाषा-शिक्षण का एक आवश्यक अंग है, हिज्जे सिखलाना। हिज्जे की अधिक गलतियो के कारण एक सुन्दर लेख के गुण भी ढँक जाते हैं। ठीक हिज्जे न जानने के कारण, कभी शब्दोच्चारण मे दोष आ जाते हैं।

सौभाग्य की बात है कि हिन्दी भाषा की हिज्जे ससार की अनेकानेक भाषाओ के शब्दो के हिज्जे की अपेक्षा अत्यन्त सरल है। इसका मुख्य कारण यह है कि नागरी वर्ण-माला ध्वन्यात्मक है, अक्षरात्मक नही। नागरी अक्षरो के नाम और उच्चारण दोनों एक ही होते हैं।

२. मूल सिद्धान्त

किसी भी विषय को सिखाते समय विद्यार्थियो की मानसिक प्रकृति की ओर ध्यान देना पडता है। हिज्जे याद रखने के लिए हम अपनी आँख, जीभ, कान और हाथ का उपयोग करते है, उदाहरणार्थ, 'स्वतन्त्रता' शब्द लीजिए। शिक्षक इस शब्द को श्याम-पट पर लिखता है, और विद्यार्थीगण अपनी आँखो के द्वारा उसके रूप का चित्र अपने मन मे खींचते हैं। शिक्षक फिर इस शब्द को उच्चारित करता है। विद्यार्थीगण उस उच्चारण को अपने कानो से सुनते हैं, तथा अपनी जीभ द्वारा उस उच्चारण को दोहराते हैं। तत्पश्चात् वे इस शब्द को अपने हाथ से लिखते हैं।

इस प्रकार हिज्जे सिखलाने के मुख्य नियम हैं : शब्द का चित्र देखना, कान से उसका उच्चारण सुनना और जीभ से उसका उच्चारण करना, तथा हाथ से उसका रूप लिखना। हिज्जे सीखते समय इन चारो इन्द्रियो मे से जितनी अधिक इन्द्रियों का उपयोग हो सके, उतना ही अच्छा।

हिज्जे सीखने का सबसे आसान तरीका है, लिखकर सीखना। लिखते समय शब्द-चित्र आँखो के सामने खिच जाते हैं, उच्चारण कानों मे प्रतिध्वनित होता है तथा

जीभ नाचने लगती है। आँखों देखा, कानों सुना या उच्चारित शब्द विस्मरण हो सकता है; पर लिखे हुए शब्दों के चित्र स्मृति-पटल पर सदा के लिए अंकित हो जाते हैं।

३. पद्धतियाँ

हिज्जे सिखाने की अनेक पद्धतियाँ हैं। कुछ पद्धतियों का उल्लेख नीचे किया जाता है।

१. वाचन तथा रचना के पाठ—हिज्जे सिखाने का सबसे अच्छा अवसर है, वाचन तथा रचना के पाठों के पढ़ाने का समय, जब कि विद्यार्थीगण पाठ का सम्पूर्ण आशय समझते हैं। पाठों के हिज्जे का, बोध-पूर्ण पाठ से घना संबंध है, जब कि विद्यार्थियों को केवल कुछ चुने हुए शब्दों के हिज्जे सिखाये जाते हैं, तब वे लिखते समय अनेक गलतियाँ कर बैठते हैं इस प्रकार के कृत्रिम पाठ हानिकारक होते हैं।

प्रथम वर्ष में, नये शब्दों के उच्चारण के साथ-साथ उनके हिज्जे के प्रति ध्यान दिया जावे। ऊँची कक्षाओं में बालकों का ध्यान कठिन शब्द के हिज्जे की ओर आकर्षित किया जाय। शिक्षक इन शब्दों को श्याम-पट पर लिखे, स्वतः उच्चारण करें तथा बालकों से उनका उच्चारण करावें। साथ ही, उनके हिज्जे की विशेषता बतावें।

क्या हिज्जे के विशेष अभ्यास (drill-work) की आवश्यकता है? इस विषय में मत-भेद है। कुछ विद्वान् इसे आवश्यक समझते हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि पढ़ते-पढ़ते या लिखते-लिखते लोग हिज्जे आप ही सीख जाते हैं, तब जबरदस्ती हिज्जे का अभ्यास क्यों कराया जाय? यथार्थ में इसकी आवश्यकता विद्यार्थियों पर निर्भर रहती है। जिन विद्यार्थियों की स्मरण-शक्ति तेज रहती है, वे हिज्जे आप ही सीख जाते हैं। इसके विपरीत भुलक्कड़ों को हिज्जे के विशेष अभ्यास की आवश्यकता होती है।

शिक्षकों को उचित है कि विशेष कठिन शब्दों के हिज्जे का अभ्यास पूरी कक्षा से करावें। जो विद्यार्थी हिज्जे में कमजोर हों, उनकी ज़रूरतों की ओर विशेष ध्यान दिया जावे। गलती हिज्जे श्याम-पट पर कभी न लिखे जायँ। गलती शब्द-चित्र विद्यार्थियों के मन पर, एक बार खिंच जाने पर, उसका मिटाना कठिन हो जाता है।

२. मौखिक हिज्जे पूछना और बताना—समय समय पर शिक्षकों को उचित है कि वे वाचन तथा रचना के पाठों में सिखलाये हुए शब्दों के हिज्जे पूछें या बतावें, तथा बालकों द्वारा शब्द के रिक्त स्थान की योग्य अक्षर से पूर्ति करावें। इसमें कोई दोष नहीं है; क्यों कि विद्यार्थीगण इन शब्दों से परिचित हैं।

३. पठन-पुस्तक से अनुकरण-लेख.—कभी कभी विद्यार्थीगण अपनी पाठ्य पुस्तक के किसी परिचित अंश की नकल कर सकते हैं पर लिखने की पंक्तियॉ अधिक न हों, तथा उनकी भाषा उत्तम हो। इस लेख के लिए बीस मिनट से अधिक समय नहीं देना चाहिए। जो कुछ लिखा जाय, उसकी सही जॉच की जावे। इस अभ्यास के द्वारा हस्तलेख सुधरता है, भाषा-ज्ञान की वृद्धि होती है, विराम-चिन्हों का अभ्यास होता है, तथा हिज्जे की जॉच होती है।

४. श्रुतिलिपि. शुद्धाशुद्ध या डिक्टेशन.—श्रुतलिपि हिज्जे की जॉच करने का एक साधन है, न कि हिज्जे सिखाने का साधन। इसके द्वारा बालको की प्रक्रिया मे सावधानी आ जाती है। शिक्षक जो कुछ बोलता है, वे सावधानी से सुनते हैं। श्रुत-लिपि द्वारा भाषा की बोध-परीक्षा भी होती है। यदि बच्चे समझ न पावें, तो वे अशुद्ध लिखेंगे। इस अभ्यास के द्वारा सुन्दरता, गति और स्पष्टता—तीनो—की एक ही साथ परीक्षा होती है। श्रुतलिपि का गद्यांश ऐसा हो, जिसके लिखने मे विद्यार्थी अधिक गलतियॉ न करे। एक बार गलती लिखने से उसके सुधारने मे यथेष्ट परिश्रम करना पडता है. इस कारण, गद्यांश विद्यार्थियो की योग्यता के स्तर का हो, अथवा, उनका पढा हुआ हो। यह दस पंक्तियो से अधिक लम्बा न हो। यदि इसमें अनेक कठिन शब्द हों तो इनके हिज्जे का अभ्यास डिक्टेशन लिखाने के पहले ही करा देना चाहिए।

शुद्धाशुद्ध बोलने के समय शिक्षक स्पष्ट रूप से बोले। उसकी आवाज पर्याप्त ऊँची हो, पढ़ाने का ढङ्ग ऐसा हो कि गद्यांश का भाव बालको की समझ मे आ जाय। गद्यांश को लिखा चुकने पर, एक बार फिर गद्यांश बोल कर सुना दिया जाय, ता कि बच्चे छूटे हुए शब्द अथवा अशुद्ध लिखे गये शब्दों को ठीक कर सके।

इसके उपरान्त संशोधन अथवा जॉच होना चाहिए। यदि कक्षा छोटी,—कम संख्या के छात्रो की,—हो तो शिक्षक प्रत्येक विद्यार्थी के श्रुतलेख की जॉच करे।

यदि कक्षा बड़ी—अधिक छात्रों की संख्यावाली—हो, तो शिक्षक को उचित है कि वे किसी एक छात्र से शुद्धाशुद्ध बोलने समय श्रुतलेख श्याम-पट पर लिखावे। यहॉ यह बतलाना आवश्यक है कि इस समय यह श्याम पट ऐसे स्थान पर रखा जावे, जहॉ से कक्षा के अन्य विद्यार्थी लिखित अंश को न पढ सके। शुद्धाशुद्ध लिख चुकने पर, शिक्षक इसकी जॉच करे और इसी जॉच के अनुसार, विद्यार्थीगण अपनी गलतियो का संशोधन करे।

यदि यह पद्धति न अपनाई जा सके तो शिक्षक विद्यार्थियों से कहे कि वे अपने लिखे हुए अंश का मिलान पुस्तक के अंश से करें, और अशुद्धियों का संशोधन करे।

आवश्यकतानुसार विद्यार्थीगण आपस मे अपनी कापियॉ बदल ले सकते है तथा एक दूसरे की गलतियों का सशोधन कर सकते हैं।

५. हिज्जे के खेल.—हिज्जे सिखाने के अनेक खेल हैं। कुछ खेलों की रीतियॉ निम्नाकित हैं।

(१) हिज्जे-प्रतियोगिता—शिक्षक कक्षा को दो दलो मे बॉट देते हैं। प्रत्येक दल के बालकों को एक के बाद एक शब्द के उच्चारण का मौका दिया जाता है। निर्धारित समय मे जो दल सब से कम गलतियॉ करता है, वही विजयी घोषित होता है।

(२) शिक्षक एक शब्द श्याम-पट पर लिखते है। पॉच सेकण्ड बाद वह उसे ढॉक देते हैं, और विद्यार्थीगण उस शब्द को अपनी कापियों पर लिखते हैं। इस प्रकार शिक्षक अनेक शब्द श्याम-पट पर लिखते है। अन्त मे गलतियों के अनुसार विद्यार्थियो के गुण काटे जाते हैं।

(३) शिक्षक श्याम-पट पर कुछ अक्षर लिखते हैं। विद्यार्थीगण इन्हें मिलाकर अपनी योग्यता के अनुसार अधिक से अधिक शब्द बनाने की चेष्टा करते है।

(४) शिक्षक श्याम-पट पर एक शब्द लिखते है। विद्यार्थीगण शब्द के अन्तिम अक्षर को लेकर उसी लम्बाई का एक दूसरा शब्द बनाते है। इसी प्रकार वे निर्धारित समय मे नये शब्द बनाते रहते हैं, जैसे :

कथन
  नमक
    कमल
      लम्बाई
        ईशान   इत्यादि।

(५) शब्द-निर्माण का खेल.—कुछ विद्यार्थी बैठते है। प्रथम विद्यार्थी एक अक्षर कहता है। दूसरा विद्यार्थी उसमे एक अक्षर जोडता है, तीसरा खिलाडी तीसरा अक्षर। इसी प्रकार खेल चलता रहता है, और प्रत्येक खिलाडी एक-एक अक्षर जोड़कर, शब्द को बढाने की कोशिश करते हैं। वे चाहते हैं कि शब्द पूरा न हो पावे। जिस खिलाडी के पास शब्द खतम हो जाता है, या जो इसे बढा नहीं सकता है, उसे शून्य अङ्क मिलता है।

यह खिलाडी एक नया अक्षर लेकर खेल को फिर चालू करता है, और खेल ऊपर की पद्धति के अनुसार फिर चलने लगता है। असफल विद्यार्थी पुनः शून्य

का अंक प्राप्त करता है। सम्पूर्ण खेल की समाप्ति होने पर, जिस खिलाड़ी को सब से कम शून्य मिलते हैं, वही विजयी कहलाता है।

४. उपसंहार

इस प्रकार हिज्जे सिखाने की अनेक पद्धतियाँ हैं। शिक्षकों को उचित है कि वे बालकों के लिखित अभ्यासो का ठीक संशोधन करे। नीचे की कक्षाओं के विद्यार्थियों की भूले सुधारकर शुद्ध हिज्जे लिख दिया जावे, तथा उच्च कक्षाओ के विद्यार्थियों की भूलो के नीचे एक विशेष चिह्न (जैसे ×) लगा दिया जावे, और उन्हें शब्द-कोशावलोकन के द्वारा सही हिज्जे ढूँढ निकालने का अभ्यास कराया जाय।

विद्यार्थियों को अपनी प्रत्येक ग़लती को सुधारकर कम-से-कम पाँच पाँच बार शुद्ध शब्द को लिखना चाहिए। यह ध्यान मे रखना उचित है कि हिज्जे की भूल अधिक तर हाथ क अभ्यास-द्वारा सुधरती है। जिसने जितनी बार एक शब्द को गलत लिखा हो, उसे अपनी भूल सुधारने के लिए कम-से-कम ठीक उतनी ही बार उस शब्द का ठीक हिज्जे लिखना उचित है। इस हस्ताभ्यास के बिना हिज्जे की गलती नहीं सुधरती है।

निम्न कक्षाओं मे शिक्षकों को हिज्जे का एक मानचित्र टाँगना चाहिए। इस मान-चित्र मे ऐसे शब्द लिखे हों, जिनकी गलतियाँ उस कक्षा के विद्यार्थीगण अधिकतर करते हैं। उच्च कक्षाओं के विद्यार्थीगण एक विशेष नोटबुक रखे। इस नोटबुक मे वे अपनी गलतियों की सूची अकारादि क्रम से विभाजित कर लिखें। यदि किसी शब्द के हिज्जे की वे बार बार गलती कर रहे हों, तो उन्हें उसके शुद्ध रूप लिखने का उचित अभ्यास भी दिया जाय।

यहाँ अहिन्दी भाषा-भाषियों को एक चेतावनी देना आवश्यक है। अनेक समानार्थी शब्द हिन्दी तथा भारत की अन्य भाषाओं मे प्रचलित हैं, पर उनके हिज्जे एक से नहीं होते। हिन्दी में ऐसे शब्दो के हिज्जे लिखते समय, क्षेत्रीय भाषा का प्रभाव आना स्वाभाविक है। भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा के ऐसे शब्दों की तालिका रखी जावे।

—★—

पठन से नहीं मिल सकता है। इसके लिए विशेष पुस्तकों की जरूरत रहती है, जिसमे वार्त्तालाप पाठ इस तरह सोच-विचार कर सिलसिले से सजाये जाते है कि उनके द्वारा विद्यार्थियो का शब्द-रूपान्तर तथा वाक्य-गठन का क्रमिक अभ्यास, एक निर्धारित योजना के अनुसार दिया जा सकता है। इस ज्ञान के मिलते ही वे शुद्ध वाक्य स्वतः बना लेते है, और उन्हें अँधेरे मे भटकना नहीं पडता है। इसे मानना ही पड़ेगा कि व्याकरण-ज्ञान के बिना भाषा के प्रयोग मे उच्छृखलता, निरकुशता और अशुद्धि आ जाती है।

२. व्याकरण–शिक्षा की आवश्यकता

ऊपर लिखे विवेचन से स्पष्ट है कि भाषा-ज्ञान के लिए व्याकरण की शिक्षा अत्युपयोगी है। व्याकरण सिखाने के निम्न लिखित मुख्य कारण हैं :

(१) व्याकरण-शिक्षा से तर्क और विचार-शक्ति बढती है।

(२) व्याकरण भाषा का सहचर है। डॉ० स्वीट साहब कहते हैं "Grammar is the practical analysis of a language—its anatomy."[1] व्याकरण के द्वारा भाषा-रचना का ज्ञान मिलता है। भाषा के शुद्ध और अशुद्ध प्रयोग की परख व्याकरण के द्वारा ही होती है, अन्यथा नही।

(३) एक नई भाषा सिखाने के लिए व्याकरण परम सहायक है। व्याकरण के ज्ञान के बिना, अपढ मनुष्य भी अपनी मातृ-भाषा सीख लेता है; परन्तु व्याकरण जाने बिना एक अन्य नवीन भाषा पर अधिकार प्राप्त करना कठिन है।

(४) व्याकरण-शिक्षक को व्याकरण के सिद्धान्तो के अनुसार अपने पाठ तैयार करने पडते हैं।

३. व्याकरण–शिक्षा–पद्धति में भूलें

यह निश्चित है कि व्याकरण-शिक्षा भाषा-अध्ययन का एक प्रधान अङ्ग है; पर हम देखते हैं कि विद्यार्थीगण व्याकरण के नाम से कॉपते है। व्याकरण के पाठ अपनी नीरसता और शुष्कता के कारण अनाकर्षक और अप्रिय होते हैं। इस असन्तोष के अनेक कारण है :

(१) बहुधा भाषा की शिक्षा व्याकरण के अध्ययन के साथ आरम्भ कर दी जाती है। यह ढग उचित नहीं है। जब तक विद्यार्थियो को भाषा का कुछ ज्ञान न

[1] H Sweet The New English Grammar, Part I London, Oxford Clarendon Press, 1900, p 4,

हो जाय, तब तक व्याकरण का पढाना आरम्भ न किया जावे। हमें यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्यों ने बोलना और पढना पहले सीखा है। व्याकरण उसके बहुत पश्चात् बना है।

(२) तुलनात्मक पद्धति का अभाव.—नई भाषा सिखाने के लिए शिक्षकों को बालकों की मातृ-भाषा के अर्जित ज्ञान का उपयोग कराना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं किया जाता है। विद्यार्थीगण जब राष्ट्र-भाषा सीखना आरम्भ करते हैं, तब उन्हें अपनी मातृ-भाषा का बहुत कुछ ज्ञान रहता है। इस कारण तुलनात्मक विधि से मातृ-भाषा के शब्दों, कारकों, क्रिया-पदों आदि के प्रयोग के साथ, हिन्दी शब्दों, कारकों, क्रिया-पदो आदि का सहज ही मे परिचय कराया जा सकता है।

(३) बहुधा व्याकरण निगमन-पद्धति के द्वारा पढाया जाता है। पाठ के आरम्भ में ही व्याकरण का नियम (सूत्र) विद्यार्थियों को बता दिया जाता है। फिर विद्यार्थी, अपने अनुमव तथा पाठ्य-सामग्री के आधार पर, नियम की व्यापकता का परीक्षण तथा प्रयोग करते हैं। इस प्रकार की सदोष पद्धति के कारण विद्यार्थी नियम को ठीक नहीं समझ पाते। इसके विपरीत यदि शिक्षक आगमन-पद्धति अपनावें, और इसके अनुसार उदाहरणों के आधार पर नियम निकलवावें तो विद्यार्थीगण आसानी से नियम को समझेंगे, और व्याकरण के प्रति उनकी अनिच्छा न रहेगी।

(४) गद्य-पुस्तकों या गद्य पुस्तकों के पाठों से शिक्षकगण व्याकरण का सम्बन्ध नहीं रखते हैं।

(५) अभ्यास का अभाव.—बहुधा देखा जाता है कि विद्यार्थीगण नियमो को तोते की भाँति धड़ल्ले से बोल जाते हैं, परन्तु उनके उपयोग के साथ वे उनका उल्लघन करते पाये जाते हैं। उचित अभ्यास के अभाव के कारण, ये भूले विद्यार्थियों से होना समव है।

(६) उचित पाठ्य-पुस्तक के अभाव के कारण व्याकरण सीखना या सिखाना कठिन होता है। अतएव व्याकरण की उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण आवश्यक है।

४. व्याकरण–शिक्षा के मूल सिद्धान्त

१. प्रारम्भ.—आज व्याकरण एक रूखा विषय गिना जाता है, और इस विषय के पटन-पाठन से विद्यार्थीगण घबराते हैं। पर यह मानना ही पड़ेगा कि भाषा-ज्ञान के

लिए व्याकरण की विशेष आवश्यकता है। व्याकरण सूक्ष्म नियमों से भरा पड़ा है। वैयाकरणों के लिए इन नियमों का अध्ययन आवश्यकीय है। विद्यालय में व्याकरण का सम्बन्ध तो भाषा के शुद्ध रूप से ही है। इसी दृष्टिकोण से व्याकरण-शिक्षा के मूल सिद्धान्तों की चर्चा नीचे की जाती है।

२. कुछ समय भाषा सीखने के पश्चात् व्याकरण सिखाना चाहिए।—जैसा कि वायट का कहना है,—"The grammar of a language helps us to think about it, and we generally turn to its study after we have acquired a certain amount of language" व्याकरण-शिक्षा का मुख्य उद्देश्य भाषा के ढाँचे का परिचय कराना है। भाषा का अनुभव किये बिना, विद्यार्थीगण व्याकरण का अनुभव नहीं कर सकते हैं।

उक्त सत्य को समझ कर, राष्ट्र-भाषा-शिक्षकों को चाहिए कि वे आरम्भ से ही व्याकरण न-सिखलावें। लगभग तीन माह हिन्दी सिखलाने के पश्चात्, उसके व्याकरण की शिक्षा क्रमशः आरम्भ की जावे।

३. मातृ-भाषा के व्याकरण विषयक ज्ञान का उपयोग।—माध्यमिक विद्यालय में विद्यार्थीगण राष्ट्र-भाषा का अध्ययन आरम्भ करते हैं। उन्हें अपनी मातृ-भाषा के व्याकरण का थोड़ा-बहुत ज्ञान रहता है। संसार की सभी भाषाओं के व्याकरण में कुछ-न-कुछ समानता है। शिक्षकों को ज्ञात से अज्ञात की ओर गमन करना शैक्षणिक दृष्टि से आवश्यक है। इसलिए राष्ट्र-भाषा के व्याकरण का ज्ञान मातृ-भाषा के व्याकरण के अर्जित ज्ञान पर आधारित रखा जावे। शिक्षकों को पहले दोनों भाषाओं के व्याकरण की समानता बतलाना चाहिए और फिर हिन्दी के व्याकरण की विशेषता स्पष्ट करना चाहिए।

उदाहरणार्थ, गुजराती विद्यार्थियों के लिए 'कारक' का विषय लीजिए। गुजराती में 'कारक' को 'विभक्ति' और 'विभक्ति' को 'प्रत्यय' कहते हैं। शिक्षक पहले गुजराती विभक्ति और प्रत्यय के विषय पूछे तथा उन्हें श्याम-पट पर प्रथम दो खण्डों में लिखे। इसके बाद, वह उनका हिन्दी रूप (कारक और विभक्ति) अन्य दो खण्डों में लिखे। अगला पन्ना देखिए :

गुजराती-हिन्दी कारकों की तुलनात्मक शिक्षा

गुजराती		हिन्दी	
विभक्ति	प्रत्यय	कारक	विभक्ति
पहेली	०, ए	कर्त्ता	०, ने
बीजी	ने	कर्म	को
त्रीजी	ए	करण	से
चोथी	ने	सम्प्रदान	को, के, लिए
पाँचमी	थी	अपादान	से
छट्ठी	नो, नी, नु, ना, ना	सम्बन्ध	का, के, की
सातमी	माँ, ऊपर	अधिकरण	में, पर
आठमी		सम्बोधन	हे, अरे

इस पद्धति का अनुशीलन करने से व्याकरण की शिक्षा बालको के लिए सहज, बोधगम्य और ग्राह्य हो जाती है। तब शिक्षकों को न कठोर श्रम करना पड़ता है और न विद्यार्थियों को व्यायाम।

४. **आगमन पद्धति का उपयोग.**—कहा जा चुका है कि बहुधा व्याकरण निगमन पद्धति-द्वारा पढाया जाता है। इस विधि के द्वारा व्याकरण के जटिल और कठोर नियम विद्यार्थियों के सुकुमार मस्तिष्कों मे बलात् प्रविष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। व्याकरण के वे अंश, जो तुलनात्मक पद्धति से न पढाये जा सकें, उन्हें आगमन पद्धति के अनुसार सिखलाना उचित है। इस पद्धति के अनुसार, विद्यार्थियों के वातावरण के विचार ही आरम्भ मे, वाक्य के रूप मे रखे जाते है, और उन उदाहरणों पर से नियम निकलवाये जाते हैं, जिनका प्रयोग अभ्यास के समय मे कराया जाता है। आगमन पद्धति के प्रयोग से विद्यार्थियों को बिना समझे ही, व्याकरण के नियमों को रटना नहीं पड़ता है,

प्रत्युत वे उन्हें समझ कर हृदयगम कर लेते हैं। समझ कर प्राप्त किया हुआ ज्ञान शीघ्र भूलता नहीं है, अपितु चिरस्थायी होता है। इस शैली से विद्यार्थियों मे व्याकरण के प्रति रुचि उत्पन्न होती है।*

५. **व्याकरण-शिक्षा का गद्य-पुस्तकों से निकटतम सम्बन्ध**.—व्याकरण की शिक्षा का सम्बन्ध गद्य पुस्तकों से बहुत ही घना है। मिडिल स्कूल मे व्याकरण विषय की स्वतत्र पाठ्य-पुस्तको की कोई आवश्यकता नहीं है। वहॉ सम्पूर्ण व्याकरण-शिक्षा गद्य पाठ्य-पुस्तको पर निर्भर रहती है। इसलिए गद्य पाठ्य-पुस्तक का प्रत्येक पाठ व्याकरण के किसी क्रम-बद्ध विषय पर आधारित होना चाहिए। उदाहरणार्थ, 'लिंग' का विषय ले लीजिए। यहॉ एक पाठ्य-पुस्तक से कुछ अंश उद्धृत किया जाता है :

चिड़िया घर की सैर

राम और रमा भाई-बहन हैं। एक दिन वे अपने माता-पिता के साथ चिड़िया घर देखने गये।

दूर से ही उन्हें बडे-बडे पिजडे दिखे। यहॉ सब हिंस्र पशु थे — सिह-सिहनी, बाघ-बाघनी, रीछ-रीछनी . ।

तब वे पालतू जानवरो के विभाग मे गये। यहॉ मृग-मृगी, बकरा-बकरी और बारहसिगे दिखाई दिये। इसी पिजडे की बगल मे ऊँट-ऊँटनी, हाथी-हथनी, जिराफ-जिराफिन खड़े थे। ... ...

इसके बाद वे चिड़ियों के विभाग मे गये। वहॉ भॉति-भॉति की चिडियॉ थी— मोर, तोता, मैना, कबूतर, बुलबुल।

यह पाठ विशेषकर लिंग पढाने के उद्देश्य से लिखा गया है। कोई भी चतुर शिक्षक इस विषय को पाठ्य-पुस्तक के आधार पर पढा सकता है। शिक्षक पाठ्य-पुस्तक से उदाहरण ले, तथा आगमन-पद्धति द्वारा नियम उद्बोधित करे। चूँकि विद्यार्थीगण समूचे पाठ के विषय से परिचित रहते हैं, इस कारण उन्हें भाषा या भाव की कठिनाइयो का सामना नही करना पडता है। इस पद्धति को अपनाने के कारण, व्याकरण-अध्ययन के समय, वाचन-पाठ दोहराया भी जाता है। इस तरह वाचन तथा व्याकरण के पाठों मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। पर वाचन तथा व्याकरण एक ही घण्टे मे, एक ही साथ न पढ़ाये जावें। वाचन-पाठ पूर्ण समाप्त होने पर दूसरे घण्टे मे व्याकरण सिखाया जाय।

---

* पहला परिशिष्ट (पाठ-सूत्र ९) देखिए।

हाई स्कूल मे व्याकरण-सम्बन्धी इतने अधिक नियम सिखाने पडते हैं कि जिससे वहॉ व्याकरण की स्वतत्र पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता पडती है। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि गद्य-पाठ का उपयोग व्याकरण-शिक्षा के लिए न किया जाय। व्याकरण के नियमों का प्रयोग गद्य-पाठ मे बहुत कुछ दिया जा सकता है। इसकी चर्चा अगले प्रकरण मे की गई है।

हाई स्कूल की व्याकरण पाठ्य-पुस्तके नवीन ढग से लिखी जाना चाहिए, क्योंकि हमे राष्ट्र-भाषा का ज्ञान तुलनात्मक पद्धति से देना है। ऐसी दशा में प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा के लिए उपयुक्त राष्ट्र-भाषा-व्याकरण की अलग-अलग आवश्यकता है। इस प्रकार की व्याकरण-पुस्तकों मे हिन्दी तथा मातृ-भाषा के व्याकरण की तुलनात्मक विवेचना होना चाहिए।

६. **उचित अभ्यास।**—"करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान"—के अनुसार, उचित अभ्यास के बिना किसी भी विषय मे पारगत होना कठिन है। बहुधा देखा गया है कि व्याकरण का ज्ञान रहते हुए भी, अनेक लेखकों की रचनाओं में, व्याकरण सम्बन्धी अनेक भद्दी भूलें रहती हैं। इसका मूल कारण है उचित अभ्यास का अभाव। अभ्यास-कार्यक्रम के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है :

(१) व्याकरण के नियमों का प्रयोग, जैसे, लडका खेलता है, लड़की — है।

(२) सिखाये हुए शब्द-रूपान्तरों या वाक्य-गठनों को श्याम-पट पर लिखना, तथा विद्यार्थियों को उन्हें वाक्यों मे प्रयोग करने का मौखिक एवं लिखित अभ्यास देना।

(३) गद्य-पाठ के समय—(अ) जब कोई परिचित शब्द-रूपान्तर या वाक्य-गठन आवे, तब शिक्षक उस पर प्रश्न पूछ सकता है, (आ) प्रत्यक्ष पुनरुत्पत्ति — शिक्षक के अथवा पाठ के शब्दो को दोहराना, (इ) किसी अनुच्छेद की परिवर्तित पुनरुत्पत्ति—पुरुष, वचन, काल, वाच्य आदि बदलकर, तथा विशेषण या क्रियाविशेषण प्रयुक्त कर, जैसे, इस घटना का ऐसा वर्णन करो, मानो, तुमने इसे देखा हो, या, यह घटना भविष्य मे होनेवाली हो, इत्यादि, (ई) व्याकरण सम्बन्धी अभ्यास — जैसे, भाववाचक सज्ञाऍ बनाओ (चतुर, बूढा, मिठाई), विशेषण बनाओ (पुराण, मास, बुद्धि), मूल शब्द बताओ और बनाने के नियम लिखो (शारीरिक, लड़कपन) इत्यादि।

(४) लिखित रचना का उचित सशोधन तथा भूलों को सुधार कर लिखने का अभ्यास।

७. उचित पाठ्य-क्रम.—बहुधा बिना समझे-बूझे व्याकरण का एक पाठ्य-क्रम विद्यार्थियों पर लाद दिया जाता है। इस निरर्थक बोझ के कारण विद्यार्थी भयग्रस्त हो जाते हैं। पाठ्य क्रम-निर्धारण मे दो विषयों की ओर ध्यान देना उचित है : (१) विद्यार्थियो की मानसिक शक्ति—क्या वे विषय को समझ सकते है? और (२) उपयोग—व्याकरण के कौन से अंश या नियम प्रयोग मे अधिक आते है? उन जटिल नियमो की पढ़ाई व्यर्थ है, जिनका उपयोग अधिक नहीं होता है; अतः सैद्धान्तिक व्याकरण (Theoretical Grammar) के बदले प्रयोगात्मक व्याकरण (Applied Grammar) ही अपेक्षित है।

पाठ्य-क्रम मे एक सिलसिला रहना चाहिए; क्योंकि विद्यार्थियों को प्रथम वर्ष के निम्नतर सोपान से सप्तम वर्ष के उच्च मंच पर आरोह करना है। इसलिए पूरा विषय सम-केन्द्रीय नियम (Concentric Method) के अनुसार दो बार पढ़ाया जाय। पहले इसका दिग्दर्शन कराया जाय, फिर समूचे विषय का विस्तारित रूप से अध्ययन कराया जाय। यह देखा गया है कि बहुत से विद्यार्थियों की शिक्षा मिडिल स्कूल या तीन वर्ष की शिक्षा के पश्चात् समाप्त हो जाती है। इस अवधि मे विद्यार्थी को समूचे व्याकरण का बोध हो जाना चाहिए। इसीलिए सम्पूर्ण व्याकरण एक बार मिडिल स्कूल मे पढाया जाय और फिर दूसरी बार वही हाई स्कूल मे भी पढ़ाया जावे। इस प्रकार समकेन्द्रीय पद्धति का उपयोग किया जाय। मिडिल स्कूल मे विद्यार्थियो को व्याकरण के आवश्यक अंगों का केवल दिग्दर्शन कराया जावे; पर हाई स्कूल मे इसीकी विस्तारित रूप से चर्चा आवश्यक है।

इस सिलसिले मे यह भी याद रखना चाहिए कि राष्ट्रभाषा के व्याकरण के पाठ्य-क्रम का निकटतम सम्बन्ध मातृ भाषा के व्याकरण से है। कारण, हिन्दी सिखाते समय, हमें तुलनात्मक पद्धति का उपयोग करना है। माध्यमिक विद्यालयो के लिए व्याकरण के पाठ्य-क्रम की एक रूप-रेखा नीचे दी गई है। आशा की जाती है कि यह पाठ्य-क्रम शिक्षकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

व्याकरण का पाठ्य-क्रम

प्रथम वर्ष.—शब्द-भेदों के नाम, सज्ञा (जातिवाचक, व्यक्तिवाचक), लिंग (केवल भेद), वचन (केवल भेद), पुरुषवाचक सर्वनाम, क्रिया (तीनो काल)।

द्वितीय वर्ष.—सज्ञा (जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, भाववाचक), लिंग-परिवर्तन तथा वचन-परिवर्तन के कुछ मुख्य नियम, कारक, विशेषण (गुणवाचक, परिमाणवाचक, संख्यावाचक, सकेतवाचक), सर्वनाम (पुरुषवाचक, निश्चयवाचक,

अनिश्चययाचक, सत्रधवाचक), क्रिया (प्रकार, वाच्य, लिग, वचन, पुरुष, तीनों कालों के प्रकार — सामान्य, अपूर्ण, पूर्ण)।

तृतीय वर्ष—क्रियाविशेषण (रीतिवाचक, कालवाचक, स्थानवाचक, परिमाण-वाचक), सम्बन्धबोधक अव्यय, समुच्चयबोधक अव्यय, विस्मयादिबोधक अव्यय, प्रथम और द्वितीय वर्ष के पाठ की पुनरावृत्ति।

चतुर्थ वर्ष.—शब्द भेद (व्ययीपद और अव्ययीपद), सज्ञा (जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, भाववाचक, द्रव्यवाचक, समुदायवाचक), लिग, वचन, कारक, विशेषण (भेद, विशेषणो की तुलना), सर्वनाम (पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, सम्बन्धवाचक, प्रश्नवाचक, निजवाचक, सर्वनामों का रूपान्तर), क्रिया (भेद, प्रेरणार्थक क्रिया, सयुक्त क्रिया, सहायक क्रिया, मुख्य क्रिया, वाच्य, प्रयोग, काल), पद-परिचय (सज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया)।

पञ्चम वर्ष.—क्रियाविशेषण (कालवाचक, स्थानवाचक, परिमाणवाचक, रीति-वाचक), सम्बन्धबोधक अव्यय, समुच्चयबोधक अव्यय, विस्मयादिबोधक अव्यय, अव्ययों का पद-परिचय।

षष्ठ वर्ष.—उपसर्ग, कृदन्त, तद्धित, समास, शब्दनिर्माण (सज्ञाओं से सज्ञाएँ, विशेषण से सज्ञाएँ, सज्ञा से विशेषण, क्रिया से सज्ञाएँ)।

सप्तम वर्ष.—सन्धि, अलकार (अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति)।

५ पद—परिचय

व्याकरण-शिक्षा मे पद-परिचय का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा विद्यार्थियों के व्याकरण-ज्ञान-की परीक्षा होती है। पद-परिचय तभी कराना उचित है, जब कि विद्यार्थियों को भाषा तथा व्याकरण का यथेष्ट ज्ञान हो जावे। मिडिल स्कूल मे विद्यार्थियों को व्याकरण के पेंच मे नहीं डालना चाहिए। इस कारण इस समय पद-परिचय कराना उचित नहीं है।

हाई स्कूल में व्ययीपदों की विस्तृत चर्चा के बाद ही, सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया का पद-परिचय कराया जा सकता है। अव्ययों का सम्पूर्ण परिचय देने के बाद ही, विभिन्न अव्ययों की व्याख्या की जा सकती है।

६. उपसंहार

व्याकरण भाषा का सहचर है। विद्यार्थियों को शुद्ध भाषा का ज्ञान तब तक नहीं मिलता है, जब तक कि उन्हें व्याकरण का ज्ञान न हो। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि

विद्यार्थियों को व्याकरण केवल व्याकरण-ज्ञान के लिए पढ़ाया जाय। व्याकरण का ज्ञान मानसिक अनुशासन के लिए नही है। ऐसी शिक्षा दूषित है।

विद्यार्थियो को व्याकरण के उन जटिल नियमो का पढ़ाना व्यर्थ है, जिनका उपयोग नहीं होता। व्याकरण केवल उतना ही पढ़ाया जाय, जितना कि विद्यार्थियों के लिए बोझ न हो, और जितना वे एक बार मे सीख सके। पढ़ते समय रटन्त प्रणाली का सर्वथा परिहार करना उचित है। परिभाषाएँ, नियम अथवा सिद्धान्त रटाने के बदले समझा दिये जावें; और प्रयोग तथा अभ्यास द्वारा उन्हें स्थायित्व देना उचित है। सार यह है कि व्याकरण भाषा-ज्ञान का साधन है, न कि साध्य, अतएव इसी दृष्टिकोण से इस विषय की शिक्षा प्रयोजनीय है।

द्वितीय वर्ष.—वर्तमान, भूत तथा भविष्यत् काल के भेद (सामान्य, अपूर्ण, पूर्ण) पाठ्य पुस्तक के शब्दो का उपयोग।

तृतीय वर्ष.—वाक्य (साधारण, प्रश्नार्थक, आज्ञार्थक, विस्मयादिबोधक): विराम चिह्न (, ? ! ।), पाठ्य-पुस्तक के शब्दों का उपयोग।

चतुर्थ वर्ष.—वाक्य-रचना अनुच्छेद-योजना, अनुच्छेदो का जोडना: मुहावरे तथा वाग्धारा का उपयोग।

पञ्चम वर्ष.—वाक्य-रूपान्तर (विधि-निषेध, आज्ञार्थक, प्रश्नार्थक, इच्छा-बोधक, विस्मयादिबोधक) विराम-चिह्न (, "…. " — : ‸)।

षष्ठ वर्ष.—वाक्य (साधारण, मिश्र, संयुक्त)· मिश्र वाक्य के भेद, वाक्य-पृथक्करण, वाच्य-परिवर्तन· तत्सम, तद्भव, विलोम तथा पर्यायवाची शब्द; मुहावरे तथा वाग्धारा का उपयोग।

सप्तम वर्ष.—वाक्य-रूपान्तर, शब्द-निर्माण, भाषा की अशुद्धियो का संशोधन।

इस रूप-रेखा का मुख्य उद्देश्य है—विद्यार्थियों को क्रमशः सरल से जटिल की ओर ले जाना। उन्हे सबसे पहले ज्ञान होना चाहिए एक साधारण वाक्य के ढॉचे का; तदनन्तर क्रिया का कर्त्ता से लिंग, वचन और पुरुष का सम्बन्ध, अन्त मे, क्रिया का काल के अनुसार रूपान्तर।

पर प्रथम वर्ष की शिक्षा में, काल के मुख्य तीन भेद ही यथेष्ट होंगे। द्वितीय वर्ष, प्रत्येक काल के मुख्य तीन भेद (सामान्य, पूर्ण और अपूर्ण) समझाना चाहिए। मिडिल स्कूल मे इन तीन भेदो के अतिरिक्त, दूसरे भेदो को पढाने की आवश्यकता नही है।

वाक्य-गठन का काल से घना सम्बन्ध है। इस ज्ञान के बाद वाक्य के मुख्य भेद (अर्थ के अनुसार) का परिचय अत्यन्त आवश्यक है। वार्त्तालाप, वाचन या लिखने मे, इस प्रकार के वाक्यों का उपयोग करना पड़ता है। इन वाक्यो का परिचय कराते समय, साधारण विराम-चिह्नो (, । ? !) का ज्ञान देना बहुत ही जरूरी है। वाक्य-गठन के इस ज्ञान के पश्चात् विद्यार्थी हाई स्कूल मे आता है। वह हिन्दी व्याकरण से भी पर्याप्त परिचित हो जाता है। अब असली 'रचना' सिखाना आरम्भ होता है। रचना के मुख्य अङ्ग हैं: वाक्य और अनुच्छेद, उनकी रचना तथा उनमे क्रम।

शिक्षकों को चाहिए कि वाक्य मे शब्द और वाक्यांशों के स्थान तथा सुसगठित और कमजोर वाक्य के लक्षण समझा देवे। यह नही समझना चाहिए कि वाक्य केवल व्याकरण के अनुसार केवल विशुद्ध ही हो, वरन् उनका गठन भी समुचित हो। प्रत्येक वाक्य मे एक से अधिक मुख्य बात न रहे। शिक्षक विद्यार्थियो को वाक्य बनाने का

यथेष्ट अभ्यास करावें। इसके अनेक साधन हैं, जैसे, वार्त्तालाप, चित्र पर प्रश्न पूछ कर, किसी जानी-समझी वस्तु के विषय में प्रश्न पूछ कर, शब्द देकर वाक्यों की रचना कराना, पद-न्यूनता की पूर्ति, इत्यादि।

पहले एक-एक वाक्य स्वतन्त्र बनाना सिखाना चाहिए। उसके पश्चात् एक ही विषय पर विद्यार्थीगण कई वाक्य बनावें। इसके लिए किसी भी चित्र या परिचित वस्तु पर लगातार प्रश्न पूछे जा सकते हैं। उत्तरों को क्रमश: सजाकर एक अनुच्छेदगठन सिखाया जाता है। विद्यार्थियों को यह समझा दिया जाय कि एक अनुच्छेद मे एक ही भाव हो। गद्य-पुस्तकों मे इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे।

इसके बाद विद्यार्थियों को अनुच्छेदों को क्रम के अनुसार जोडना सिखाया जाय। वे पहले एक अनुच्छेद का वर्णन तथा कहानी लिख सकते हैं। इसका अभ्यास होने के बाद एक से अधिक अनुच्छेद-युक्त लेख लिख सकते हैं, जैसे :

पालतू जानवर
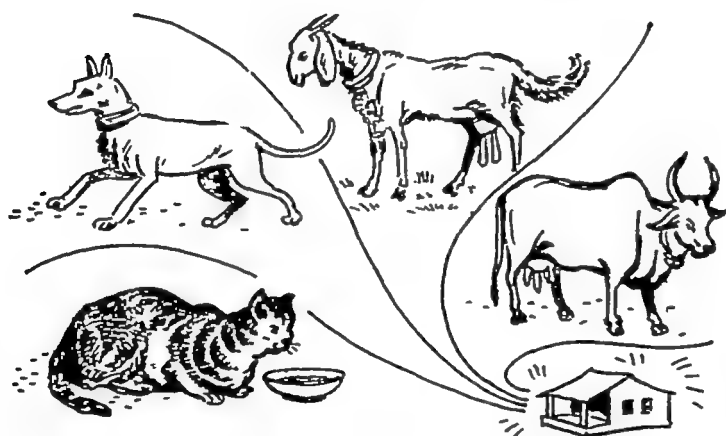
यह मेरा घर है। मेरे घर मे कई जानवर हैं, जैसे, कुत्ता, बकरी, गाय, बिल्ली, आदि।

कुत्ता बहुत ही होशियार जानवर है। वह घर की चौकीदारी करता है।
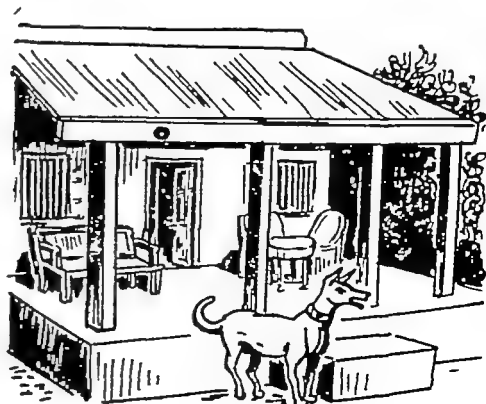
गाय दूध देती है। हम दूध पीते हैं। दूध से मक्खन, मही, घी, दही आदि बनते हैं। हमारे शरीर के लिए, ये लाभ-दायक चीज़े हैं।
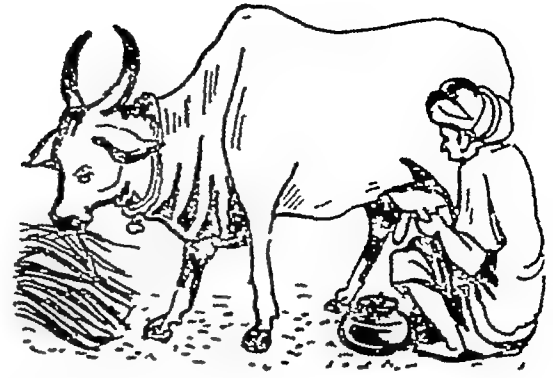
इस तरह, विद्यार्थियो को, वाक्य-रचना, वाक्य जोडकर अनुच्छेद बनाना, तथा अनुच्छेदों का क्रमिक ध्यान रखकर, एक लेख लिखना या कहना सिखाया जाता है।

पचम वर्ष मे वाक्य (अर्थ के अनुसार)—रूपान्तर सिखाया जाता है। रूपान्तर-द्वारा एक ही कथन अनेक प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है। लेख मे हृदय-ग्राहिता, सस्कारिता और वैविध्य लाने के लिए यह कला अत्युपयोगी है। वाच्य-परिवर्त्तन-द्वारा भी वाक्यो का रूप बदला जाता है। व्याकरण की कई पुस्तकों मे प्रत्यक्ष-परोक्ष कथन (Direct–Indirect Narration) की भी विस्तृत चर्चा की गई है। प्रत्यक्षतः, यह अँग्रेजी व्याकरण की नकल है। हिन्दी-भाषा मे प्रत्यक्ष-परोक्ष का कोई स्थान नही है।

व्याकरण की दृष्टि से वाक्य के तीन भेद हैं: साधारण, सयुक्त और मिश्र। षष्ठ वर्ष मे विद्यार्थियों को ये भेद तथा इनका रूपान्तर सिखाया जाता है। बिना अर्थ बदले लम्बे वाक्यों को छोटे-छोटे वाक्यों मे तोडने के कारण, तथा कई वाक्यों को जोडकर एक साधारण वाक्य बनाने से रचना-शैली में एक नवीनता आ जाती है।

इस प्रकार इस पाठ्य-क्रम में वाक्य-रचना की ओर पूरा ध्यान रखा गया है। रचना मे वाक्य का ही अधिक महत्व है। वाक्य कब और किस प्रकार लिखा जाय, — यह विद्यार्थी को जानना आवश्यक है। वाक्य-रचना के साथ अनुच्छेद तथा निबन्ध-रचना का घना सम्बन्ध है।

पाठ्य-क्रम मे इस बात पर भी जोर दिया गया है कि विद्यार्थीगण अपनी रचना मे शब्द, वाग्धाराओं तथा लोकोक्तियो का उपयोग कर सके। पहले पहल इसका अभ्यास केवल गद्य पाठ पर निर्भर रहता है। ऊँची कक्षाओ मे गद्य-पाठ के सिवा, शिक्षकगण बाहरी उदाहरण देकर इनका अभ्यास करा सकते हैं। भारत की क्षेत्रीय भाषओं में हिन्दी भाषा मे प्रचलित अनेक समानार्थी मुहावरे प्रचलित हैं। इनका उपयोग बालको को सिखाना अति हितकर होता है। कारण, वे इनसे परिचित रहते हैं। यह तुलनात्मक पद्धति अतीव हितकारी होती है।

३. पद्धति

नियम-बद्ध रचना सिखाने के लिए तीन पद्धतियाँ विशेष लाभ-प्रद हैं: (१) तुलनात्मक पद्धति, (२) आगमन पद्धति और (३) मौखिक पद्धति।

१ **तुलनात्मक पद्धति.**—हिन्दी-रचना सिखाने के समय शिक्षकों को सर्व प्रथम विद्यार्थियों के मातृ-भाषा-ज्ञान का ध्यान रखना चाहिए, उदाहरणार्थ 'विराम-चिह्न' या 'वाक्य-प्रकार' (अर्थ या व्याकरण के अनुसार) लीजिए। विद्यार्थीगण इनसे परिचित ही हैं। ये हिन्दी पिरियड में फिर से नये सिरे से न सिखाये जावें। प्रायः आधा पाठ्य-क्रम तुलनात्मक पद्धति द्वारा पढ़ाया जा सकता है।

२. **आगमन-पद्धति.**—जो भाग तुलनात्मक पद्धति से न सिखाया जाय, वह आगमन पद्धति से पढाया जाय। पहले उदाहरण दिया जाय, तथा इनका निरीक्षण कराकर विद्यार्थियों-द्वारा नियम उद्बोधित कराना चाहिए। तत्पश्चात् अभ्यास और प्रयोग।* इस पद्धति-द्वारा सिखाये हुए नियम विद्यार्थीगण नहीं भूलेंगे।

३. **मौखिक पद्धति.**—रचना-शिक्षा मौखिक कार्य से ही आरम्भ की जा सकती है, चाहे शब्द-रूपांतर ही लीजिए या वाक्य-गठन अथवा शब्दों या मुहावरों का उपयोग। इनका पहले मौखिक अभ्यास देना पडता है। यदि विद्यार्थीगण अपने विचार बोलकर शुद्ध भाषा मे प्रकट कर सकते हैं तो लेखन-कार्य सरल हो जाता है।† माध्यमिक विद्यालय मे प्रथम वर्ष से लेकर सप्तम वर्ष तक मौखिक कार्य का बहुत ही ऊँचा स्थान है। वाक्य-रचना से लेकर अनुच्छेद तथा निबन्ध-रचना पहले मौखिक ही कराना पड़ता है, और क्रमशः लेखन-कार्य आरम्भ किया जा सकता है। यहाँ तक कि अन्तिम वर्ष मे भी मुक्त-रचना मौखिक कार्य पर आधारित रहती है।

४ उपसंहार

इस तरह नियम-बद्ध रचना सिखाई जा सकती है। इस रचना का मुख्य उद्देश्य है भाषा का उचित ज्ञान देकर विद्यार्थियों को क्रमशः मुक्त रचना की ओर ले जाना। मिडिल स्कूल मे मुक्त रचना बहुत कुछ गद्य-पाठ पर निर्भर रहेगी, पर प्रारम्भ मे पाठ के शब्दो तथा वाक्यों के प्रयोग का मौखिक अभ्यास देना होगा।

हाई स्कूल मे वाक्य-रचना से विद्यार्थियों को अनुच्छेद-रचना तथा अपने विचारों को क्रम से एक लेख-रूप मे सजाना सिखाया जाता है। किसी परिचित वस्तु के विषय मे कई वाक्य कहला कर और फिर उन्हें आवश्यकतानुसार मिलवा कर या परिवर्तित करा कर एक छोटी-सी रचना तैयार की जाती है। हाई स्कूल में मुक्त रचना का यही प्रथम सोपान है।

—— ★ ——

---

* **पहला परिशिष्ट** (पाठ-सूत्र ९) देखिए।

† देखिए **भाग चौथा, अध्याय छठा।**

छठा अध्याय

मुक्त रचना

१. रूप-रेखा

रचना-शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यह है कि विद्यार्थीगण रचना के नियमों का ध्यान रखकर अपने भावों को कलात्मक रूप से क्रम-बद्ध सजाकर सुन्दर शैली मे लिख सके। व्याकरण तथा नियमबद्ध रचना के द्वारा विद्यार्थियों को भाषा के नियमों का ज्ञान दिया जाता है: पर मुक्त रचना का ध्येय है कि विद्यार्थीगण अपने विचारो को क्रम बद्ध तथा लिपिबद्ध रूप मे सुन्दर भाषा मे व्यक्त कर सके।

मुक्त रचना सिखाने में भी एक क्रम रहता है। द्वितीय वर्ष के द्वितीय सत्र (Second Term) के पहले मुक्त रचना प्रारम्भ नहीं की जा सकती है। इसके पूर्व विद्यार्थियों का भाषा-ज्ञान बहुत ही कम रहता है। जब मुक्त रचना प्रारम्भ की जाय, तब रचना का विषय गद्य पाठ्य-पुस्तक का कोई पाठ होवे, और विद्यार्थियों को पाठ के भावो को शुद्ध भाषा में व्यक्त करने का अभ्यास दिया जावे। मिडिल स्कूल में, इससे अधिक करना उचित नही है।

मिडिल स्कूल में विद्यार्थियो के राष्ट्र-भाषा ज्ञान की नींव पर मुक्त रचना विविध प्रकार से सिखाई जा सकती है। हाईस्कूल के एक पाठय-क्रम की रूप-रेखा नीचे दी जाती है :

चतुर्थ वर्ष—बातचीत-द्वारा विशेष अवसरों के योग्य भाषा का प्रयोग तथा कहानी का पुनरुत्पादन, चित्र-वर्णन, घरेलू पत्र-लेखन, परिचित विषयों का सरल वर्णन (घर, रेलवे स्टेशन, मेले–ठेले, इत्यादि)।

अनुवाद : (राष्ट्र-भाषा से मातृ-भाषा)।

पञ्चम वर्ष—कथा-कहानी का पुनरुत्पादन, संवाद (किसी कहानी या साधारण विषय को संवाद रूप मे लिखना), वर्णनात्मक निबन्ध (अनुभूत तथा काल्पनिक), कथनात्मक निबन्ध (जीवन चरित, कोई दिवस, खेल, दृश्य, घटना, त्यौहार, इत्यादि); पत्र-लेखन (घरेलू तथा कुछ काम-काजी)।

अनुवाद : (राष्ट्र-भाषा से मातृ-भाषा), भावार्थ ।

षष्ठ वर्ष—रूप-रेखा के आधार पर कहानी-लेखन, कथनात्मक निबन्ध (वैज्ञानिक आविष्कार, वस्तु-सम्बन्धी, भौगोलिक तथा ऐतिहासिक विषय, आत्म-कथा, कल्पनात्मक, तुलनात्मक), एकांकी नाटक लिखना, पत्र-लेखन (काम-काजी)।

अनुवाद : (मातृ-भाषा से राष्ट्र-भाषा), भावार्थ संक्षेपीकरण और समीक्षा, स्पष्टीकरण, संवाद-विवरण ।

सप्तम वर्ष—मौलिक कहानी लिखना, वार्तानुवाद, कई आदर्श निबन्धों के लेखकों के लेखों का पुनरुत्पादन, विचारात्मक निबन्ध (विद्यार्थी सम्बन्धी, नीति और सदाचार, समस्या-मूलक साहित्य-सम्बन्धी कोई विचार, इत्यादि), पत्र-लेखन (काम-काजी) ।

अनुवाद : (मातृ-भाषा से राष्ट्र-भाषा), भावार्थ संक्षेपीकरण और समीक्षा, स्पष्टीकरण संवाद-विवरण ।

ऊपर की रूप-रेखा से यह स्पष्ट होगा कि पाठ्य-क्रम में एक क्रमिक विकास-योजना है। वार्तालाप-द्वारा विद्यार्थी पहले वाक्य-रचना सीखता है। फिर, वह पढ़ी या सुनी हुई कथा-कहानी की पुनरावृत्ति तथा चित्र-वर्णन करता है। आरम्भ में ये विषय केवल एक ही अनुच्छेद के हों बाद में ये एक से अधिक अनुच्छेद में बढ़े हुए हों। इस प्रकार विद्यार्थी वाक्यों को अनुच्छेद में क्रम से सजाना तथा अनुच्छेदों को एक गल्प या वर्णन के रूप में जमाना सीखता है।

इसके पश्चात् निबन्ध-लेखन आरम्भ होता है। उसमें भी एक सिलसिला रहता है: पहले वर्णनात्मक, फिर कथनात्मक तथा अन्त में विचारात्मक। संवाद-रचना में भी एक क्रम है : साधारण बातचीत, संवाद (किसी कहानी को संवाद-रूप में लिखना), वार्तानुवाद, एकांकी नाटक ।

पत्र-लेखन तब तक आरम्भ न किया जाय, जब तक कि विद्यार्थीगण को अनुच्छेद-गठन का ज्ञान न हो जावे। शुरू शुरू के पत्र घरेलू हों। धीरे-धीरे आवश्यकतानुसार कामकाजी पत्र शुरू किये जावें।

कथा-कहानी और संवाद-लेखन, निबन्ध-रचना, पत्र-लेखन के अतिरिक्त मुक्त रचना के और भी विशेष अंग हैं जैसे, अनुवाद, भावार्थ और व्याख्या, संक्षेपीकरण, समीक्षा, स्पष्टीकरण तथा रिपोर्टिंग।

इन विविध अंगों की शिक्षण-विधि भिन्न-भिन्न प्रकार की है। इनकी विस्तृत चर्चा आगे के प्रकरणों में की गई है। पर यह सदा ध्यान में रखा जाय कि यद्यपि मुक्त रचना का अन्तिम ध्येय है विचारों को लिखित भाषा-द्वारा पूर्ण रूप से व्यक्त करना, तिस पर

भी विद्यार्थियो से कोई भी लेख तब तक लिखाया न जाय, जब तक कि विषय की मौखिक चर्चा न हो चुके। मौखिक अभ्यास के द्वारा ही सृजनात्मक लिखित रचना की सृष्टि हो सकती है। किटसन साहब का कथन है :

> In no circumstances should free composition be set to junior pupils without having the subject thoroughly discussed in class before hand. *

जब विद्यार्थीगण अपने विचार क्रम-बद्ध-रूप मे सुन्दर भाषा में व्यक्त कर सके, तब मौखिक रचना की आवश्यकता नहीं रहती है। यह आशा सप्तम वर्ष के अध्ययन के समय की जा सकती है।

२. मिडिल स्कूल मे मुक्त रचना

मिडिल स्कूल मे, मुक्त रचना का गद्य पाठ्य-पुस्तक से विशेष सम्बन्ध रहता है। किसी पाठ के समाप्त होने पर, पाठ्य-विषय पर प्रश्न पूछे जावे। प्रश्नों मे एक सिलसिला हो, और इनके द्वारा चाबी-शब्द उद्बोधित किये जावे।

श्याम-पट पर दो खाने खींचे जावे। एक बडा हो और दूसरा छोटा हो। बडे खाने मे चाबी-शब्द लिखे जावे, और छोटे खाने मे पाठ के वे शब्द और मुहावरे, जिनका शिक्षक रचना मे विशेषकर उपयोग कराना चाहे।

जब श्याम-पट पर रूप-रेखा लिखना समाप्त हो जाय, तब इसकी सहायता से शिक्षक कुछ विद्यार्थियो को रचना मौखिक कहने का अवसर दे। रचना मे विशेष शब्दों और मुहावरों का उपयोग कराया जाय। मौखिक रचना के अभ्यास के बाद रचना लिखने को दी जाय।

एक रचना की रूप-रेखा नीचे दी जाती है :

राजा भोज

चाबी-शब्द	विशेष शब्द
पिता की मृत्यु।—बच्चा भोज।—चाचा मुंज, भोज के नाम राज करना।	निरा बच्चा।
भोज को मरवाने का निश्चय। —मत्री को आज्ञा। —मत्री की कार्यवाही।	मन मे पाप. झूठ मूठ।
भोज का पत्र। —मुज का पछतावा। —भोज का आना। —भोज का राजा होना।	सपत्ति साथ न जाना फूट फूट कर रोना, गले लगाना।

* Kittson, op cit., p 39

२. वार्तालाप—संवाद—वादानुवाद

१. प्रारम्भ.—वार्तालाप की विशेष चर्चा तीसरे भाग के तीसरे अध्याय में की गई है। यहाँ वार्तालाप-लेखन-पद्धति का उल्लेख किया जाता है। विद्यार्थियों की अवस्था के अनुकूल इस विषय के सिखाने में एक क्रम रहना चाहिए : (१) साधारण बातचीत (चतुर्थ वर्ष), (२) संवाद (पञ्चम वर्ष), (३) एकांकी नाटक (षष्ठ वर्ष), और (४) वादानुवाद (सप्तम वर्ष)।

२. चतुर्थ वर्ष.—हाई स्कूल में मुक्त-रचना साधारण बातचीत द्वारा शुरु होती है। इसके द्वारा विद्यार्थियों को वाक्य-रचना का अभ्यास मिलता है। वार्तालाप का विषय हो—जीवन सम्बन्धी घटना, जिससे विद्यार्थी परिचित हो उदाहरणार्थ "तुम्हारी तबियत कैसी है ?" 'बाजार में', "भोजन का निमंत्रण", "आव-भगत", इत्यादि।

जीवन सम्बन्धी घटनाओं के अतिरिक्त, चित्रों के आधार पर प्रश्नोत्तर-द्वारा वार्तालाप का अभ्यास दिया जा सकता है उदाहरणार्थ,—एक किसान के चित्र पर से इस प्रकार बातचीत की जा सकती है :

प्रश्न	उत्तर
चित्र मे कौन है ?	चित्र में, एक किसान है।
उसके सिर पर क्या है ?	उसके सिर पर पगड़ी है।
उसके हाथ मे क्या है ?	वह खेत जोत रहा है।
वह क्या कर रहा है ?	उसके हाथ मे एक लकड़ी है।
इत्यादि	इत्यादि
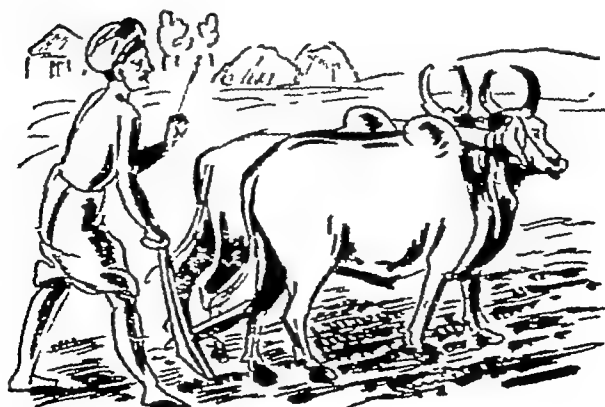
प्रश्नोत्तर-प्रणाली द्वारा वार्त्तालाप अभ्यास कराया जाय। पहले तो शिक्षक स्वयं प्रश्न पूछे, और विद्यार्थियो से उत्तर उद्बोधित कराएँ। तत्पश्चात् उसी विषय पर विद्यार्थीगण आपस मे वार्त्तालाप करें। आवश्यकतानुसार शिक्षक विद्यार्थियो को सहायता पहुँचावे।

३. **पञ्चम वर्ष**.—पंचम वर्ष मे बालको को सवाद-रचना सिखायी जाय। इस वर्ष की वाक्य-रचनाएँ पिछले वर्ष की बातचीत से बढ़ी हुई होवे। सवादो के विषय सरल होवें। ये विषय दो प्रकार के होते हैं: (१) कोई कहानी या (२) कोई परिचित विषय या घटना।

(१) कोई कहानी —कहानी ऐसी हो, जिससे विद्यार्थीगण परिचित हों। विद्यार्थीगण इसे साधारण गद्य-रूप मे न लिखकर सवाद-रूप में लिख सकते हैं, उदाहरण के लिए "देवता और लकड़हारा" की कहानी लीजिए:

देवता — तुम क्यों रो रहे हो?

लकडहारा — (रोते हुए) मेरी कुल्हाडी खो गई है।

देवता — (पानी से सोने की कुल्हाड़ी निकाल कर) क्या यह कुल्हाड़ी तुम्हारी है?

लकड़हारा — नहीं, भगवन्, यह मेरी नहीं है।

देवता — (पानी से चॉदी की कुल्हाड़ी निकाल कर) ले, इसे ले। यह तेरी अवश्य होगी।

लकड़हारा —(सिसकता हुआ) नही, यह भी नहीं है .. इत्यादि।

ऐसी कहानियॉ सवाद रूप मे एकदम नहीं लिखाना चाहिए। पहले, कहानी १।२ बालकों-द्वारा गद्य-रूप मे कहलाई जावे। इसके पश्चात् संवाद मे कितने पात्रों की आवश्यकता है—इसकी विवेचना की जाय। सवाद की मौखिक चर्चा के बाद, विद्यार्थीगण उसे लिखे। इसे सवाद की भॉति खेलने से विद्यार्थियों को और भी मदद मिलती है।

(२) कोई परिचित विषय या घटना—परिचित विषय नाना प्रकार के हो सकते हैं, जैसे, दैनिक दृश्य (किसीकी बीमारी), कोई आकस्मिक घटना या इतिहास अथवा नागरिक-शास्त्र का पाठ (नगरपालिका के लिए चुनाव), इत्यादि। ऊपर चर्चा की हुई पद्धति द्वारा इन घटनाओं को सवादरूप मे परिणत किया जा सकता है।

४. षष्ठ वर्ष.—संवाद में केवल एक ही दृश्य या कई दृश्यों को जोड़कर विद्यार्थी-गण एकांकी नाटक लिख सकते हैं। नाटक का विषय कोई परिचित, ऐतिहासिक या पौराणिक कथा हो। शिक्षक पहले दो एक विद्यार्थियों से कहानी मुखाग्र कहलावे। फिर, पूरी नाटिका की रूप-रेखा की मौखिक चर्चा की जाय। नाटिका में विभिन्न दृश्य हो, प्रत्येक दृश्य का विषय तथा आवश्यक पात्र, पात्री, पात्रोपयोगी भाषा। उदाहरणार्थ, विद्यार्थीगण हरिश्चन्द्र नाटिका की रचना कर सकते हैं। इस नाटिका के मुख्य तीन दृश्य होंगे :

(१) प्रथम दृश्य—(हरिश्चन्द्र का दरबार), पात्रगण—हरिश्चन्द्र, सभासदगण, विश्वामित्र।

(२) द्वितीय दृश्य—(हरिश्चन्द्र तथा शैव्या का बिकना) पात्रगण—हरिश्चन्द्र, शैव्या, रोहिताश्व, क्रेता गण—ब्राह्मण, चाण्डाल, विश्वामित्र।

(३) तृतीय दृश्य—(श्मशान का दृश्य), पात्रगण—हरिश्चन्द्र, शैव्या, रोहिताश्व, विश्वामित्र, देवतागण।

५. सप्तम वर्ष.—इस वर्ष वाद-विवाद के विषय आरम्भ किये जा सकते हैं। विद्यार्थियों में तर्क-शक्ति-विकास के लिए वाद-विवाद बहुत ही उपयोगी है। शिक्षक पहले गद्य पुस्तक से किसी वाद-विवाद के पाठ की शैली को चर्चा करे। इसके द्वारा वह विद्यार्थियों को इस प्रकार के विषयों के लिखने की पद्धति समझा देवे, उदाहरणार्थ, श्री रायकृष्णदास का 'हीरा और कोयला' लीजिए। लेखक ने इस संवाद की किस प्रकार क्रमिक रचना की है :

(१) आरम्भ—संक्षिप्त, किन्तु एक चोटदार वाक्य-द्वारा आकस्मिक शुरूआत।

(२) झगड़ा—हीरे और कोयले की अपनी अपनी बढाई तथा अपने अव-गुणों को ढाँकना।

(३) समझौता—दोनों का पारस्परिक गुणों का समझना।

(४) अन्त—मेल।

वाद-विवाद के विषय भड़कीले हों, जिसके द्वारा विद्यार्थीगण आरम्भ में ही आकृष्ट हो जायँ। रचना की पहले मौखिक चर्चा की जाय, अर्थात्, उपयुक्त पात्र, विचारों को सजाना, संवाद के उपयुक्त शब्दावली तथा मुहावरों का उपयोग। मौखिक चर्चा के बाद, विद्यार्थीगण संवाद को लिखे। कुछ विषय: 'नमक और शक्कर', 'सावित्री-यमराज' 'राम और परशुराम', 'असी और मसी', इत्यादि।

६. उपसंहार.—मुक्त रचना साधारण बातचीत के द्वारा अवश्य शुरू होती है, पर पचम, षष्ठ तथा सप्तम वर्ष का कार्य साधारण गद्य-रचना से कठिनतर है। यथार्थ मे सवाद, नाटिका तथा वादानुवाद-रचना साधारण गद्य-रचना का द्वितीय सोपान है। इनका विषय नया न हो; और लिखने के पहले सम्पूर्ण रचना की रूप-रेखा की मौखिक चर्चा अत्यन्त आवश्यक है। यदि अधिक न हो सके, तो प्रति वर्ष एक-दो ऐसी रचनाएँ कराई जा सकती है। इन रचनाओं-द्वारा लेखन-कार्य मे एक नवीनता आ जाती है, तथा विद्यार्थियों को विशेष आनन्द मिलता है। इनका अभिनय करने से बालकों की कलात्मक तथा सृजनात्मक शक्ति की वृद्धि होती है।

४. कथा-कहानी

१. प्रारम्भ.—लेखन-कार्य मे कथा-कहानी-रचना का कुछ कम महत्व नहीं है। प्रत्येक कक्षा में इसका भिन्न-भिन्न प्रकार से उपयोग करना चाहिए। इसकी विस्तृत चर्चा नीचे की गई है।

२. चतुर्थ वर्ष.—इस वर्ष विद्यार्थीगण किसी पढी या सुनी हुई कहानी का पुन-रुत्पादन कर सकते है। पढी हुई कहानी लिखने के लिए, मिडिल स्कूल की पद्धति अपनायी जा सकती है।* इसके अतिरिक्त, शिक्षक किसी कहानी को विद्यार्थियो को मौखिक सुना सकते है। कहानी को विभिन्न भागों मे बॉट लेना चाहिए। शिक्षक प्रत्येक भाग को मौखिक सुनावें, तथा उस भाग के चावी-शब्द विद्यार्थियो को उद्बोधित करे। फिर, श्याम-पट पर उन चावी-शब्दो और विशेष शब्दो को लिखे। इनकी सहायता से, शिक्षक एक भाग की घटना का वर्णन विद्यार्थियों से मुखाग्र कहलवावें।

इसी प्रकार, प्रत्येक भाग समाप्त किया जावे। अब पूरी कहानी कई बालकों से कहलाई जावे। इस मौखिक अभ्यास के बाद, पूरी-की-पूरी कहानी लिखने के लिए दे दी जावे।

३. पचम वर्ष.—इस अभ्यास के बाद, विद्यार्थियो को स्वतः चावी शब्द तथा विशेष शब्द निकालना तथा उनकी सहायता से पूरी कहानी पुनरुत्पादन कराना सिखाना चाहिए। इस अभ्यास के लिए ऐसी पाठ्य-पुस्तक-रचना की आवश्यकता होती है, जिसमे कुछ कहानी तथा प्रत्येक कहानी के नीचे कुछ अभ्यास-प्रश्न दिये हो।

विद्यार्थीगण कहानी को पढे, तथा दिये हुए प्रश्नो की सहायता से चावी-शब्द निकालें। अपनी रचना की कापी मे, वे इन शब्दों को लिखे। इसके पश्चात् वे अपनी

---

* देखिए पृष्ठ १६५।

सिलसिले से जमाना चाहिए कि प्रत्येक चित्र-द्वारा एक अनुच्छेद लिखा जा सके। जब कोई पाठ एक ही चित्र के आधार पर पढाया जावे, तब उसका चित्र के अनुसार दो प्रकार से उपयोग किया जा सकता है: (१) चित्र के भिन्न भागो का वर्णन — प्रत्येक भाग ऐसे हो कि उनके द्वारा एक अनुच्छेद लिखा जा सके, और (२) वैसे चित्र जो भिन्न-भिन्न भागो मे न बॉटे जा सके।

आरम्भ मे, शिक्षक ऐसे चित्र ले जिनका विवरण एक ही अनुच्छेद मे लिखा जा सके। इससे विद्यार्थियो को अनुच्छेद-गठन का ज्ञान दिया जावे। इसके पश्चात् एक ही विषय की चर्चा कई चित्रो द्वारा की जावे। इससे अनुच्छेदो को क्रम से सजाकर एक लेख या कहानी लिखने का अभ्यास विद्यार्थियो को मिलता है।

२. एक ही विषय पर कई चित्र—शिक्षक को पहले यह निर्णय कर लेना चाहिए कि पाठ कितने भागों मे बॉटा जा सकता है। प्रत्येक भाग के लिए एक चित्र होना चाहिए।

शिक्षक पहले भाग का चित्र टॉगते हैं, और प्रश्नोत्तर-पद्धति-द्वारा चाबी-शब्द उद्बोधित करते हैं, तथा उन्हें श्याम-पट पर लिखते हैं। इसके साथ ही, विशेष शब्दो को भी श्याम-पट पर अङ्कित करना चाहिए। इनकी सहायता से, शिक्षक इस भाग की घटना विद्यार्थियो से मुखाग्र कहलावे।

इसी प्रकार, प्रत्येक भाग एक स्वतन्त्र चित्र द्वारा उद्बोधित किया जावे। तत्पश्चात् पूरा विवरण कई विद्यार्थियों द्वारा कहलाया जावे। इस मौखिक अभ्यास के अनन्तर, सम्पूर्ण विषय लिखाया जाय।

नीचे दो ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं: (१) एक पदार्थ (मोटर), और (२) एक कहानी।

१) मोटर
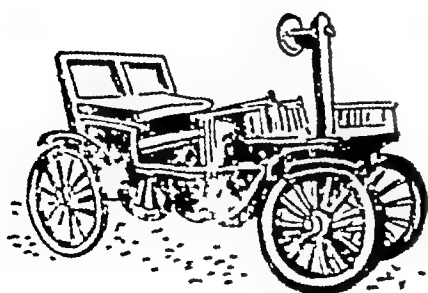
अ—शुरू शुरू की मोटर

१. मोटर कब शुरू हुई?
२. शुरू की मोटरो की सूरत कैसी थी?
३. इनके पहिये और चक्के किस चीज के बने होते थे?

आ—आधुनिक मोटर

१. मोटर चलाने के लिए क्या क्या उपयोग किया जाता
२. स्टियरिंग व्हील क्या है ?
३. ब्रेक क्या है ?
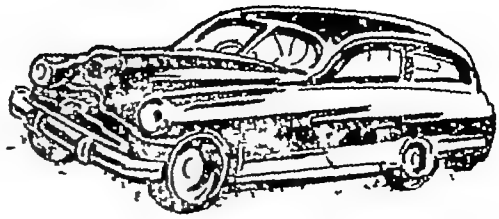
इ—बस और ट्रक

१ बस किस काम मे आती है ?
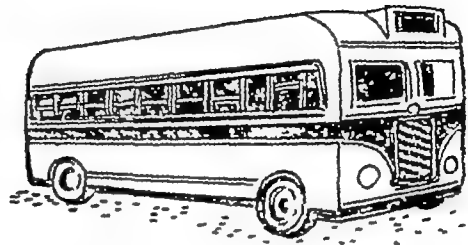
२ ट्रक का क्या उपयोग होता है ?
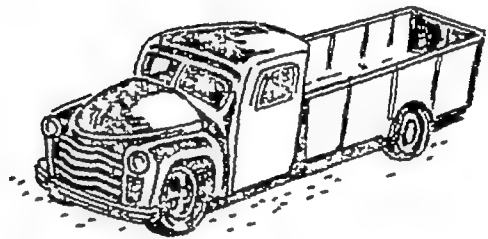
(२) एक कहानी (मूर्ख बन्दर)

अ—बन्दर (राजा का नौकर)

१. इस तसवीर में तुम क्या देख रहे हो ?
२. राजा क्या कर रहा है ?
३. बन्दर क्या कर रहा है ?

आ—सोता हुआ राजा

१. राजा क्या कर रहा है ?

२. बन्दर क्या भगा रहा है ?

३. राजा के पास क्या पडा है ?

इ—तलवार और बन्दर

१. बन्दर के हाथ मे क्या है ?

२. वह तलवार लेकर क्या सोच रहा है ?

ई—मरा हुआ राजा

१. राजा का सिर धड़ से अलग क्यो है ?

२. यह कैसे हुआ ?

३. इस कहानी का तुम क्या 'शीर्षक' दे सकते हो ?

३. एक ही विषय पर एक ऐसा चित्र, जिसके भिन्न-भिन्न भागों का वर्णन किया जा सके.—पिछले प्रकरण मे, एक ही विषय के लिए अनेक चित्रों का उपयोग किया गया है। यहॉ विभिन्न चित्रों के बदले एक ही चित्र के जुदे जुदे भागों का विद्यार्थियो द्वारा वर्णन कराना है।

शिक्षक पहले सोच ले कि चित्र के विविध भाग क्या हो सकते है। इन भागों की चर्चा के समय एक क्रम रहे; अर्थात् विभिन्न भागो की चर्चा ऊट पटॉग न हो। उनमे एक सिलसिला हो।

पिछले और इस प्रकरण की शिक्षा-विधि में कोई सी भेद नहीं है। पिछले प्रकरण के अनुसार शिक्षक पृथक् पृथक् चित्रों के बदले एक ही चित्र के विभिन्न भागों की विवेचना करें। नीचे एक ऐसे ही चित्र की चर्चा की जाती है :

नदी का घाट
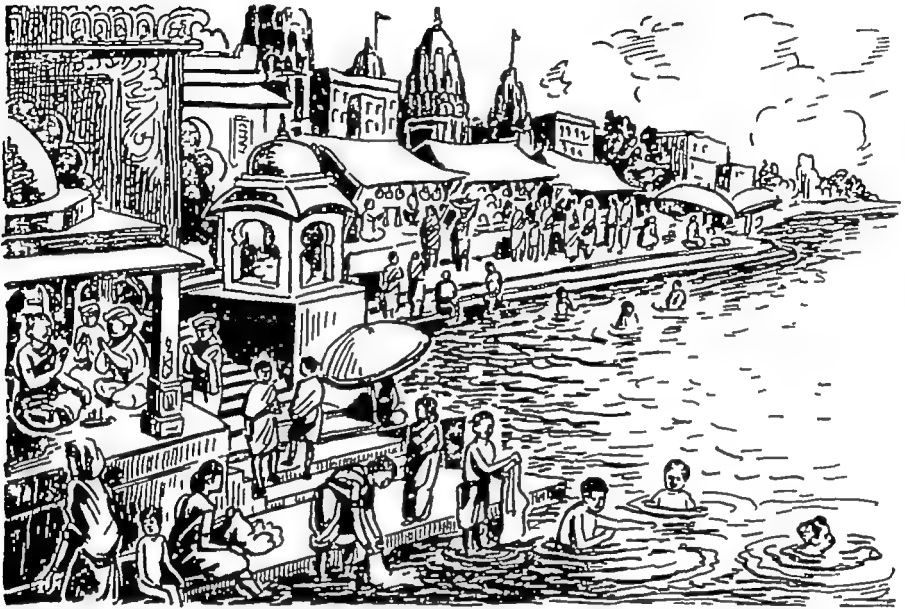
अ. नदी के भीतर का दृश्य

१. नदी के भीतर कितने आदमी हैं ?

२. वे क्या कर रहे हैं ?

आ. पण्डाजी

१. पण्डाजी कहाँ बैठे हैं ?

२. उनके सामने कितने आदमी है।

३. वे क्या कर रहे हैं ?

इ. दूकानें

१. कितनी दूकानें हैं ?

२. दूकानों में क्या बिक रहा है ?

६. मन्दिर

१. चित्र में कितने मन्दिर हैं ?

२. मन्दिर के सामने तुम कैसी भीड़ देखते हो ?

४. एक ही विषय पर एक ऐसा चित्र, जो विभिन्न भागों में बाँटा न जा सके.—ऐसे चित्रों के वर्णन के द्वारा पाठ की पूरी सामग्री नहीं मिलती। बाहरी ज्ञान के द्वारा इस कमी को पूरा करना पड़ता है विद्यार्थियों से प्रश्न पूछ कर या, स्वतः बताकर शिक्षक कमी को दूर करते हैं।

शिक्षक को पहले निश्चित कर लेना चाहिए कि पाठ कितने भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रत्येक भाग की चर्चा चित्र के आधार पर की जावे। चित्र की कमी बाहरी ज्ञान द्वारा पूरी की जावे। चावी शब्द या विशेष शब्द श्याम पट पर लिखे जावे, तथा उस भाग का सार विद्यार्थियों द्वारा मुखाग्र कहलाया जाय।

प्रत्येक भाग की चर्चा के पश्चात्, पूरे पाठ का सार विद्यार्थियों द्वारा कहलाया जावे। नीचे एक ऐसे ही चित्र की चर्चा की गई है।

कुतुबमीनार

अ—प्रारम्भ

१. इस चित्र में तुम क्या देखते हो ?

२. इस मीनार का नाम क्या तुम बता सकते हो ?

३. यह मीनार कहाँ बनी है ?

४. यह कितनी पुरानी है ?

आ—आकार

१. इसकी ऊँचाई कितनी है ?

२. नीचे का घेरा कितना है ?

३. ऊपर और नीचे के घेरे की तुलना करो।

४. इसकी कितनी छतें हैं ?

इ—बनाने का कारण

१. इसके बनवाने के विषय में क्या मत-भेद है ?

२. यह इमारत क्यों प्रसिद्ध है ?

३. इसे देखकर तुम क्या सोचते हो ?
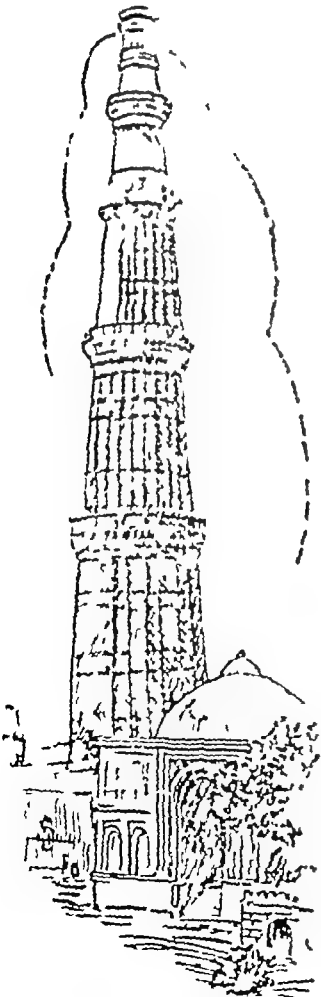
५. **उपसंहार**—इस प्रकार रचना शिक्षा में चित्र वर्णन का अत्यन्त महत्व-पूर्ण स्थान है। वार्त्तालाप, निबन्ध और कथा-कहानी की रचना के लिए चित्र अत्युपयोगी सिद्ध होते हैं। पर चित्रों का अधिक उपयोग विद्यार्थियों के लिए हितकर नहीं होता। शिक्षण-शास्त्र का मुख्य उद्देश्य है, विद्यार्थियों को मूर्त से अमूर्त की ओर ले जाना।

यह ठीक ही है विद्यार्थीगण सदैव साकार-रूप में न सोचें। चित्र-वर्णन तो रचना-शिक्षा का प्रथम सोपान है। इसके द्वारा विद्यार्थियों को वाक्य-गठन, अनुच्छेद-रचना तथा अनुच्छेदों को जोड़कर निबन्ध-रचना सिखाई जाती है। इस ज्ञान के मिलते ही, शिक्षकों को, चित्र-वर्णन का उपयोग न करना चाहिए, पर विद्यार्थियों की कल्पना-शक्ति जागृत करने के लिए उच्च कक्षाओं में भी चित्र वर्णन अपनाया जा सका है। शिक्षकगण विद्यार्थियों के सामने एक चित्र रख सकते है, तथा विद्यार्थियों को उसका वर्णन लिखने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं।

चित्र-वर्णन की नाईं, वस्तु-वर्णन का भी उपयोग कक्षा में किया जा सकता है। शिक्षकगण किसी वस्तु को विद्यार्थियों के सामने रख सकते हैं, और उसके विभिन्न भागों का वर्णन विद्यार्थियों से उद्‌बोधित करा सकते हैं। उदाहरणार्थ, साईकल का विषय लीजिए। शिक्षक कक्षा में एक साईकल ला सकता है, और प्रश्नोत्तर-पद्धति-द्वारा पूरा विषय पढ़ा सकता है। पर इसका अर्थ यह न लिया जाय कि कक्षा में एक गधा या तोता लाया जाय।

इसी प्रकार किसी क्रिया का विवरण कक्षा में प्रत्यक्ष रूप से दर्शाया जा सकता है, जैसे, जिल्द-साजी, पतंग बनाना, या विज्ञान का कोई प्रयोग। इसका भी विवरण, विद्यार्थियों से उद्‌बोधित कराया जा सकता है।

६. पत्र-लेखन

१. **आरम्भ**—कथा-कहानी-लेखन तथा चित्र वर्णन-द्वारा जब विद्यार्थियों को वाक्य रचना तथा अनुच्छेदन-गठन का साधारण ज्ञान हो जाय, तब पत्र-लेखन आरम्भ करना चाहिए। इस लेखन-द्वारा किसी विषय का आरम्भ और अन्त करना तथा रचना में अनुच्छेद का स्थान निश्चित करना, विद्यार्थियों की समझ में ठीक ठीक आ जाता है। पत्र लेखन के पश्चात् निबन्ध रचना प्रारम्भ की जावे। यथार्थ में पत्र लेखन की शिक्षा कहानी-लेखन, चित्र वर्णन और निबन्ध-रचना को जोड़ती है।

२ **पत्र-लेखन कैसे आरम्भ किया जाय?**—पहली चिट्ठी बहुत ही छोटी हो। इसका विषय स्पष्ट तथा कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए बोध-गम्य हो। उदाहरणार्थ, पत्र का विषय हो : "पाठशाला में आज का दिन"। यह पत्र माता को लिखा जावे। विद्यार्थियों से पूछा जावे कि वे अपनी माता को क्या लिखना चाहते हैं?

विषय विविध अनुच्छेदों में विभक्त कर दिया जावे। इनके शीर्षक श्याम-पट पर लिख दिये जावें। तत्पश्चात् इनका क्रम स्थिर किया जावे। इस प्रकार विद्यार्थियों को स्पष्ट हो जायगा कि कहानी-रचना या चित्र-वर्णन के अनुसार ही, अनुच्छेदों को क्रम-पूर्वक—सिलसिलेवार—जमाने की आवश्यकता सर्वदा ही होती है।

इसके बाद पत्र-लेखन के आवश्यक अंग समझा दिये जावें। वर्तमान शैली के अनुसार, पत्र के मुख्य सात अंग हैं: (१) शीर्षक (प्रेषक का पता), (२) सम्बोधन, (३) अभिवादन, (४) मुख्य अङ्ग, (५) पत्र की समाप्ति पर शिष्टाचार के शब्द, (६) प्रेषक के हस्ताक्षर और (७) पत्र पर पानेवाले का पता।

पत्र के इन अंगों का परिचय, गद्य या रचना पाठ्य-पुस्तक में लिखे हुए किसी पत्र-द्वारा दिया जा सकता है। तीन-चार चिट्ठियों के लिखने के विशेष अभ्यास के पश्चात् विद्यार्थीगण स्वतः पत्र लिख सकते हैं।

३. पत्र लेखन में क्रम.—पत्र दो प्रकार के होते हैं: घरेलू और कामकाजी। पत्र-लेखन घरेलू पत्रों से आरम्भ किया जाय; और कुछ अभ्यास के बाद काम-काजी पत्र लिखना भी शुरू किया जा सकता है। पर, सप्तम वर्ष तक दोनों ही प्रकार के पत्र लिखे जायँ। नीचे पत्र-लेखन की क्रमिक विषय-योजना दी गई है:

चतुर्थ वर्ष.—(१) साधारण या घरेलू पत्र—पिता, माता या बड़े भाई को।
(२) कामकाजी पत्र—आवेदन पत्र (शिक्षक या हेडमास्टर को, छुट्टी के लिए, या शाला में भरती होने के लिए)।

पंचम वर्ष.—(१) घरेलू पत्र...कक्षा के निबन्ध से संबंध रखते हुए: जैसे, "एक यात्रा", या "किसी स्थान का वर्णन"।
(२) कामकाजी पत्र—(व्यक्तिगत सबंधी): प्रीति-भोज का निमंत्रण।

षष्ठ वर्ष.—(१) घरेलू पत्र (विशेष अवसर पर): अभिनन्दन तथा समवेदना-पत्र।
(२) कामकाजी पत्र: व्यापारिक (पुस्तक-विक्रेता, कोई फर्म), विशेष अवसर वाले (विवाह का निमंत्रण, सूचना, विज्ञापन), आदि।

सप्तम वर्ष.—(१) घरेलू पत्र (कक्षा के निबन्ध से संबंध रखते हुए)।
(२) काम-काजी — शिकायती पत्र, प्रार्थना या आवेदन-पत्र (नौकरी, परीक्षा में नम्बर आदि के लिए), मान-पत्र।

४. **उपसंहार.**—पत्र-लेखन के विषय विद्यार्थियो की रुचि और आवश्यकता के अनुसार होवे, उदाहरणार्थ, चतुर्थ वर्षवाले विद्यार्थियों को नौकरी के लिए आवेदन-पत्र लिखना सिखाना उचित नहीं है। इस प्रकार के पत्रों की आवश्यकता शालान्त परीक्षा के समय रहती है, जब कि विद्यार्थियों को प्रायः नौकरी के लिए आवेदन करना पडता है। पर चतुर्थ वर्ष के विद्यार्थियों को छुट्टी के लिए आवेदन-पत्र लिखने का ज्ञान आवश्यक है।

पत्र-लेखन का घना सम्बन्ध कक्षा के निबन्ध के विषयों से है। अनेक वर्णनात्मक तथा कथात्मक निबन्ध पत्र-द्वारा लिखे जा सकते हैं, जैसे : किसी सभा, खेल, शहर, यात्रा, आदि का वर्णन। इन पत्रों-द्वारा निबन्ध और पत्र-लेखन — दोनों — का अभ्यास होता है।

७. निबन्ध-लेखन

निबन्ध-लेखन मे पॉच बातों की ओर ध्यान रखना पडता है. (१) विषय, (२) शीर्षक, (३) सामग्री, (४) निबन्ध का गठन और (५) भाषा तथा शैली।

१. **विषय**—कथा-कहानी तथा चित्र-वर्णन के पश्चात्, निबन्ध-रचना आरम्भ करना चाहिए। निबन्ध का विषय ऐसा हो, जो विद्यार्थियों की मानसिक शक्ति के अनुकूल हो। विषयों की शैली पर ध्यान रखते हुए, निबध के तीन भेद हैं : (१) वर्णनात्मक — किसी देखे हुए स्थान, दृश्य, भवन, प्राणी, आदि का वर्णन, (२) कथनात्मक — घटना आदि का वर्णन, जैसे : जीवन चरित्र, ऐतिहासिक घटना, त्यौहार, आत्म-कहानी, इत्यादि, और (२) विचारात्मक—किसी अमूर्त विषय पर विचार, जैसे· ग्राम्यजीवन, चल-चित्र के गुण-दोष, सदाचार, इत्यादि।

प्रारम्भ मे निबन्ध-लेखन उन विषयों से चालू करना चाहिए, जो विद्यार्थियों के वातावरण से सम्बन्ध रखते हों, तथा उनकी जानकारी पूर्णतया बालक रखते हों। धीरे धीरे विद्यार्थी सरल से जटिल की ओर ले जाये जावें। इस कारण, चतुर्थ और पचम वर्ष वर्णनात्मक, पञ्चम और षष्ठ वर्ष कथनात्मक, और सप्तम वर्ष विचारात्मक लेख उपयोगी सिद्ध होते हैं।

निबन्ध के विषयों का सम्बन्ध गद्य पाठ्य-पुस्तक के पाठों, तथा मातृ-भाषा, भूगोल, इतिहास, इत्यादि अन्य पाठय-विषयों के साथ हो सकता है। विविध प्रकार के विषय होने से विद्यार्थियों को अपनी अपनी रुचि के अनुकूल कुशलता दिखाने का अवसर प्राप्त होता है।

२. शीर्षक.—निबन्ध का शीर्षक ऐसा हो, जो पूरे विषय को स्पष्ट कर सके। शिक्षकों को ऐसा शीर्षक न चुनना चाहिए, जो अस्पष्ट हो, तथा जिसके विविध अर्थ निकलें। विद्यार्थियों को यह स्पष्ट हो जावे कि निबन्ध का विषय कौन-सा है।

३. सामग्री.—निबन्ध एकाएक नहीं लिखा जा सकता है। निबन्ध का विषय लगभग एक सप्ताह पहले बता दिया जाय। इसके साथ ही, विद्यार्थियों को उपयोगी निर्देश अवश्य दे दिये जावें। विद्यार्थीगण निबन्ध की सामग्री इकट्ठी करें, तथा क्रम से उसका ढाँचा एक काग़ज पर लिख लें।

४. निबन्ध का गठन.—'निबन्ध' शब्द का अर्थ है "बँधा हुआ; अतः सुबद्ध लेख"। निबन्ध में जो विचार प्रकट किये जावें, वे सूत्र-बद्ध हों। उनमें एक स्वाभाविक शृंखला हो। निबन्ध तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं: (१) आरम्भ (प्रस्तावना), (२) मध्य और (३) अन्त (उपसंहार)।

निबन्ध-शिक्षा के घण्टे में शिक्षक विद्यार्थियों की एकत्रित सामग्री को तीन भागों में बाँटें। प्रश्नोत्तर-पद्धति द्वारा वे विद्यार्थियों से निबन्ध की रूप-रेखा उद्बोधित करें। रूप-रेखा में विचारों का क्रम बँधा हुआ हो। कोई भी बात लटकती हुई न छोड़ी जावे। श्याम-पट पर विशेष शब्द भी लिखे जावें।

रूप-रेखा लिखना समाप्त होने पर, क्रम-पूर्वक कई विद्यार्थियों द्वारा सम्पूर्ण लेख मुखाग्र कहलाया जाय। इसके बाद, विद्यार्थियों को वही लेख या कोई मिलता-जुलता लेख लिखने दिया जाय।

विद्यार्थियों को निबन्ध-गठन अच्छी तरह समझा देना उचित है। प्रारम्भ बहुत ही रोचक तथा आकर्षक हो। लेख सम्बन्धी एकत्र किये हुए विचारों को आवश्यकतानुसार अलग-अलग अनुच्छेदों में, विषय-क्रम से बाँट दिया जावे। प्रत्येक अनुच्छेद में एक ही प्रकार की बातें होवें। अनुच्छेदों में क्रम तथा विचारों में सिलसिला रहे।

लेख की समाप्ति अच्छे ढंग से करनी चाहिए। यदि और कुछ न हो सके, तो अन्त में विषय के साराश को प्रभावशाली शब्दों में लिखना आवश्यक है।

निबन्ध के विविध अंगों में अनुपात का होना आवश्यक है। यदि उनमें अनुपात न होगा, तो निबन्ध में दोष आ जायगा। आरम्भ और अन्त की लम्बाई पूरे निबन्ध की लम्बाई के एक-तृतीय भाग से अधिक न हो।

जब लेख आरम्भ करना कठिन जान पड़े, तब विद्यार्थीगण कुछ पंक्तियाँ छोड़कर लेख को मध्य से लिखना शुरू करें। लिखते-लिखते प्रस्तावना के अनुकूल शब्द ध्यान में

आ जाते हैं। प्रस्तावना के शब्द तो सतसई के दोहों की भाँति "नावक के तीर" होना चाहिए।

५. भाषा और शैली.—निबन्ध के विषय के अनुसार ही भाषा का प्रयोग उचित होता है। जहाँ तक हो सके, सरल से सरल और सुबोध भाषा का ही उपयोग किया जावे। लेख लिखते समय नीचे लिखी बातो पर ध्यान रखना आवश्यक है :

(१) भाषा—सीधी-सादी, सुबोध एव सरल हो और विषय के अनुकूल हो।

(२) शब्द—सहज, मधुर और बोलचाल के शब्दों का ही प्रयोग हो।

(३) अक्षर—स्वच्छ और सुन्दर हों।

(४) विराम-चिह्न—विराम के चिन्हों का उचित प्रयोग हो।

(५) आकार—लेख आवश्यकता से अधिक लम्बा या छोटा न हो। परन्तु कोई बात छूटने भी न पावे। लम्बी-चौडी भूमिका बाँधना उपयुक्त नहीं है।

(६) अप्रासगिक विषय—विषय को छोड़कर अनावश्यक एव व्यर्थ की बाते न लिखी जावें। एक ही बात को घुमा-फिरा कर, बार-बार नहीं लिखना चाहिए।

(७) खण्डन—एक बात लिख कर फिर उसके विरुद्ध दूसरी बात उसी लेख मे नहीं लिखना चाहिए।

(८) क्रम—लेख के जितने भाव हों, वे एक उचित क्रम से लिखे जावें, जिससे लेख में विचारों का एक सुन्दर विकास हो जाय।

(९) अनुच्छेद—एक अनुच्छेद मे एक ही भाव हो। यदि भाव बड़ा हो तो उसे क्रमशः अधिक अनुच्छेदों मे भी लिख सकते हैं। अनुच्छेद का आरम्भ ऐसे वाक्यों से हो, जो उसका सार रूप हो, और जिससे अनुच्छेद का अर्थ स्पष्ट प्रकट हो जावे।*

प. रामचन्द्र शुक्ल का कथन उचित ही है, कि "शैली कोई हो, वाक्य-रचना की व्यवस्था, भाषा की शुद्धता, और प्रयोगों की समीचीनता आवश्यक है।" समय-समय पर शिक्षकों को चाहिए कि गद्य-पाठ्य-पुस्तक के कुछ आदर्श निबन्धों-द्वारा निबन्ध रचना समझा देवें। कुछ चुनी हुई पक्तियों को कठस्थ करना बहुधा लाभ-प्रद होता है। निबन्ध लिखते समय या व्याख्यान देते समय, ये पक्तियाँ उपयोगी सिद्ध होती हैं। यह भी आवश्यक नही है कि सदा कक्षा मे निबन्धों के ढाँचे खींचे जावें। सातवीं और अन्य उच्च

* राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति, वर्धा **सरल रचना और पत्र लेखन**, १९४०, पृष्ठ ४-५।

कक्षाओं मे विद्यार्थियों को अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी विषय पर निबन्ध लिखने को दिया जाय। इससे उनकी कल्पना-शक्ति जाग उठती है, तथा वे स्वावलम्वी हो जाते हैं। शायद उनकी रचना मे ठीक व्यवस्था न हो; पर अव्यवस्थित निबन्धों का भी रचना मे विशेष स्थान है। प्रसिद्ध विद्वान् डॉक्टर जानसान का कथन है :

> Essay is the loose sally of the mind, an irregular indigested piece, not a regular and orderly composition

८ अनुवाद

१. **अनुवाद का महत्व.**—किसी भी भाषा मे व्यक्त भावों और विचारों को दूसरी भाषा मे व्यञ्जित करने की क्रिया को 'अनुवाद' या 'भाषान्तर' कहते हैं। अनुवाद के तीन उद्देश्य होते हैं :

(१) **अनुवाद-द्वारा किसी भाषा की उन्नति करना.**—हिन्दी साहित्य मे अनुवाद-ग्रन्थों की विपुलता की चर्चा करते हुए श्री पदुमलाल बख्शी ने कहा है —"अनुवाद ग्रन्थो से सब से बडा लाभ यह है कि अल्प प्रयास से उच्च श्रेणी का साहित्य निर्मित हो जाता है, भाषा अधिक परिष्कृत हो जाती है, और उसमे अधिक ग्राहिका शक्ति आ जाती है।"*

(२) **मातृ-भाषा की तुलना.**—एक नई भाषा सिखाते समय शिक्षकों को सदैव चेष्टा करना चाहिए कि विद्यार्थियों के लिखने या बोलने मे मातृ-भाषा का प्रभाव न आ जाय। परन्तु चूँकि मातृ-भाषा का सम्बन्ध विद्यार्थियों के सम्पूर्ण जीवन से रहता है, अतएव हम उसके प्रभाव को नही रोक सकते हैं। अनुवाद-द्वारा मातृ-भाषा और नई भाषा की तुलना हो जाती है। इस तुलना के द्वारा कभी-कभी नई भाषा के शब्दों, मुहावरो तथा शैलियों का बोध सहज में ही दिया जा सकता है। इस प्रकार भाषा-शिक्षण का कठिन कार्य सरल हो जाता है।

(३) **विचार-विनिमय तथा अन्य साहित्यों का परिचय.**—अनुवाद-द्वारा विचारविनिमय सुगम हो जाता है, तथा अन्य भाषा-भाषियों के नैतिक, आर्थिक एव सामाजिक जीवन का वास्तविक परिचय हो जाता है। अनुवाद के द्वारा उनके विचारों, भावों, प्रवृत्तियों आदि को समझना आसान हो जाता है। इस दृष्टि से भारत के लिए अनुवादों की महत्ता और भी अधिक बढ़ जाती है।

---

* श्री. पदुमलाल बख्शी : **हिन्दी गद्य का प्रारम्भिक परिचय**, बंबई, हिंदी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय; १९४९ पृष्ठ १४-१५।

आज भारत में चौदह क्षेत्रीय भाषाओ की विद्यमानता है। वास्तविकता यह है कि इन चौदह भाषाओं के बोलने वाले भारतीय अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त अन्य तेरह भारतीय भाषाओ के साहित्य से बहुत कम परिचित हैं, जब कि निकट-तम परिचय की आवश्यकता अनुभव की जाती है। इस समस्या को हल करने का सर्वोत्तम साधन भारत की सभी भाषाओ के श्रेष्ठ साहित्य का परस्पर अन्यान्य भाषाओं मे अनुवाद किया जाना है।

२ राष्ट्र-भाषा शिक्षा मे अनुवाद का स्थान.—जैसे जैसे विद्यार्थी राष्ट्र-भाषा सीखता है, वैसे वैसे उसे अनुवाद की आवश्यकता पडती है। यह आवश्यकता तीन प्रकार की होती है . (१) शब्दों और मुहावरों का अनुवाद, (२) वाक्यो का अनुवाद और (३) किसी लेखाश का अनुवाद।

(१) शब्दों और मुहावरों का अनुवाद.—परोक्ष विधि के अनुसार एक नई भाषा भाषान्तर-द्वारा पढाई जाती है। प्रत्यक्ष विधि के समर्थक मातृ-भाषा के उपयोग का विरोध करते हैं। इस पुस्तक के दूसरे भाग मे, यह बतलाया गया है कि मिडिल स्कूल मे नये शब्द या मुहावरे प्रत्यक्ष विधि से समझाये जावे, और अन्त मे, मातृ-भाषा मे उनके समानार्थी शब्द दिये जावे।* इसके अतिरिक्त उन शब्दो और मुहावरो के शब्दार्थ मातृ-भाषा मे देने से कोई भी हानि नहीं है, जो प्रत्यक्ष विधि के द्वारा समझाये न जा सकते हों।

हाई स्कूल के विद्यार्थियों का राष्ट्र-भाषीय शब्द-भडार पर्याप्त बढ जाता है। ऐसे समय हिन्दी शब्दों के पर्यायवाची या विलोम (विरुद्धार्थी) शब्द देना कठिन और अनुपयुक्त नहीं है। इसीलिए मातृ-भाषा का उपयोग ऐसे समय मे वाञ्छनीय नहीं है। परन्तु जिन हिन्दी शब्दों को हिन्दी मे ही समझाना कठिन हो, उनके लिए मातृ भाषा के शब्दार्थ निस्सकोच देना चाहिए।

(२) वाक्यों का अनुवाद.—वाक्यो के अनुवाद, दो कारणों से आवश्यक हैं : (अ) वाक्य रचना का परिचय और (आ) मुहावरों का ज्ञान।

वाक्य-रचना समझाते समय अनुवाद की आवश्यकता पडती है जैसे, लिंग, वचन और काल के अनुसार वाक्यों मे रूपान्तर, अर्थ या व्याकरण के अनुसार वाक्य, इत्यादि। इसी प्रकार, भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय भाषाओं मे अनेक समा-नार्थी मुहावरे बता देने से उनका अर्थ स्पष्ट हो जाता।

इस प्रकार राष्ट्रभाषा-अध्ययन के समय, शब्दों, मुहावरो तथा वाक्यो के अनुवाद की आवश्यकता पडती है। पर शब्दों का अनुवाद हाई-स्कूलों मे न किया जावे। इसके

* देखिए पृष्ठ ७०।

साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि तुलनात्मक पद्धति-द्वारा-कठिनाइयों को हल करने के लिए ही अनुवाद की आवश्यकता है। ज्यों ही विद्यार्थीगण इनका अर्थ समझ जायँ, त्यों ही मातृ-भाषा का उपयोग बन्द कर दिया जावे। इसके बाद इन हिन्दी शब्दों, मुहावरों और वाक्य-गठनों का अभ्यास कराया जाय। यह तो निर्विवाद है कि अभ्यास के बिना कोई नयी भाषा नहीं सीखी जा सकती है, जैसा कि वायट साहब कहते हैं :

> The mere repetition of the correct form is sometimes not of itself strong enough to implant new habits of speech, the rigour of translation is needed to make the learner aware of a difference he is apt to be oblivious of *Contrast for the sake of illumination After illumination practice* *

बहुत से विद्यालयों में अनुवाद-पुस्तकों के सहारे शब्दों, मुहावरों तथा वाक्य-गठनों का अभ्यास दिया जाता है— यह सरासर भूल है। गद्य तथा व्याकरण के पाठों में यदि तुलनात्मक पद्धति अपनाई जाय, तो इस प्रकार की अनुवाद-पुस्तकों की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। पर इसके लिए दो बातें आवश्यक हैं: (१) मिडिल स्कूल के लिए व्याकरण के क्रम से लिखी हुई वाचन पाठ्य-पुस्तकें हों, और (२) हाईस्कूल के लिए व्याकरण की ऐसी पाठ्य-पुस्तकें हों, जिनमें मातृ-भाषा और हिन्दी के व्याकरण की परस्पर तुलना की गई हो।

३. **लेखांगों का अनुवाद**.—शब्द, मुहावरे तथा वाक्य-गठन का अभ्यास नवीन भाषा की गढ़न्त जानने के लिए आवश्यक है, और अनुवाद-प्रथा इस कार्य में सहायता देती है। पर रचना-शैली के विकास के लिए, लेखांग के अनुवाद की आवश्यकता रहती है।

इस विषय में तीन बातें द्रष्टव्य हैं। प्रथमतः, लेखांश का अनुवाद किया जाना तभी सम्भव है, जब कि विद्यार्थियों को राष्ट्र-भाषा का इतना ज्ञान होवे कि वे शुद्ध हिन्दी में बोल या लिख सकें। इस कारण हाई स्कूल में ही यह अनुवाद प्रारम्भ करना चाहिए। द्वितीयतः, अनुवाद उस भाषा में करना उचित है, जिसका विद्यार्थियों को अधिकांश ज्ञान हो। इस कारण, आरम्भ में हिन्दी से मातृ-भाषा में रूपान्तर कराया जाय। इस अभ्यास के बाद मातृ-भाषा से राष्ट्र-भाषा में अनुवाद कराना चाहिए। इस तरह चतुर्थ और पञ्चम वर्ष में राष्ट्र-भाषा से मातृ-भाषा में, तथा षष्ठ और सप्तम वर्ष में मातृ-भाषा से राष्ट्र-भाषा में भाषान्तर कराना उचित है।

---

* Thompson and Wyatt op cit p 149

तृतीयतः, अनुवाद करते समय शब्दशः अनुवाद नहीं करना चाहिए, अर्थात् एक भाषा के शब्दों के बदले उनके स्थान पर दूसरी भाषा के समानार्थी शब्द नहीं रखते जाना चाहिए। यह शब्दशः अनुवाद की शैली सर्वथा निन्दनीय और अग्राह्य है। प्रत्येक भाषा की एक प्रकृति होती है। साथ ही, प्रत्येक शब्द की आत्मा होती है। जब हम एक भाषा के किसी एक शब्द का अनुवाद किसी दूसरी भाषा में करते हैं, तब हम उसके अर्थ के जितने समीप पहुँच सकते हैं, उतने समीप पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। वास्तव में उसकी आत्मा तक तो पहुँचा ही नहीं जा सकता।

इस तरह शब्दशः अनुवाद-प्रणाली उपादेयता-शून्य है। इसके साथ ही यह स्मरणीय है कि भाषा की इकाई 'वाक्य' है, न कि 'शब्द'। इस कारण, अनुवाद में वाक्यो की ओर ध्यान देना उचित है। इतना होते हुए भी प्रत्येक भाषा के पदों तथा वाक्यों की रचना निराली ही रहती है। अनुवाद के समय जिस भाषा मे भाषान्तर किया जाय, उसके वाक्यों के गढन्त की ओर लक्ष्य देना चाहिए। इस प्रकार, एक भाषा के ढाँचे को छोड़कर दूसरी भाषा के ढाँचे मे भावों को ढर्शा देने से, अनुवाद में तेज और स्पष्टता आ जाती है। पर ढाँचा बदलने के कारण, लेखक के कहे हुए भावों को न बदलने देने की पूर्ण सावधानी बरती जाती है। भाव-सरक्षणता के साथ अनुवादित भाषा मे सरलता, सुबोधता और स्वाभाविकता होना चाहिए। इस तरह लेखांश अनुवाद कराते समय, भाषा-सबधी तीन नियमों का पालन करना पड़ता है. (१) शैली की रक्षा, (२) भावों की रक्षा और (३) सरलता तथा सुबोधता। अनुवाद के विषय में श्री जवाहरलाल नेहरू का अनुभव मननीय है :

> कोश और शब्दो से भाषा नहीं बनती। वह बे-जान चीज है। भाषा उसमे जान डालती है। एक भाषा से दूसरी भाषा मे सही अनुवाद हो ही नहीं सकता।
> मेरी अँग्रेजी किताब का विभिन्न भाषाओं मे अनुवाद हुआ है। जब मुझे कोई व्यक्ति अनुवाद को पढकर सुनाता है, तब मुझे ऐसा लगता है कि मैंने तो ऐसा लिखा ही नहीं है। मेरी किताब का महादेव देसाई ने गुजराती मे कुछ ठीक अनुवाद किया है, क्योंकि उन्होंने मेरी विचार-धारा को समझ कर अनुवाद किया है, न कि केवल शब्दों तक पहुँच कर कलम चलाते गये।*

४. लेखांश-अनुवाद सिखाने की पद्धति.—अनुवाद के लिए निम्न-लिखित पद्धति अपनायी जाय :

(१) विद्यार्थियों द्वारा लेखांश का मौन वाचन—बाँचते समय लेखांश के भावार्थ समझने की चेष्टा करना, तथा कठिन शब्दो को रेखाङ्कित करना।

---

* आजकल, अक्टूबर, १९५४, पृष्ठ ४०।

(२) लेखांश का विद्यार्थियों द्वारा पुनर्वाचन, भावार्थ को प्रसंग से समझने का कोशिश करना, कठिन शब्दों का अर्थ अनुवादित भाषा के शब्द-कोश से खोजना ।

(३) मौखिक कार्य---शिक्षक विद्यार्थियों से प्रत्येक वाक्य का मौखिक अनुवाद कराता है---कठिन शब्दों का अनुवादित शब्द श्याम-पट पर लिखना, लम्बे-टेढ़े वाक्यों को तोड़ना, अनुवादित भाषा के ढाँचे की ओर तथा लेखक के विचारों की ओर ध्यान देना ।

(४) सम्पूर्ण लेखांश का कुछ विद्यार्थियों द्वारा मौखिक अनुवाद ।

(५) अभ्यास तथा गृह-कार्य---लेखांश का अनुवाद लिखना ।

५. उपसंहार.---भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य का हिन्दी मे अनुवाद हुआ है । विद्यार्थियों के सामने, उनकी मातृ-भाषा मे लिखी हुई मूल पुस्तक तथा उसकी हिन्दी मे अनुवादित प्रति रख देना चाहिए । दोनों की तुलना करने से उनके भाषा-ज्ञान की अभिवृद्धि होगी, तथा उनको दोनों भाषाओं की विशेषताओं के समझने का अवसर प्राप्त होगा ।

विद्यार्थियों से कभी कभी पुनर्वार अनुवाद कराना चाहिए । इसके अनुसार पहले विद्यार्थियों द्वारा, एक हिन्दी लेखांश का मातृभाषा मे अनुवाद कराया जाय । कुछ दिनो के पश्चात् उनके द्वारा अनुवादित अंश का फिर से हिन्दी मे भाषान्तर कराया जाय। अब इस पुनर्वार अनुवादित रचना की तुलना मूल पाठ से की जाय। इस तुलना के द्वारा, विद्यार्थीगण अपनी भूले स्वयमेव आसानी से समझ सकेगे । इस पद्धति का सबसे प्रथम गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने अनुमोदन किया था। अँग्रेजी-बँगला-शिक्षा-विधि की समालोचना करते हुए उन्होने कहा था :

> In schools, of course, the pupils are given practice in essay and letter-writing by way of composition, but it does not help them in teaching good form or style On the other hand, if we give them a passage from a good English author and ask them to translate it, the inherent difference between the two languages becomes quite evident from the beginning. Now when they translate it back into English, they naturally follow the Bengali form,

and at that time, if his English is corrected by carefully comparing it with the original passage, the peculiarities of the English style will be impressed on the minds of the pupils.*

९. भावार्थ (Paraphrase)

१. उद्देश्य.—किसी गद्य या पद्य की सुन्दर रचना का बिना घटाये-बढाये, साफ साफ, सरल एव सुबोध भाषा में व्यक्तीकरण 'भावार्थ' कहलाता है। भावार्थ का मुख्य उद्देश्य है, विद्यार्थी को अपनी भाषा में लेखक के भावों को प्रकट करने का अभ्यास देना। इसके द्वारा उनके शब्द-भडार की वृद्धि होती है, तथा उनकी रचना शैली स्पष्ट, जोरदार और सजीव हो जाती है। जैसा कि प्रसिद्ध अँग्रेज विद्वान् मेथ्यू एर्नाल्ड का कथन है :

> Paraphrase develops a special faculty, a distinctly literary faculty, for it sends one in search of the right phrase—the eternal quest of literature—and brings out the full implications and beauty of many a condensed remark

भावार्थ अनुवाद है। पर इस अनुवाद का अर्थ भाषान्तर नही है, वरन् लेखक के भावों की मूल भाषा से सरल शब्दों मे परिवर्तित करना है। भावार्थ करते समय तीन बातों की ओर ध्यान देना उचित है : (१) लेखक के विचारों को समझना, (२) विचारों को क्रम-पूर्वक जमाना, और (३) उन्हे सुबोध तथा स्पष्ट भाषा मे प्रकट करना।

२. भावार्थ के पाठ.—भावार्थ के लिए ऐसी कविताएँ या लेख न लिये जायँ, जो भाषा की सुन्दरतम रचनाएँ हों। उनका उद्देश्य है मानव-हृदय की रागात्मिका वृत्तियों का सशोधन, सस्कृती-करण और उनकी सद्‌वृत्तियों का उद्‌बोधन।

श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'चित्रकूट' या सुमित्रानन्दनपन्त के 'काले बादल' का भावार्थ करना सभव नहीं है। यदि भावार्थ किया जाय, तो हम देखेंगे कि भाषा के सुन्दर पुष्पों को कुचला गया है। भावार्थ के लिए ऐसे लेखाश न चुने जायँ, जिनमें स्वर्गीय भावनाएँ हों, या, जिनकी भाषा ऐसी हो जो बदली न जा सके। भावार्थ के

* As quoted in Thompson and Wyatt op. cit, p 151

लिए वे पाठ उपयोगी होते हैं, जिनके विचारों और भाषा का अन्य शब्दों मे सरलतापूर्वक प्रकट किया जाना संभव हो।

३. पद्धति*—भावार्थ निकालने के लिए निम्न-लिखित पद्धति का अनुसरण किया जाय :

(१) विद्यार्थियों-द्वारा लेखाश का मौन वाचन, बॉचते समय लेखाश के भावार्थ समझने की चेष्टा करना, तथा कठिन शब्दों को रेखाङ्कित करना।

(२) लेखाश का विद्यार्थियों द्वारा पुनर्वाचन, भाव को समझने की फिर से चेष्टा करना, कठिन शब्दों का अर्थ कोश से खोजना।

(३) मौखिक कार्य :

(अ) विद्यार्थीगण लेखक के भावों को क्रम से जमाते हैं।

(आ) भावों को अपनी भाषा मे व्यक्त करना :

(i) बड़े बड़े वाक्यों को छोटे-छोटे वाक्यों मे बदल देना; वाक्य-रूपान्तर करना।

(ii) कठिन शब्दों के बदले पर्यायवायी अनलंकृत अर्थ तथा विलोम शब्दों का उपयोग; शब्दों का शब्द-भेद बदल कर उनका अन्य रूप व्यवहार करना।

(iii) जहॉ कविता की पंक्तियॉ हो, उन्हें गद्य-रूप मे बदलना।

(इ) सम्पूर्ण लेखाश का दो-एक विद्यार्थियों-द्वारा भावार्थ कहलवाना।

(४) गृह-कार्य या अभ्यास—लेखाश का भावार्थ लिखना।

(५) याद रखो :

(अ) मूल को घटाया या बढाया न जाय।

(आ) मूल पाठ के कठिन शब्दो तथा मुहावरों का उपयोग न किया जाय।

(इ) भावार्थ की भाषा सरल तथा सक्रम हो।

१०. संक्षेपीकरण (Precis)

१. उद्देश्य.—बड़े-बडे पाठो या लेखो के समीचीन अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि पाठक उनके विषयो का विश्लेषण करे, विषय के विकास का क्रम ठीक समझ ले, और गौण बातो से अपनी दृष्टि हटाकर प्रधान बातो पर केन्द्रित करे। संक्षेप मे हम यह कह सकते हैं कि उसे इन पाठों या लेखों का सार ग्रहण करना है। इसके लिए उसे 'सार लेखन' या 'सक्षेपीकरण' कहते हैं।

---

*पहला परिशिष्ट (पाठ-सूत्र १०) देखिए।

अध्ययन के लिए संक्षेपीकरण बहुत ही महत्व-पूर्ण है। किसी पुस्तक या लेख के तात्पर्य को समझ कर उस पर स्वतन्त्र वाक्य-रचना कर थोड़े में व्यक्त करना कोई हँसी-खेल नहीं है। बड़ी बड़ी किताबें पढ़ना आसान है, पर मूल में से मुख्य बात खींचकर नियमित समय में उसे प्रकट करना टेढ़ी खीर है। इसके लिए आवश्यक है विशेष विचार शक्ति तथा भाषा पर अधिकार। मूल के प्रत्येक वाक्य को सावधानी से पढ़े बिना, सार नहीं लिखा जा सकता। इस प्रकार संक्षेपीकरण के अभ्यास से वैज्ञानिक अध्ययन का जन्म होता है।

२. भावार्थ और संक्षेपीकरण.—भावार्थ लिखते समय पाठ की प्रत्येक पंक्ति को अपनी भाषा में लिखना पड़ता है। मूल लेखांश का कोई अंग छोड़ा नहीं जा सकता है। पर संक्षेपीकरण के समय, हमें पानी मिले हुए दूध से दूध खींचने तथा पानी छोड़ने के समान प्रयत्न-पूर्ण कार्य करना पड़ता है।

इससे स्पष्ट है कि संक्षेपीकरण का मूल उद्देश्य है "अर्थ-विश्लेषण" और "गौण बातों से अपनी दृष्टि हटाकर प्रधान बातों पर केन्द्रित करना।" संक्षेपीकरण के लिए ऐसे पाठ चुने जावें, जिन्हें विद्यार्थीगण समझ सकें।

३. संक्षेपीकरण के गुण.—साधारण रूप से हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक उत्तम संक्षेपीकरण में ये गुण अपेक्षित हैं:

(१) विषय-विस्तार मूल के एक-तिहाई से अधिक न हो। यह बात सदैव आवश्यक भी नहीं है। कभी-कभी विस्तार एक तृतीयांश से कम भी हो सकता है, और कभी इससे कुछ अधिक भी होना सम्भव है।

(२) मूल लेख के केवल महत्वपूर्ण अंश ही संग्रहणीय हैं। गौण अंश छोड़ दिये जावें।

(३) मूल लेखक की विचार-धारा, उसके विषय-विकास आदि में कोई अन्तर न पड़े।

(४) जितने भी कम शब्दों का प्रयोग संभव हो, उतने ही शब्द प्रयुक्त हों।

(५) इतना होने पर भी संक्षेपीकरण प्रवाह-पूर्ण, प्रसाद-गुण-युक्त, सरल और स्वयं पूर्ण हो।*

४. पद्धति.—संक्षेपीकरण के लिए निम्न-लिखित पद्धति का अनुसरण किया जाय:

(१) विद्यार्थियों द्वारा पाठ का मौन वाचन तथा उसके भाव को समझने की चेष्टा करना। न समझने पर पुनर्वाचन की आवश्यकता पड़ती है।—विद्यार्थियों

* श्री रामरतन भटनागर : निबन्ध प्रबोध, इलाहबाद, किताबमहल, १९४९, पृष्ठ ३८७।

के लिए लेखक की मुख्य विचार-धारा की जानकारी आवश्यक है, प्रत्येक शब्द तथा वाक्य का अर्थ समझना आवश्यक नहीं है।

(२) विद्यार्थियों द्वारा पुनर्वाचन, तथा चाबी-शब्दो को कागज पर लिखना। (आरम्भ मे प्रत्येक पाठ के नीचे हेतु-प्रश्न दे देना चाहिए। इनके द्वारा चाबी-शब्द आसानी से निकाले जा सकते हैं।)—चाबी-शब्द ऐसे हो, जिन्हे बढ़ाकर एक प्रधान विचार प्रकट किया जा सके।

(३) जॉच.—(पाठ को फिर से पढ कर जॉच करना कि प्रत्येक प्रधान विचार चाबी-शब्दों द्वारा लिखे गये हैं या नही)—चाबी-शब्दो को क्रम से जमाना।

(४) मौखिक कार्य (शिक्षक का विद्यार्थियो से स्पष्टीकरण का उद्बोधन):

(अ) कुछ कठिनाइयों को समझाना।

(आ) चाबी-शब्दों को क्रम से श्याम-पट पर लिखना।

(इ) कुछ विद्यार्थियो द्वारा मौखिक स्पष्टीकरण कहलवाना।

(५) गृह-कार्य या अभ्यास—पाठ का स्पष्टीकरण लेखन।

(६) याद रखो:

(अ) मूल लेखक के कोई मुख्य विचार न छूटे।

(आ) प्रत्येक वाक्य इस प्रकार भाव-धारा मे बँधे और शृंखलित हों कि पूरा स्पष्टीकरण स्वयं पूर्ण हो जाय।

(इ) लेख संक्षेप मे हो, और उसमे कम से कम शब्दों और सब से अधिक सार्थक एव उपयुक्त शब्दो का प्रयोग हो। मूल लेख की भाषा को दोहराना उचित नही है।

११. संवाद–विवरण (Reporting)

१. संक्षेपीकरण और संवाद–विवरण.—संवाद-विवरण या रिपोर्टिंग, संक्षेपीकरण का दूसरा रूप है। अन्तर केवल इतना ही है कि सक्षेपीकरण एक पठित पाठ का सार है, किन्तु संवाद-विवरण एक स्वतः देखे हुए दृश्य या सुनी हुई घटना का संक्षिप्त विवरण होता है। जीवन मे वे ही सवाद-दाता सफल होते हैं, जो घटनाओं का विवरण स्पष्टता तथा पूर्णता के साथ प्रवाह-मयी भाषा मे दे सकते हैं।

सवाद-विवरण मनुष्य के अवलोकन तथा लेखन-कला के सामञ्जस्य की पराकाष्ठा है। घटना या दृश्य विवरण वास्तविक होना चाहिए, ऊल-जलूल बातों का समावेश न हो तथा लेख सुलझा हुआ होना चाहिए।

२. **विद्यालय में संवाद-विवरण.**—विद्यालय मे संवाद-विवरण की शिक्षा वर्णनात्मक तथा कथनात्मक लेखों द्वारा दी जाती है जैसे, "विद्यालय की वार्षिक खेल कूद-प्रतियोगिता", "स्वाधीनता-दिवस" या "शहर मे कोई प्रदर्शिनी या मेला"। प्रत्येक विद्यार्थी रिपोर्टिंग का अभ्यास इस प्रकार कर सकता है :

(१) वह घटना-स्थल पर शान्ति पूर्वक बैठे।

(२) घटना के प्रत्येक हिस्से के विवरण के लिए, वह चाबी-शब्द लिख ले। ये चाबी-शब्द ऐसे हों, जिनके पढते ही पूरा दृश्य विद्यार्थी की आँखों के सामने, यथा समय प्रत्यक्ष हो जावे।

(३) यदि घटना-स्थल मे कुछ प्रधान व्यक्तियों ने कुछ उल्लेख योग्य शब्द कहे हों, तो उन्हें भी लिख लेना चाहिए।

(४) विवरण लिखना :

(अ) घटना-स्थल से लौटकर, विवरण चाबी-शब्दों की सहायता से लिखा जाय।

(आ) उल्लेखनीय उच्चारित शब्दो की योजना यथा स्थान की जावे।

(इ) आवश्यकतानुसार विवरण छोटा या बडा किया जाय।

(ई) भाषा सरल और जोरदार होवे।

(उ) विद्यार्थी को चाहिए कि प्रसंगानुसार विषय पर अपने कुछ विचार प्रकट करे।

(ऊ) रिपोर्ट या विवरण को एक शीर्षक देना आवश्यक है।

१२. स्पष्टीकरण (Amplification)

स्पष्टीकरण संक्षेपीकरण का विरुद्ध रूप है। संक्षेपीकरण का अर्थ है एक बृहत् विषय का सार-लेखन। इसके विपरीत स्पष्टीकरण-द्वारा कोई उक्ति, कथन या सूक्ष्म-विचार बढ़ाकर एक या दो अनुच्छेदों, लेखों या पुस्तकों में बढ़ाकर लिखा जा सकता है। उदाहरणार्थ, गोस्वामी तुलसीदासजी की यह उक्ति लीजिए: "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं"।

यह बात कितनी सत्य और मार्मिक है। इस उक्ति को जितना ही अधिक विस्तार के साथ लिखा जाय, उतना ही थोडा है।

विद्यालय मे स्पष्टीकरण के द्वारा विद्यार्थियों को एक उक्ति को बढ़ाकर एक अनुच्छेद या छोटे लेख के रूप मे लिखने का अभ्यास दिया जाता है। इसके द्वारा विद्यार्थियों की तर्क-शक्ति बढ़ती है। वे अपने विचारों को क्रम-पूर्वक स्पष्ट भाषा मे लिखना या बोलना सीखते हैं।

विस्तारित लेखाश की कोई सीमा निर्धारित नही की जा सकती है। यदि यह एक अनुच्छेद ही हो, तो भी इसमे लगभग ४०–१०० शब्द होंगे। लेख की लम्बाई कक्षा की योग्यता के अनुकूल होना चाहिए।

१२. रचना–संशोधन

१. आवश्यकता.—रचना-शिक्षा का अन्तिम अंग 'रचना मे उचित श्रेणी का सशोधन' है। मौखिक रचना के समय, शिक्षको को चाहिए कि वे विद्यार्थियों की भूलें तत्काल सुधार दे। ऐसा न करने से लिखित रचनाओं मे अशुद्धियों की भरमार रहेगी।

रचना-सशोधन मे शिक्षकों को सर्वाधिक अड़चनों का सामना करना पड़ता है, जब उन्हें विद्यार्थियों के लेखनकार्य की जॉच करना पडती है। लिखित रचना के अनेक अंग है। यदि किसी शिक्षक ने प्रत्येक अंग के लिए प्रति सप्ताह लिखने का अभ्यास दिया, तो यह स्वाभाविक ही है कि वह नोट बुकों के बोझ के मारे दब जायगा। इस पर यदि वह दो-तीन कक्षाओं मे भाषा-शिक्षा पढ़ाता है, तो फिर उस पर विपत्ति का पहाड टूट पडता है।

पर इसका अर्थ यह नही है कि विद्यार्थीगण रचनाएँ लिखते जावे, और शिक्षक उनका संशोधन न करे। संशोधन से ही विद्यार्थी अपनी भूलें, त्रुटियॉ, अशुद्धियॉ और दोष जान सकते हैं। फिर, भविष्य मे अपने लेखो को परिष्कृत कर सकते हैं। शिक्षको को चाहिए कि वे लिखित रचनाओ का एक उचित समय-कार्य-क्रम बनावें, जिसके अनुसार किसी भी कक्षा को राष्ट्र-भाषा में प्रति सप्ताह एक से अधिक रचना न लिखना पडे। जो कुछ भी लिखा जाय, उसका उचित सशोधन हो।

२. संशोधन करने के सिद्धान्त.—सशोधन करने के मुख्य उद्देश्य निरीक्षक या प्रधान पाठक को प्रसन्न करना नही है, वरन् विद्यार्थियो की भूलों को सुधारना है। जब तक प्रत्येक विद्यार्थी अपनी गलती समझ न ले, तब तक सशोधन-समय का निरा अप-

व्यय है। श्री वायट कहते हैं, "A correction, which is not impressed upon the offender, just wastes time."*

विद्यार्थीगण तीन प्रकार की भूलें करते हैं : (१) भूतकालीन ज्ञान अथवा शिक्षक के विगत निर्देशों में शंका उत्पन्न हो जाने के कारण, (२) शीघ्रता या असावधानी के कारण और (३) अज्ञानता-वश।

यदि विद्यार्थी से उचित सहायता ली जाय, तो प्रथम प्रकार की पचहत्तर प्रतिशत अपनी भूलें विद्यार्थी स्वयं ही सुधार सकता है। दूसरे प्रकार की अशुद्धियों को कम करने के लिए, विद्यार्थी को लिखते समय सावधान बनाना चाहिए। तृतीय प्रकार की गलतियों को सुधारने के लिए शिक्षक को सचेष्ट रहना चाहिए, क्योंकि ये ऐसी भूलें हैं, जिनके ऊपर विद्यार्थी का भावी ज्ञान अवलम्बित होता है।

पर इसका अर्थ यह नहीं है कि शिक्षक विद्यार्थी की लिखित रचना की छान-बीन कर उसकी प्रत्येक भूल को स्वयं ही सुधार कर लिखे। सबसे सफलीभूत संशोधन-प्रथा वह है, जब कि विद्यार्थी अपने प्रयास से अपनी गलतियों को सुधारे, तथा भाषा के शुद्ध रूप को एक विशेष नोट बुक में लिखे और उसे याद कर ले।

विद्यार्थी की कापी जाँचते समय, शिक्षक विद्यार्थी की भूलें विशेष चिह्नों द्वारा दर्शावे। तत्पश्चात् विद्यार्थी अपनी गलतियाँ चिह्नों के अनुसार सुधारे। कुछ संकेत-चिह्नों के उदाहरण नीचे दिये गये हैं :

ह—हिज्जे की गलती।
^—कुछ छूट गया है।
×—व्याकरण की अशुद्धि।
भ—अशुद्ध भाषा।
व—विराम-चिह्न की गलती।
?—तुम्हारा अर्थ क्या है?
=—अनावश्यक शब्द, वाक्य या विचार।

प्रत्येक विद्यालय में कुछ संकेत-चिन्ह स्थिर कर दिये जावें। हिन्दी, मातृ-भाषा, अँग्रेजी या और किसी भी भाषा की लिखित रचना संशोधन के लिए वे संकेत-चिन्ह प्रयुक्त किये जावें। विद्यार्थियों की कापियों में तथा विद्यालय के सूचना-पट (Notice-Board) पर इन्हें बड़े अक्षरों में लिखकर लगा देना उचित है।

* Thompson and Wyatt op cit, p 164

केवल पढ़-सुन कर ही लिखना नहीं आ जाता। लिखना व्यावहारिक कार्य है। अन्य कार्यों की भांति लिखने का अभ्यास करना चाहिए। इसके बिना अच्छा लेखक या निबन्धकार होना असम्भव है। विद्यार्थियों को उचित है कि वे अभ्यास करें और नियमित समय पर कुछ लिखें। महान् लेखक अपने अभ्यास द्वारा ही महान् हुए हैं। प्रेमचन्द प्रतिदिन कुछ लिखते थे। रवि बाबू के लिखने के घण्टे बँधे थे। लिखने से ही विशिष्ट शैली विकसित होती है।

अपने विचारों को चुन चुन कर रखा जावे, तथा वे विचार स्पष्ट भाषा में प्रकट किये जावें। ऐसे ही लेख सर्वोत्कृष्ट निकलते हैं। सुप्रसिद्ध बँगला-उपन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने कहा है :

> सब से सुन्दर रचना वह है, जिसके पढ़ने से प्रतीत हो कि लेखक ने अपने अन्तर से सब कुछ फूल की तरह प्रस्फुटित कर दिया है।

—★—

पाँचवाँ भाग

विविध विषय

पहला अध्याय

विश्व-विद्यालय में शिक्षा-विधि

१. प्रारम्भ

आज हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा है, और हर्ष की बात है कि यह भाषा अनेक विश्व-विद्यालयो मे पढाई जाती है। पर यह भाषा तभी लोक-प्रिय हो सकती है, जब इसकी शिक्षा-पद्धति विद्यार्थियों के अनुकूल हो। कालिज के अनेक आचार्य कदाचित् बिगड खड़े हों, और पूछ बैठे कि कालिज मे शिक्षण-पद्धति? क्या कालिज के आचार्यों को भी शिक्षण-पद्धति जानने की आवश्यकता है? शिक्षक तो पैदा होते हैं, वे बनाये नहीं जा सकते। तब यह प्रश्न ही क्या उठता है? इत्यादि।

इस विषय पर संयुक्त राज्य अमरीका मे बहुत बहस हुई। अन्त मे बहुमत से यह स्वीकार किया गया कि कालिज तथा विश्व-विद्यालय के अध्यापकों को भी शिक्षण-पद्धति जानना आवश्यकीय है। इस ज्ञान से पढ़ाना सरल हो जाता है, तथा शिक्षा-विधि रोचक बन जाती है।

आज अमरीका के कालिजों तथा विश्व-विद्यालयो की पढाई मे निम्न लिखित पद्धतियों का अनुसरण किया जाता है :

(१) वक्तृता–प्रणाली (Lecture Method)।
(२) चर्चा–विधि (Discussion Method)।
(३) प्रयोगिक पद्धति (Laboratory Method)।
(४) श्रव्य और दृश्य साधनों का प्रयोग (Use of Audio-visual Aids)।
(५) गवेषणा–विधि (Research Technique)।*

यहॉ इन पद्धतियों को विशद एव विस्तृत चर्चा करना अभीष्ट नहीं है, तथापि यह तो बताना आवश्यक ही प्रतीत होता है कि भारतीय विश्व-विद्यालयों में राष्ट्र-भाषा सिखाते समय इन पद्धतियों को किस प्रकार उपयोग में ला जा सकता है।

---

* F J Kelly, ed **Improving College Instruction** Washington, American Council on Education, 1951 pp 68-93

२. वक्तृता-प्रणाली

१. आवश्यकता.—वर्तमान युग मे वक्तृता-प्रणाली का प्रबल विरोध हो रहा है। कालिज की अनेक कक्षाओ मे २००–२५० तक विद्यार्थी रहते हैं। इस सामूहिक शिक्षा-विधि के कारण, विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओ की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। बहुतो का मत है कि कक्षाएँ छोटी-छोटी टुकडियो मे बाँट दी जावें, पर आर्थिक अभाव के कारण ऐसा करना सम्भव नहीं प्रतीत होता।

कक्षा छोटी हो या बडी हो—केवल इसी कारण से वक्तृत-प्रणाली का बहिष्कार किया जाना असम्भव-सा है। विद्यार्थीगण सदा अपने भरोसे पर नही छोडे जा सकते हैं। कठिन विषय या लेखाश समझाने के लिए, नया ज्ञान देने के लिए, साहित्य के प्रति अनुराग-वृद्धि के लिए, विद्यार्थियों को मार्ग दर्शाने के लिए वक्तृता-प्रणाली को अपनाना पडता है।

२. छोटी और बड़ी कक्षा.—पर यह आवश्यक नही है कि वक्तृता-प्रणाली सदा एक-सी हो। वक्तृता देने के पूर्व वक्ता को देखना चाहिए कि उसकी श्रोता-मण्डली मे कितने व्यक्ति हैं। जब कक्षा छोटी हो, तब यथा-सम्भव कक्षा-कक्ष को भी छोटा होना चाहिए, जिससे श्रोता-गण वक्ता के चारो ओर घिर कर बैठाये जा सकें।

वक्तृता विद्यार्थियो को नही, वरन् विद्यार्थियों के मध्य देना आवश्यक है। समय समय पर इस प्रकार वार्त्तालाप करना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी के मन पर इस प्रकार की धारणा जम जाय कि शिक्षक उसके प्रति विशेष लक्ष्य रखते हैं।

यदि कक्षा बड़ी हो तो वक्तृता के विभिन्न भागों मे वक्ता को ठहर जाना चाहिए, और विषय की चर्चा करना चाहिए। पहले पहल शिक्षक स्वयं प्रश्न पूछे। चर्चा की आदत एकबार पड जाने पर, विद्यार्थीगण ही प्रश्न पूछना आरम्भ करेंगे।

३. तैयारी.—वक्तृता की सफलता के लिए, पूर्व तैयारी बहुत ही आवश्यक है। अनुभवी शिक्षक समूचे वर्ष के कार्य की रूप-रेखा वर्षारम्भ मे खींच लेते हैं, तथा विद्यार्थियो के हाथ अपने विषय का सन्दर्भ-सूची दे देते हैं। इससे विद्यार्थियों को अँधेरे मे भटकना नहीं पडता, तथा वाचन के प्रति उनकी रुचि बढती है।

कोई भी वक्तृता देने के पूर्व, वक्तृता का विषय अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। विषय के भाव के अनुसार, वक्तृता को विभिन्न अन्वितियों मे बाँट देना उचित है। लेक्चर की रूप-रेखा मुक्त कागजो पर अङ्कित कर ली जावे। किसी भी कागज पर एक से अधिक अन्विति का साराश लिखना उचित नहीं है। इससे वक्तृता देते समय वक्ता को सहायता मिलती है। एक अन्विति समाप्त होने पर कागज पलट दिया जाय। इस उपाय से साराश की खोज मे, कागजो को इधर-उधर पलटना नही पडता।

४. वक्तृता.—निबन्ध के समान वक्तृता के तीन भाग हैं—आरम्भ (प्रस्तावना), मध्य और अन्त (उपसंहार)। प्रस्तावना के समय, कुछ शब्दों-द्वारा वक्तृता का विषय पिछले विषय से जोड़ दिया जाय। तत्पश्चात् वक्तृता का विषय विद्यार्थियों को स्पष्टतापूर्वक बता दिया जाय, तथा श्याम-पट पर इसकी मुख्य अन्वितियों के शीर्षक लिख दिये जायँ।

वक्तृता देते समय, वक्ता को केवल उतना ही पढाना चाहिए, जितना कि वह ४५-५० मिनट मे पूर्ण रूप से समाप्त कर सकता है। लेक्चर का विषय विद्यार्थियों की बोध-शक्ति के बाहर का न हो, तथा विचार-धारा में अनुक्रम हो।

वक्ता की आवाज तथा वक्तृता देने के ढङ्ग पर वक्तृता की सफलता बहुत कुछ निर्भर रहती है। प्रत्येक शब्द इस प्रकार स्पष्ट रीति से उच्चारित किया जाय कि प्रत्येक विद्यार्थी वक्तृता को सुन सके और उसको नोट कर सके। एक विचार समाप्त होने पर थोड़ी देर ठहरना चाहिए। यही वक्तृता का पूर्ण विराम है। एक अन्विति समाप्त होने पर, और भी अधिक ठहरना आवश्यक है। अन्विति वक्तृता का एक अनुच्छेद है। समय-समाप्ति के पाँच मिनट पूर्व, पूरे लेक्चर को दोहरा देना चाहिए। इससे लेक्चर का विषय विद्यार्थियो के हृदय पर भली भाँति पूरा-पूरा जम जाता है।

५. भाषा-शिक्षा मे वक्तृता.—यह हुआ वक्तृता-पद्धति का सामान्य विवरण। अब यह देखना चाहिए कि भाषा के विविध विषयों के पढाने में इस पद्धति का उपयोग कैसे किया जाय? उदाहरण के लिए लेखकों के निबन्ध, पद्य, उपन्यास तथा नाटक लिये जायँ।

(१) निबन्ध.—विद्यार्थीगण घर से निबन्ध पढकर आवें। वे कोश की सहायता से कठिन शब्दो के अर्थ निकाल ले। इसके पश्चात् निबन्ध पढाना आरम्भ किया जाय। निबन्ध-शिक्षा के समय, अध्यापक को दो बातों की ओर ध्यान देना पड़ता है: लेखक के विचार तथा भाषा।

निबन्ध, विभिन्न भागों में बाँट लिया जाय। प्रत्येक भाग में एक प्रधान विचार रहे, तथा प्रत्येक विभाग की चर्चा अलग अलग की जाय। वक्तृता के समय, अध्यापक को प्रत्येक पंक्ति नहीं पढना चाहिए। जहाँ भाषा या भाव की कोई कठिनाई हो, वहाँ वह ठहरे तथा उसकी चर्चा करे। भाव-धारा को शृंखलित रूप मे जोड़ते हुए, वह पूरे पाठ का आत्मीकरण समाप्त करे।

इसके पश्चात् प्रश्न पूछते हुए वह निबन्ध के मुख्य विचार तथा रचना की शैली विद्यार्थियों से उद्बोधित करे, जैसे:

(अ)—विचार धारा

(I) यह निबन्ध कितने भागो मे बाँटा जा सकता है?[1]

(II) प्रत्येक भाग मे कौन कौन से मुख्य विचार हैं?

(III) प्रत्येक अनुच्छेद के मुख्य विचार बताओ।

(आ)—भाषा

(I) विषय आरम्भ करने की रीति।

(II) संबद्धता—अनुच्छेदो मे क्रम, वाक्यो की सजावट, शब्दो के प्रयोग।

(III) शैली।

(२) पद्य-शिक्षा में क्रम

(अ) कवि का परिचय।

(आ) सम्पूर्ण कविता का अध्यापक-द्वारा आदर्श वाचन।

(इ) कवि के मुख्य विचारो को प्रश्न द्वारा उद्बोधित करना, या, उन पक्तियों को पढना, जिनमे ये विचार निहित हों।

(ई) आत्मीकरण—कविता के भावो तथा साधारण कठिनाइयो को समझाना। (प्रत्येक पक्ति के पढने की आवश्यकता नही है)।

(उ) मौन वाचन (पूर्ण कविता का विद्यार्थियो-द्वारा)।

(ऊ) कविता पर टीका।

(ए) सम्पूर्ण कविता का अध्यापक द्वारा आदर्श-वाचन।

(ऐ) कविता के विशेष चमत्कार (विद्यार्थियों से उद्बोधित करना चाहिए)।

(३) उपन्यास.—उपन्यास आरम्भ करने के पहले, अध्यापक को उचित है कि वे सम्पूर्ण कक्षा को पूरा उपन्यास पढ लेने को कहे। गरमी या दीवाली की छुट्टी इस कार्य के लिए प्रशस्त समय है।

छुट्टी के बाद पहले घण्टे मे अध्यापक दो-तीन विद्यार्थियो से उपन्यास का साराश कहलावे। इसके पश्चात् कक्षा मे उपन्यास के कथानक (Plot) की चर्चा की जावे,

---

[1] यदि निबन्ध बहुत बडा हो, तो अध्यापक को प्रारम्भ में ही विद्यार्थियों को निबन्ध के विभिन्न भागों तथा विचारधारा की एक रूप-रेखा देना चाहिए।

तथा यह बतलाया जावे कि इसके विभिन्न अंग कौन कौन से अध्यायों में लिखे गये हैं। इस कार्य के लिए तीन-चार घण्टे सहज में ही लग जाते हैं।

अब उपन्यास का आत्मीकरण प्रारम्भ किया जाय। इसके लिए केवल वे ही लेखांग पढ़े जायँ, जिनके द्वारा कोई विशेष भाव दर्शाया गया हो। इस प्रकार पुस्तक समाप्त की जाय। इसके बाद विद्यार्थियों को उपन्यास के कुछ विषयों पर आवश्यकता के अनुसार प्रश्न हल करने को दिये जायँ, जैसे सामाजिक स्थिति, पात्रों के चरित्र, उपन्यास के गुणावगुण, इत्यादि। इस कार्य के लिए विद्यार्थियों को कुछ अवसर दिया जाय, जिससे वे उपन्यास का सूक्ष्म रीति से अध्ययन तथा पुस्तकालय की सहायता लेकर प्रश्नों के यथोचित उत्तर लिख सकें। इन उत्तरों की चर्चा कक्षा में की जाय।

(४) नाटक.—नाटक आरम्भ करने के पहले, नाटककार का तथा आवश्यकतानुसार ऐतिहासिक या सामाजिक पृष्ठभूमि का परिचय दे देना चाहिए। इसके बाद नाटक कक्षा-नियम-प्रणाली-द्वारा पढ़ाया जाय। इस प्रणाली के अनुसार कक्षा के विद्यार्थियों को नाटक में आये हुए चरित्रों की भूमिका देकर, उन चरित्रों के संवादों को भाव-पूर्वक पढ़वाया जाय तथा तदनुकूल वाचिक अभिनय कराया जाय। अध्यापक स्वयं एक मुख्य पात्र का अभिनय करे। इस समय शब्दों का अर्थ आदि न कराया जाय।

अब नाटक दोबारा पढ़ा जाय, तथा उसका विचार-विश्लेषण किया जाय पर अध्यापक केवल उन पंक्तियों को पढ़े, जो कथा-वस्तु, कथोपकथन की विशेषताओं, कठिन-स्थलों तथा नाटककार के विचारों एवं भावों पर प्रकाश डालते हों। यदि नाटक पर कोई चल-चित्र हो, या कोई नाटक-कम्पनी इस खेल का अभिनय करती हो, तो वह विद्यार्थियों को दिखाया जाय।

अब उपन्यास-शिक्षा के अनुरूप विद्यार्थियों को कुछ प्रश्न दिये जावें। जिनका उत्तर वे सोच-समझ कर तथा पुस्तकों के सहारे लिख लावें। इन उत्तरों की चर्चा कर, नाटक के गुण-अवगुण, पात्रों के चरित्र-चित्रण, शैली की विशेषताएँ आदि उद्बोधित की जा सकती हैं।

यदि हो सके, तो अन्त में पूरे नाटक का रंग-मंच पर विद्यार्थियों के द्वारा अभिनय कराया जाय।

३. चर्चा-विधि

चर्चा-विधि का उपयोग दो प्रकार से होता है: (१) वक्तृता के साथ चर्चा और (२) समूह-चर्चा। प्रथम प्रणाली की विवेचना पिछले प्रकरण में की जा चुकी है।

इसके अनुसार वक्तृता के साथ-साथ बीच-बीच मे विद्यार्थियो के साथ विषय की चर्चा की जा सकती है।

दूसरी पद्धति कुछ नई नहीं है। केम्ब्रिज या ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयो मे ट्यूटोरियल विधि परम्परा से चली आ रही है। इस प्रथा का विशेष गुण यह है कि अध्यापक तथा विद्यार्थीगण घने सम्बन्ध मे आ जाते हैं, और सभी प्रकार के विद्यार्थियो (अच्छे और कमजोर) को अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिलता है।

ट्यूटोरियल विधि के सिवा, प्रत्येक अध्यापक एक बडी कक्षा को २०–२५ के समूह मे बॉट दे सकता है। जहॉ तक हो सके, प्रत्येक टुकडी मे समान बुद्धिवाले विद्यार्थी हो। प्रत्येक टुकडी को एक विषय तैयार करने के लिए दिया जाय। फिर उसकी चर्चा समूह मे की जाय। उदाहरणार्थ, एक नाटक या उपन्यास लिया जाय। प्रत्येक टुकडी को विभिन्न विषय अध्ययन के लिए दिये जा सकते है; जैसे : एक-एक अक का अध्ययन, विभिन्न पात्रो का चरित्र-चित्रण, सामाजिक, ऐतिहासिक या राजकीय विचार, रचना-शैली, इत्यादि।

जब प्रत्येक टुकड़ी अपने विषय का अध्ययन पूरा कर ले, तब सामूहिक चर्चा की जाय। इस समय अध्यापक को स्वयं अधिक नही बोलना चाहिए। पूरे विषय का विचार-विश्लेषण विद्यार्थियो द्वारा ही कराया जाय। जहॉ तक सम्भव हो, प्रत्येक विद्यार्थी को कुछ-न कुछ भाग लेना आवश्यक है। अन्त मे अध्यापक को पूरे विषय का साराश कहना चाहिए।

प्रत्येक टुकडी की रिपोर्ट की चर्चा सम्पूर्ण कक्षा के सामने भी की जा सकती है। इससे विद्यार्थियों मे तर्क वितर्क की शक्ति बढ़ती है, तथा पूरी कक्षा को अपने सहपाठियों एव प्रत्येक समूह के अध्ययन का लाभ उपलब्ध होता है।

४. प्रयोगिक पद्धति

प्रयोगिक पद्धति का विशेषकर उपयोग विज्ञान-पाठ के समय होता है। इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियो मे अवलोकन-शक्ति का विकास करना है, तथा निरीक्षण द्वारा उन्हें नियम की ओर अग्रसर करना है। इस पद्धति का कुछ-कुछ उपयोग भाषा-शिक्षा मे भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, किसी पात्र का चरित्र-चित्रण या किसी लेखक की शैली का निरूपण लिया जाय। विशद रूप से चरित्र-चित्रण पात्र के द्वारा कहे हुए वाक्यो या शब्दो का विश्लेषण कर किया जाता है। पुस्तक का सूक्ष्म पाठ कर विद्यार्थी ऐसे शब्दो को खोजता है, तथा इन्हे क्रम से सजाता है। इसके पश्चात् तर्क-वितर्क कर वह पात्र का चरित्र-चित्रण करता है।

शैली के चार भेद हैं: (१) अलंकारिक शैली, (२) लाक्षणिक शैली, (३) संवेद-नात्मक शैली तथा (४) प्रतीकात्मक शैली। ये शैलियाँ वाक्यों की बनावट पर आधारित रहती हैं। किसी भी लेखक की शैली की चर्चा विद्यार्थी तभी कर सकता है, जब कि वह लेखक की रचना से पूर्णतया परिचित हो, तथा अपने विचारों की पुष्टि लेखक के वाक्यों-द्वारा कर सकता हो। उसे उनको अपने लेख में सजाकर व्यक्त करना पड़ता है। इस क्रिया से उसकी अन्वेषण-शक्ति बढ़ती है, तथा उसकी भाषा और विचार-शक्ति में वृद्धि होती है।

५. श्रव्य और दृश्य साधनों का प्रयोग

वर्तमान वैज्ञानिक युग में भाषा-शिक्षा में श्रव्य और दृश्य साधनों का प्रयोग बायें हाथ का खेल हो गया है। श्याम-पट, चित्र, मूर्ति, चल-चित्र, ग्रामोफोन रिकार्ड, टेप-रिकार्डर इत्यादि का प्रयोग विद्यालयों में बहुतायत से किया जाता है। इनकी उचित विधि की चर्चा आगे की जायगी।* दुर्भाग्यवश हमारे कालिज की पढ़ाई में इनका बहुत ही कम उपयोग किया जाता है।

६. गवेषणा-विधि

हिन्दी में अनेक विद्यार्थी एम० ए० पास हो रहे हैं, और कुछ पी० एच० डी० भी निकल रहे हैं: पर उनके लिए गवेषणा-विधि 'काला अक्षर भैंस बराबर' होती है। चूँकि ये ही विद्यार्थी हमारी राष्ट्र-भाषा के भावी शिक्षक तथा अध्यापक हैं, इसलिए इन्हें गवेषणा-विधि के ज्ञान की आवश्यकता है।

प्रत्येक एम. ए. तथा पी. एच. डी. की कक्षाएँ छोटी रहती हैं। इन कक्षाओं को विचार-गोष्ठी (Seminar) के रूप में परिणत करना उचित है, तथा अध्ययन और अध्यापन सामूहिक चर्चा-विधि से किया जावे। किन्तु विचार-गोष्ठी की सफलता तभी प्रमाणित हो सकती है, जब उसके प्रत्येक विद्यार्थी को अपने विषय की सन्दर्भ-सूची, पुस्तकालय का उपयोग तथा गवेषणा के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान हो। जब तक विद्यार्थी को यह ज्ञान न हो, तब तक विचार गोष्ठी प्रारम्भ न की जाय। प्रसिद्ध विद्वान् एण्ड्र मोराइस का कथन है:

> Students wish to enter a seminar who have no idea of general bibliography of their field, of the use of libraries, and of the methods of investigation which have proved successful in problems of the kind they will have to approach. Do not accept

* देखिए भाग पाँचवाँ, अध्याय चौथा।

students in a seminar unless they have acquired this preliminary information.*

पाश्चात्य विश्व-विद्यालयों मे एम. ए. के विद्यार्थियो के लिए गवेषणा-विधि की कक्षाएँ चलाई जाती हैं। हमारे देश मे कुछ विश्व-विद्यालयों ने यह प्रथा प्रारम्भ की है; पर इस विषय पर विशेष जोर नहीं दिया गया है। कम-से-कम हम आशा करते हैं कि हिन्दी के शोधक गवेषणा-विधि हस्तामलक कर लेंगे, और उसका समुचित उपयोग करेंगे। वे सन्दर्भों को मूल से मिलाकर अपने को सन्तुष्ट कर लेंगे कि वे सही हैं। उद्धरणो और सन्दर्भों की शुद्धता पर ध्यान रखेंगे। शब्दों, विशेष कर पारिभाषिक शब्दो, नामों आदि को शुद्ध रूप मे लिखेंगे, और उनका सही उपयोग करेंगे।

राष्ट्र-भाषा की शिक्षा मे विशेष शोध की आवश्यकता है—उचित पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य-पुस्तक, हिन्दी-मातृ-भाषा-शब्दावली, भाषा के विभिन्न अंगो की शिक्षा-पद्धति, उच्चारण तथा व्याकरण की भूलें, सयानो की शिक्षा, इत्यादि। आशा की जाती है कि राष्ट्र-भाषा के प्रेमी तथा प्रशिक्षण महाविद्यालयों के भाषा-शिक्षण-विभाग इस ओर उचित ध्यान देंगे।

७. उपसंहार

यहाँ विश्व-विद्यालयो मे शिक्षा विधि का सामान्य परिचय बताया गया। समय समय पर अध्यापको को विद्यार्थियों के लेक्चर के नोटों की जाँच कर लेना चाहिए। इससे विद्यार्थियों की समीक्षा का साधारण ज्ञान मिल जाता है। पर इसके साथ साथ यह भी पता चल जाता है कि विद्यार्थीगण अध्यापक को कहाँ तक ठीक समझ सक रहे हैं।

कभी-कभी अध्यापक अपने वक्तृता के सम्बन्ध में विद्यार्थियो का मत पूछ सकते हैं। वक्तृता आरम्भ होने के पूर्व प्रत्येक छात्र के हाथ एक कागज दिया जाय, जिस पर लिखा हो :

विषय :	तारीख :
वक्तृता के मुख्य गुण :	
मैं इन्हें नहीं समझ सका :	
वक्तृता की कमजोरियाँ :	

---

* B D Cronkhite, ed A Handbook for College Teachers Harvard University Press, 1950 p 97

वक्तृता समाप्त होने पर, प्रत्येक विद्यार्थी उपर्युक्त रूपपत्र पर अपना मत लिखकर देवे। उसके हस्ताक्षर न लिये जायँ। कारण, अपने अध्यापक के अध्यापन पर मत कोई भी विद्यार्थी हस्ताक्षर करके न देना चाहेगा। विद्यार्थियो के मतों पर विचार कर, अनेक अध्यापक अपनी वक्तृत्व-कला सुधार सकते है।

समय-समय पर अध्यापक-गण आपस मे विविध पद्धतियों, विद्यार्थियो की कमजोरियों, पाठ्य-क्रम इत्यादि विषयों पर विचार करे। नये अध्यापक को सलाह की बहुत आवश्यकता रहती है। यह सलाह अनुभवी अध्यापको से मिल सकती है।

—★—

दूसरा अध्याय

सयानों की शिक्षा

१. भूमिका

सयाने दो प्रकार के होते हैं : शिक्षित और अशिक्षित। इस अध्याय मे पहले प्रकार के व्यक्तियो को हिन्दी सिखाने की पद्धति की चर्चा की गई है। इनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है, तथा ये उच्च शिक्षित हैं। हिन्दी के राष्ट्र-भाषा स्वीकृत होने के कारण, इन्हे यह भाषा सीखना पडती है।

इनमे से कई तो इच्छा-पूर्वक हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, पर अधिकाश शिकायत करते रहते हैं कि यह बुढापे मे कहॉ की आफ़त!! इस अवस्था मे हिन्दी-परीक्षा मे उत्तीर्णता प्राप्त करने का सरकारी फ़रमान! हम तो हिन्दी नही सीख सकते। हिन्दी सीखे, तो कैसे सीखे!! इत्यादि।

एक शिक्षित सयाने को भाषा-शिक्षा की साधारण पद्धतियो-द्वारा एक नई भाषा सिखाई नहीं जा सकती। उसे बालक नही समझना चाहिए। उसकी विचार-धारा नियमित हो चुकी है। शिक्षित होने के कारण वह कई भाषाऍ जानता है, तथा उसका ज्ञान-भण्डार यथेष्ट बढा रहता है। वह शीघ्र ही नई भाषा सीखना चाहता है, इस कारण उसे राष्ट्र-भाषा ऐसी पद्धति के द्वारा सिखाई जावे, जो उसकी भावनाओ के अनुकूल हो।

२. भाषा-शिक्षा के कुछ नियम

१. प्रारम्भ.—गत विश्व-युद्ध के समय अनेक शिक्षित नवयुवको को एक नई भाषा सीखना पडी, जैसे : अँग्रेजो को रूसी भाषा, या, अमरीकनो को फ्रेन्च, या रूसियो को जर्मन, इत्यादि। इस समय सयानों के नवीन भाषा-अध्ययन की शक्ति के विषय मे अनेक विशेष शोध हुए।* भारतीय दूतावास, न्यूयार्क मे अमरीकन प्रौढ़ो के लिए एक हिन्दी कक्षा चलाई जाती है। लेखक ने इस कक्षा के शिक्षकीय कार्य को दो वर्षों तक

---

* I Lorge The Psychological Basis of Learning Washington, American Council on Education 1951.

किया था। इस तरह भारतीय भाषाओं से अपरिचित कुछ सयानों को हिन्दी-शिक्षा देने का अनुभव लेखक को प्राप्त हुआ था।

इस अनुभव तथा प्रौढ़ों की भाषा-अध्ययन-शक्ति के शोध के आधार पर हमारे देश के अहिन्दी शिक्षित सयानों को राष्ट्र-भाषा सिखाने के कुछ नियम निर्धारित किये जा सकते हैं। इस शिक्षा के अन्तर्गत निम्नांकित बातें आवश्यक हैं :

(१) प्रश्नोत्तर-पद्धति।

(२) वर्णन-विधि।

(३) प्रारम्भिक वाचन-कार्य।

(४) व्यक्तिगत ध्यान तथा सामूहिक चर्चा।

(५) तुलनात्मक पद्धति।

२. प्रश्नोत्तर-पद्धति.—भाषा-शिक्षा प्रश्नोत्तर-पद्धति-द्वारा दी जावे। प्रश्न का उत्तर पूर्ण वाक्य मे हो। इस पद्धति के द्वारा वार्त्तालाप तथा वाक्य-गठन का अभ्यास मिलता है। शिक्षक को विद्यार्थी के उच्चारण की ओर उचित ध्यान देना चाहिए। इसके बिना प्रान्तीयता का प्रभाव दूर नहीं किया जा सकता।

प्रतिदिन नया पाठ आरम्भ करने के पूर्व, पुराना पाठ दोहराया जावे, तथा किसी भी दिन एक से अधिक प्रश्नोत्तर का अभ्यास न कराया जावे। नीचे कुछ आवश्यक प्रश्नोत्तरों के उदाहरण दिये गये हैं :

अ. प्रथम प्रश्नोत्तर

प्रश्न	उत्तर
(१) आपका नाम क्या है?	मेरा नाम सुरेश है।
(२) आपके पिता का नाम क्या है?	मेरे पिता का नाम. है।
(३) आपके भाई का नाम क्या है?	मेरे भाई का नाम है।
(४) आपके चाचा का नाम क्या है?	मेरे चाचा का नाम है।
(५) आपकी बहिन का नाम क्या है?	मेरी बहिन का नाम है।

इस प्रकार कुटुम्बियों के नाम अर्थात् माता, पिता, भाई, बहिन, चाचा तथा मेरे, मेरी इत्यादि के रूप समझा दिये जा सकते हैं।

आ. द्वितीय प्रश्नोत्तर

आप क्या खाते है? आपने सुबह क्या खाया था?

इस प्रश्नोत्तर के द्वारा अनेक खाद्य पदार्थों के नाम सिखाये जा सकते हैं।

इ. उपसंहार

ऊपर के दो प्रकार के प्रश्नोत्तरो-द्वारा शिक्षक विद्यार्थियो को अनेक शब्द सिखा सकता है। लगभग ५०–६० शब्दो के ज्ञान के पश्चात् शिक्षक विद्यार्थियो को अक्षर-बोध करावे।

ई. अक्षरबोध

अक्षर-बोध के बाद, विद्यार्थियो को व्याकरण का साधारण ज्ञान देना चाहिए। पर इसके लिए व्याकरण की पुस्तक की आवश्यकता नहीं है; क्योकि व्याकरण से सभी घबराते हैं। प्रौढो को व्याकरण का ज्ञान प्रश्नोत्तर तथा आगमन पद्धतियो के द्वारा क्रमशः दिया जाय। पहले कई पाठो मे लिंग, वचन, संज्ञा, पुरुषवाचक सर्वनाम, क्रिया (काल के सामान्य रूप) का साधारण ज्ञान दिया जाय। कुछ प्रश्नोत्तरों के उदाहरण नीचे दिये गये हैं:

रमेश, बैठो।	मैं (रमेश) बैठता हूँ।
	(रमेश बैठता है।)
रमेश, तू बैठ।	(रमेश) बैठता है।
	(एक विद्यार्थी उत्तर देता है।)
तू बैठ। (शिक्षक दूर से बताता है।)	वह (रमेश) बैठता है।

इसी प्रकार अन्य रूप उद्बोधित किये जा सकते हैं; जैसे:

हम बैठते हैं। तुम बैठते हो। वे बैठते हैं।

हम बैठती है। तुम बैठती हो। वे बैठते है।

शिक्षक को क्रिया बदलते रहना चाहिए। इससे विद्यार्थियो की शब्दावली (शब्द-भण्डार) मे वृद्धि होती है। साथ ही पाठ मे रोचकता की छटा आ जाती है।

२. वर्णन-विधि.—यथेष्ट शब्दो तथा कुछ आवश्यक वाक्य-गठनो का ज्ञान होने पर वर्णन-विधि प्रारम्भ की जाय। वर्णन विद्यार्थियों के अनुभव के आधार पर रहना चाहिए, जैसे: मेरा घर, मेरा परिवार, मेरा भोजन, आज का सौदा, आदि।

वर्णन करने का मौखिक अभ्यास दिया जाय। वाक्य छोटे हों। विद्यार्थी जहाँ तक अपने वर्णन को बढ़ा सकें, वहाँ तक उन्हें बढ़ाने देना चाहिए। सयानों को निरुत्साह करना समीचीन नहीं है।

४: प्रारम्भिक वाचन-कार्य.—इसके पश्चात् वाचन आरम्भ किया जाय। इस कार्य के लिए विद्यालय की साधारण पुस्तकें उपयोगी सिद्ध नहीं होती हैं। कारण, ये पुस्तकें बालकों के लिए लिखी जाती हैं—सयानों के लिए नहीं। अतएव शिक्षित सयानों के योग्य समुचित पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता है। इस पाठ्य-पुस्तक के द्वारा विद्यार्थियों को काल का ज्ञान क्रम-पूर्वक दिया जाना चाहिए—वर्तमान, भूत तथा भविष्यत् काल के सामान्य रूप, फिर अपूर्ण रूप और अन्त में पूर्ण रूप।

५ व्यक्तिगत ध्यान तथा सामूहिक कार्य.—इस प्रकार, प्रश्नोत्तर पद्धति, वर्णन-विधि तथा प्रारम्भिक वाचन-कार्य के द्वारा, सयानों को राष्ट्र-भाषा का आवश्यक ज्ञान हो जाता है। इसके द्वारा वे सामान्य वार्त्तालाप कर सकते हैं, तथा थोड़ा-बहुत पढ़कर समझ सकते हैं। इस समय तक लिखित कार्य आरम्भ करना उचित नहीं है। पर इस आवश्यक ज्ञान के मिलते ही सयानों में दो बातें विशेषत. लक्ष्य में आती हैं · (१) कक्षा में अविश्वास और (२) लिखने की इच्छा। किसी भी कक्षा में, कम-से-कम तीन स्तर के विद्यार्थी रहते हैं · मेधावी, साधारण और कमजोर। बालकों की कक्षा में किसी प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार के विद्यार्थियों को शिक्षा देना सम्भव है परन्तु सयानों की इस कक्षा में यह सर्वथा असम्भव है। कुछ यह कह बैठते हैं कि मास्टर साहब तो हमारी परवा ही नहीं करते हैं।

सबसे उत्तम उपाय तो यह है कि प्रत्येक सयाने की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के प्रति ध्यान दिया जाय, तथा उसके लिए एक स्वतन्त्र शिक्षक ही रहे। पैसेवाले सयाने ऐसा निश्चय ही कर सकते हैं परन्तु सामान्य आर्थिक स्थितिवालों के लिए यह कैसे सम्भव है? ऐसी अवस्था में शिक्षक को उचित है कि अपनी कक्षा को विद्यार्थियों के स्तर के अनुसार तीन चार टुकड़ियों में विभक्त कर दे। साथ ही, उनकी आवश्यकताओं की ओर ध्यान देवे।

सयानों को पाठ का सारांश, निबन्ध-लेखन तथा पत्र-व्यवहार का अभ्यास दिया जाय पर इस लिखित कार्य का विषय तथा उसका संशोधन पात्रानुकूल ही होवे।

६ तुलनात्मक-पद्धति.—सयानों को कई भाषाओं का ज्ञान रहता है। राष्ट्र-भाषा सीखते समय वे इस भाषा की अपनी मातृ-भाषा से तुलना करना चाहते हैं। उनके हाथ में ऐसी पुस्तकें रख दीजिए, जिनका अनुवाद या तो हिन्दी से मातृ-भाषा में अथवा

मातृ-भाषा से हिन्दी मे हुआ हो। मूल तथा अनुवादित ग्रन्थ को साथ-साथ पढ़ते-पढते उन्हें दोनो भाषाओं की समानता तथा भिन्नता का ज्ञान हो जाता है।

भाषानुवाद् भी सयानों को अति प्रिय होता है। इसके द्वारा व्याकरण का यथेष्ट ज्ञान दिया जा सकता है।

३. उपसंहार

इस तरह सयाने को बालक नहीं समझ लेना चाहिए। सयाने की बुद्धि परिपक्व हो जाती है। उसकी विचार-धारा नियमित हो चुकती है। उसे अपनी आवश्यकताओ का ध्यान रहता है।

सयाना एक तीव्र समालोचक होता है। वह उस शिक्षक या शिक्षण-पद्धति से भरोसा खो बैठता है, जो उसकी आशा के अनुरूप फल-प्रद न हो सके। शिक्षक को उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना चाहिए।

सयानो की शिक्षा गूढ रहस्यों से भरी पड़ी है इस ओर यथेष्ट शोध की आवश्यकता है।

—— * ——

तीसरा अध्याय

अभ्यास तथा नवीन परीक्षा-शैली

१ भूमिका

भाषा-शिक्षा मे अभ्यास का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। अभ्यास के बिना श्रेष्ठतम व्यक्ति भी भाषा नहीं सीख सकता है। भाषा-शिक्षा के शिक्षकों को विविध प्रकार के अभ्यास-प्रश्न तैयार करने पडते हैं। कुछ अभ्यास-प्रश्नो की चर्चा पिछले अध्यायों में हो चुकी है। शिक्षकों के सुभीते के लिए, इनका विवरण एक साथ इस अध्याय में दिया जा रहा है। इनके आधार पर, अभ्यास-प्रश्न सुगमता से बनाये जा सकते हैं।

हमारी शिक्षा का परीक्षा से बहुत ही समीपी सम्बन्ध है। आज हम परीक्षा के लिए पढाते हैं। पढ़ाने मे सहायता देने के हेतु परीक्षा नहीं लिया करते। हमारी परीक्षा-प्रणाली अत्यन्त ही दूषित है। इसे सुधारने की बहुत ही अधिक आवश्यकता है। इस सुधार का प्रथम सोपान है, उचित प्रश्न। नवीन परीक्षा-प्रणाली के अनुसार कुछ पश्नों तथा अभ्यास के नमूने इस अध्याय मे दिये गये हैं।

२. अभ्यास

१. **परिचय.**—भाषा के तीन अग हैं : वाचन, वाणी और रचना। अभ्यास का उद्देश्य इन तीनों अगों की उन्नति एव विकास करना है। अतएव अभ्यास-प्रश्न भी मुख्यतः तीन प्रकार के होंगे। विद्यार्थियों के वर्ग के अनुकूल ये प्रश्न पूछे जावे।

२. **वाचन.**—वाचन के प्रश्न, भाषा तथा भाव के आधार पर पूछे जा सकते हैं। नीचे कुछ अभ्यासार्थ प्रश्नों के उदाहरण दिये गये हैं

अ. भाषा

(१) अक्षरपूर्ति करो : क — ल, — ताब, ख — र।

(२) रिक्त स्थानों में ठीक शब्द भरो :

कुत्ता — है।

वह गला — — चिल्ला रहा है।

(३) वाक्यों में प्रयोग करो : पेट पालना, गैर, चल देना, दोगुना, हिम्मत हारना।

(४) इनमें से ठीक शब्द चुनकर खाली स्थानों में भरो—पक्का, प्रथम, फूला न समाया, नादानी :

(अ) डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद भारत के — राष्ट्रपति हैं।

(आ) मोहन राम का — मित्र है।

(इ) बुढ़िया की — के कारण, वह हैरान हो गया।

(ई) परीक्षा पास होने पर वह हर्ष से —।

(५) 'आ' समूह से ठीक क्रियाएँ चुनकर 'अ' समूह के वाक्यों को पूरा करो :

'अ'	'आ'
पक्षी आकाश में	खेल-कूद रहे हैं।
पशु जंगल में	बिखरी पड़ी हैं।
पुस्तकें मेज पर	उड़ते फिरते हैं।
लड़के मैदान में	चरते रहते हैं।

(६) पर्यायवाची शब्द बताओ : शुचि, पाणि, सहृदय, धनुर्धारी।

(७) विलोम (विरुद्धार्थी) शब्द बताओ : नूतन, तरल, मीठा, मेहनती।

(८) अन्तर स्पष्ट करो : गौरव–गुरु; दीन–हीन सूत–सुत।

(९) यदि किसी दूसरी भाषा के शब्द इस पाठ में हों तो उनके स्थान पर हिन्दी के शुद्ध रूप लिखो।

(१०) अर्थ स्पष्ट करो : टेढ़ी खीर है, अनुसन्धान के इतिहास में अमर रहेगी।

(११) इन वाक्यों को पूरा करो :

(अ) पृथ्वी इसलिए हिल उठती है कि ... ...।

(आ) समुद्र का पानी इसलिए खद्-खद् करके खौलने लगता है कि ......।

(१२) इन मुहावरों का अर्थ बताओ, तथा वाक्यों में प्रयोग करो : 'येन केन प्रकारेण', 'तिल धरने की जगह न होना', 'लकीर के फकीर होना'; 'लहू-लुहान हो जाना'।

(१३) भावार्थ समझाओ :

यह पुण्य-भूमि प्रसिद्ध है, जिसके निवासी आर्य हैं।
विद्या-कला-कौशल्य सबके, जो प्रथम आचार्य हैं ॥

(१४) इन्हें प्रसग के साथ समझाओ :

"पेत्रुस! तलवार म्यान मे रखो। मैंने तुम्हे यह नहीं कहा कि जो तलवार का सहारा ले, तलवार से उसका मुकाबला करो।"

आ. भाव

(१) जवाब दो :

(अ) हैदराबाद कहॉ है? उसे किसने बसाया?

(आ) अजन्ता और एलोरा कहॉ हैं? वहॉ देखने योग्य क्या है? ये गुफाऍ कैसे बनाई गई हैं?

(इ) दौलताबाद का पुराना नाम क्या है?

(२) सत्य हरिश्चन्द्र की कहानी मौखिक सुनाओ।

(३) इस पाठ के पढने से हमे कौनसा उपदेश मिलता है?

(४) इस कविता का शीर्षक 'मन-मोदक' क्यों रखा गया?

(५) किसी मण्डी में जाकर देखो कि वहाँ कितनी दूर-दूर से लोग आते हैं? कौन कौन सी वस्तुऍ बेचने के लिए लाते हैं? और, वहॉ का कारबार कैसे होता है?

(६) निम्न लिखित चाबी-शब्दों की सहायता से इस कहानी को सक्षेप मे लिखो :

धौम्य ऋषि, आरुणि को आज्ञा, फूटी मेड़, आरुणि की चेष्टा, मेड़ पर लेटना। रात्रि—आरुणि का न लौटना—धौम्य ऋषि खेत पर—आरुणि को आशीष।

२. वाणी.—वाणी-विकास के अभ्यास के कुछ नमूने पहले ही दिये जा चुके हैं।* यहॉ कुछ और उदाहरण दिये जा रहे हैं :

(१) प्रत्यक्ष पुनरुत्पादन.—अर्थात् शिक्षक के अथवा पाठ्य-पुस्तक के शब्दों को दोहराना।

(२) परिवर्तित पुनरुत्पादन.—इसके कई रूप हैं :

(अ) लिंग, वचन, पुरुष को बदल कर पढे या सुने हुए वाक्य को कहना।

---

* देखिए, पृष्ठ ११९ २१।

(आ) विद्यार्थियो द्वारा प्रश्न बनवाना। (इ) पाठ्य-पुस्तक पर प्रश्न पूछना। —ये किसी भी क्रम से पूछे जा सकते है।

(३) मुक्त पुनरुत्पादन.—इसके भी कई रूप है :

(अ) प्रश्नों या चावी-शब्दों को श्याम-पट पर लिखना। इनकी सहायता से विद्यार्थियों-द्वारा पाठ का आशय कहलवाना। (आ) कहानी या किसी वृत्तान्त को नये सिरे से कहलवाना; जैसे, कहानी को उसके एक पात्र-द्वारा कहलवाना। (इ) किसी पाठ के वृत्तान्त को विद्यार्थी से कहलवाना; उदाहरणार्थ, पाठ का विषय है–'एक गरमी का दिन'। विद्यार्थी इस पाठ का ऐसा वर्णन करे, मानो, वह घटनास्थल पर उपस्थित था।

४. रचना.—रचना के अभ्यास व्याकरण तथा लेखन–सम्बन्धी हो सकते है। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :

अ. व्याकरण

(१) शब्द-भेदों मे परिवर्तन-सम्बन्धी; जैसे : लिंग बदलो, वचन बदलो।

(२) शब्द-भेद तथा उनके प्रकार बताओ।

(३) भाषा की अशुद्धियॉ सुधारो।

(४) इन वाक्यों मे 'का' 'के' 'की' 'से' 'मे' 'को' 'के लिए' का ठीक ठीक प्रयोग करो।

(५) मूल शब्द बताओ, और बनाने के नियम लिखो।

(६) सन्धि-विग्रह करो।

आ. नियम-बद्ध रचना

(१) ठीक वाक्य बनाओ :

बाबर मे हिन्दुस्थान को आने पर सॉगा को राणा चित्तौर से लड़ना पड़ा।

(२) कोष्ठक मे दी हुई सूचनाओं के अनुसार वाक्यों को बदलो :

(अ) राजा बहुत चिन्ता में पड़ गये। (चिन्तित का प्रयोग करो।)

(आ) चिड़िया उत्तर दिशा में उडी। राजकुमार भी उसी ओर चला। ('जैसे' और 'वैसे' का प्रयोग करों।)

(इ) पिघली हुई धातुएँ बहने लगती हैं। ('पिघलकर' का प्रयोग करो।)

(३) वाक्य-रूपान्तर का अभ्यास।

(४) शब्द-निर्माण का अभ्यास। (अ) संज्ञाओं से बनी संज्ञाएँ। (आ) विशेषण से बनी संज्ञाएँ। (इ) संज्ञा से बने विशेषण। (ई) उपसर्ग का उपयोग। (उ) शब्द समूहों के लिए एक शब्द।

(५) विराम-चिह्न।

(६) वाग्धाराओं तथा मुहावरों का उपयोग।

इ. मुक्त रचना

(१) वार्त्तालाप—चित्र वर्णन या किसी घटना पर कथोपकथन।

(२) अनुच्छेद-रचना—एक अनुच्छेदवाली कहानी या रचना।

(३) अनुच्छेदों को जोडना।

(४) कथा-कहानी तथा चित्र या वस्तु का वर्णन।

(५) पत्र-लेखन—घरेलू और कामकाजी।

(६) निबन्ध, संवाद, वादानुवाद।

(७) अनुवाद, भावार्थ, संक्षेपीकरण, स्पष्टीकरण तथा संवाद-विवरण।

२. नवीन परीक्षा-शैली

१. **वर्तमान परीक्षा शैली**—परीक्षा की वर्तमान प्रणाली अत्यन्त ही दूषित है, पर सब से विषाक्त दोष है — निबन्ध-वत् प्रश्न (Essay-type questions)। इसके अनुसार किसी भी परचे में दस-बारह से अधिक प्रश्न नहीं पूछे जाते, तथा विद्यार्थियों को पाँच-छः प्रश्नों के उत्तर देना पडते हैं। इस प्रथा की दो उल्लेखनीय कमजोरियाँ हैं: (१) तीन-चार वर्ष की पढाई पर दस बारह प्रश्न बहुत ही कम होते हैं, और परीक्षकगण केवल चुने हुए अंश पर प्रश्न पूछते हैं। इसका फल यह होता है कि सम्पूर्ण पाठ्य-क्रम की जाँच नहीं हो पाती है, तथा शिक्षक और विद्यार्थीगण कुछ सम्भवित प्रश्नों का ही अध्यापन या अध्ययन करते हैं, और परीक्षक एवं उसकी प्रश्न शैली का पता लगाने मे व्यस्त हो जाते हैं। (२) उत्तरों की जाँच ठीक नहीं होती। उत्तर लम्बे होते हैं, तथा इनके जाँचने की कोई ठीक कसौटी नहीं है। देखा गया है कि यदि एक ही उत्तर दो भिन्न-भिन्न परीक्षकों-द्वारा जँचवाया जाय तो उनके दिये हुए गुणों में विशेष अन्तर रहता है। इतना ही नहीं, यदि वही उत्तर एक ही परीक्षक विभिन्न समय मे जाँचे तो विभिन्न समय के गुणों में बहुत अन्तर पाया जाता है।

इस दूषित प्रणाली से ऊब कर अनेक पाश्चात्य देशो मे प्रयोजन परीक्षा (Objective Tests) का उपयोग किया जाता है। इस प्रणाली के अनुसार प्रश्न का उत्तर कुछ ही शब्दो तथा कुछ ही सेकंडो मे दिया जा सकता है। इस कारण परीक्षा-प्रश्न-पत्र मे अनेक प्रश्न पूछे जा सकते हैं, तथा एक चतुर परीक्षक सम्पूर्ण पाठ्य-क्रम के एक-एक कोने के अंश पर छान-बीन कर प्रश्न पूछ सकता है। इन प्रश्नो के उत्तर भी निर्धारित रहते हैं। इस कारण इनकी जाँच परीक्षक की मर्जी पर निर्भर नहीं रहती है।

इस प्रणाली का सब से बड़ा दोष यह है कि विद्यार्थियो को रचना का वह अभ्यास नही मिलता, जो कि उन्हे निबन्धवत् प्रश्न से मिलता है। परीक्षा का बहिष्कार हम नहीं कर सकते, तथा चाहे हम कुछ भी क्यो न करे, शिक्षक सदैव परीक्षा के उद्देश्य से ही पढ़ावेंगे। जिन देशो ने केवल प्रयोजन परीक्षा-प्रणाली अपनायी है, उनके विद्यार्थियो की रचना मे शिथिलता पाई जाती है। इस प्रणाली मे परीक्षार्थी कभी कभी अन्दाज लगाकर भी उत्तर दे देते हैं। उनका ध्येय रहता है — 'तीर नहीं तो तुक्का।'

इस कमजोरी को दूर करने के लिए एक और नवीन प्रणाली का उपयोग किया जाता है, जिसका नाम 'लघु उत्तर परीक्षा' (Short-Answer-Test) है। इस प्रणाली के अनुसार परीक्षा के परचे मे अनेक प्रश्न पूछे जाते है, जिनका उत्तर तीन चार पंक्तियो मे दिया जाता है। सच पूछा जाय तो यह प्रणाली, ऊपर की दोनो प्रणालियो के समझौते के समान है। इसके उत्तर न प्रयोजन-प्रणाली के अनुसार तुले हुए होते हैं, और न निबन्ध-प्रणाली के अनुसार विस्तृत। इस प्रणाली को अपनाने पर न प्रयोजन-प्रणाली के अनुसार अत्यधिक प्रश्न पूछे जा सकते हैं, और न निबन्ध-प्रणाली के अनुसार अति अल्प। न इसमें अधिक अन्दाज ही लगाने की गुंजाइश रहती है, और न इसके द्वारा रचना का ही विशेष अभ्यास होता है।

इस प्रकार कोई भी पद्धति आदर्श नहीं है, तथा प्रत्येक पद्धति मे कुछ-न-कुछ गुण-दोष हैं। इनको सुधारने का भर-सक प्रयत्न हो रहा है। हमारी परीक्षा-पद्धति मे तीनों पद्धतियो को उचित स्थान दिये जायँ, तथा किसी भी परीक्षा-पत्र मे तीनो प्रकार के प्रश्न पूछे जायँ,—आधे निबन्ध-प्रश्न, एक चौथाई प्रयोजन-प्रश्न और शेष लघु-उत्तर-प्रश्न रखे जावें। चूँकि मानव-जीवन मे रचना का सबसे महत्व-पूर्ण स्थान है, इस कारण निबन्ध-प्रश्नों पर विशेष जोर दिया गया है। शिक्षक-गण इन प्रश्नो से परिचित ही हैं। अब नीचे प्रयोजन-प्रश्नो तथा लघु-उत्तर-प्रश्नों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

२. प्रयोजन-परीक्षा.—प्रयोजन परीक्षा-प्रश्नो के कुछ रूप अधो लिखित है :

[१] विधान शक्ति की जॉच—नीचे कुछ प्रश्न दिये हैं, जिनमें से प्रत्येक प्रश्न के तीन-तीन उत्तर दिये गये है। जो उत्तर सर्वाधिक अच्छा हो, उसकी बाईं ओर खण्ड में '×' ऐसा चिह्न लगाइए।

प्रश्न : जगत् मे सच्चा सेवक कौन है ?

	जो दूसरों की सलाह से काम कर अपने नाम का प्रसार करता है।
	जो अपनी सेवा का सफलता-पूर्वक प्रचार करता है।
	जो त्याग-भाव से मौनव्रत धारण कर सेवा करता है।

प्रश्न :—तलवार में जग क्यों लग जाता है ?

	पानी लगने के कारण।
	असावधानी के कारण।
	उपयोग न करने के कारण।

[२] शब्दार्थों की

नोट — गाय का बछडे से वही सम्बन्ध है, जो कुत्ते का -- से है। (बछिया, मेमना, पिल्ला।)

अब इसी प्रकार निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

(अ) भारतवासियों को रुपये से वही सम्बन्ध है जो अमरीकनों का— से है। (पौंड, डालर, येन)।

(आ) सज्ञा का विशेषण से वही सम्बन्ध है जो क्रिया का — से है।

(सर्वनाम, सयुक्त-क्रिया, क्रियाविशेषण, समास)।

[३] जानकारी की जॉच

प्रत्येक वाक्य में कोष्ठक के भीतर चार शब्द दिये है। उनमे से उस शब्द को रेखाङ्कित कीजिए, जिसके साथ पढने से किसी सत्य बात का बोध हो।

(अ) गान्धीजी का जन्म (राजकोट, अहमदाबाद, पोरबन्दर, सूरत) में हुआ था।

आ) बाईबल (हिन्दुओं, ईसाइयों, मुसलमानों, जैनों). का धर्म-ग्रन्थ है।

[४] शब्दार्थ

नीचे प्रत्येक शब्द या मुहावरे के चार अर्थ दिये गये हैं, जो अर्थ ठीक हो, उसका क्रमाङ्क कोष्ठक (   ) में लिखिए :

(अ) मल्लाह — (१) नाविक, (२) यात्री, (३) मछुआ (४) मौलवी। (   )

(आ) प्राण सूख जाना — (१) मर जाना, (२) घबरा जाना, (३) प्यास लगना, (४) उदास होना। (   )

[५] विपरीतार्थक शब्द

नीचे हर एक शब्द के चार उल्टे (विरुद्ध) अर्थवाले शब्द दिये गये हैं। सही विरोधार्थी शब्द का क्रमाक (   ) मे लिखिए।

(अ लड़ाई — (१) शान्ति, (२) प्रेम, (३) प्रीति (४) न्याय। (   )

(आ) प्रसन्न — (१) व्यस्त, (२) व्याकुल, (३) दीन, (४) दुखी। (   )

(६) शुद्ध हिज्जे

हर एक शब्द के चार हिज्जे दिये गये हैं, जो रूप शुद्ध हो, उसका क्रमाङ्क कोष्ठक मे लिखिए।

(१) बहूत, (२) बहोत, (३) बहौत, (४) बहुत। (   )

(१) तुमारा. (२) तुमेरा, (३) तूमारा, (४) तुम्हारा (   )

(७) शुद्ध शब्द

रेखाकित शब्दो को शुद्ध कर सामने की रेखा पर लिखिए।

(अ) यह भिखारी को रोटी दो। ——

(आ) वे लोग आज जाता है। ——

(८) सम्बन्धित शब्द

पहले वर्ग के जिस शब्द का सम्बन्ध दूसरे वर्ग के जिस किसी शब्द से हो, उसका नम्बर कोष्ठक मे लिखिए।

अ. वर्ग		आ वर्ग
विद्यार्थी	( )	(१) खेत
रोगी	( )	(२) पाठशाला
किसान	( )	(३) मन्दिर
पुजारी	( )	(४) दवाखाना

(९) पूर्ति

अक्षर शब्द या मुहावरा — इनके उदाहरण अभ्यास √ प्रश्नों मे दिये गये हैं।

(१०) सत्य-असत्य-परीक्षा

नीचे कुछ वाक्य दिये जाते हैं। सत्य वाक्य पर √ ऐसा चिह्न और असत्य वाक्य पर X ऐसा चिह्न लगाइए।

(अ) जवाहरलालजी भारत के प्रधान मन्त्री हैं। —

(आ) बंगाल की मुख्य पैदावार कपास है। ——

(इ) समास का अर्थ है संक्षेप या छोटा करना। ——

(११) बहुविध–चुनाव–प्रश्न (Multiple-Choice Test)

नीचे दिये हुए प्रत्येक खाने मे से ठीक शब्द चुनकर वाक्य बनाइए :

राम		गये थे।
सीता	बाजार	गया था।
गोविन्द और हरि		गई थी।

(१२) व्याकरण तथा रचना

(अ) वचन या लिंग बदलिए :

घोड़े दौड़ते है।

गाय चरती है।

(आ) इन वाक्यों के प्रश्नार्थक रूप लिखिए :

लडकी पढती थी। (क्या, क्यों का प्रयोग)

आप दिल्ली जावेंगे। (कब, कैसे का प्रयोग)

३. लघु उत्तर-परीक्षा.—इन प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में तीन-चार पंक्तियों मे दिये जाते हैं। इनका उपयोग अधिकतर अर्जित ज्ञान की भाव-परीक्षा के लिए होता है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :

(१) गान्धीजी के बाल-जीवन से तुम कौन से मुख्य तीन उपदेश ग्रहण कर सकते हो ?

(२) "राही, अपनी राह चला जा"—इस उक्ति का उपयोग तुम क्या अपने जीवन मे कर सकते हो या कर चुके हो ?

(३) इस पद्य की शेष पंक्तियों को पूरा करो :

घायल होकर गिरी सिंहनी, उसे वीर गति पानी थी।
... . ।
.. .. ॥

(४) तुम्हारी पुस्तक मे कहीं ग्रामोद्धार के अनेक उपाय बताये हैं। तुम किस उपाय को श्रेष्ठ समझते हो और क्यों ?

(५) मधु-मक्खी के जीवन के विषय में तुम पढ़ चुके हो। अब बताओ, तुम किस प्रकार मधु-मक्खी पाल सकते हो।

(६) उस कविता का शीर्षक और उसके कवि का नाम बताओ, जिससे निम्न-लिखित पंक्तियाँ ली गई हैं :

मीरा ने विष को चरणामृत कह ढाला था;
सुकरात सन्त ने पिया जहर का प्याला था।

४. उपसंहार

ऊपर बताये अनुसार अभ्यास तथा परीक्षा-प्रश्नों में एक नवीनता की आवश्यकता है। हमारे अध्यापन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए ज्ञान-वर्द्धन तथा छात्रों की विभिन्न शक्तियों का विकास करना; और येन केन प्रकारेण परीक्षा पास कराना, हमारा लक्ष्य नही होना चाहिए। परीक्षा-प्रश्नो से विद्यार्थियों की विचार तथा समझ-शक्ति की जाँच होना चाहिए, न कि उनके तोता-रटन्त गुण की।

—★—

चौथा अध्याय

उपसंहार

१ प्रारम्भ

इस अध्याय मे पॉच उल्लेखयोग्य विषयो की चर्चा की जा रही है : (१) राष्ट्र-भाषा का शिक्षक, (२) शिक्षा के सहायक साधन, (३) राष्ट्र-भाषा की कक्षा, (४) राष्ट्र-भाषा का अन्य विषयों से अन्तर्योग, और (५) हिन्दी का भविष्य।

२. राष्ट्र-भाषा का शिक्षक

इस पुस्तक मे राष्ट्र-भाषा-शिक्षा के विविध अगो की पूर्णत. चर्चा की गई है, जैसे, पाठ्य-क्रम, पाठ्य-पुस्तक, परीक्षा-शैली, वाचन, वाणी तथा रचना का विकास, इत्यादि। आदर्श शिक्षा के लिए इनका ज्ञान बहुत ही आवश्यक है। इन्हें सफलता-पूर्वक कार्य मे परिणत करने का उत्तरदायित्व शिक्षक पर है। वास्तव मे योग्य शिक्षक ही इस गुरुतर कार्य का उत्तरदायित्व वहन कर सकता है। अतएव राष्ट्र-भाषा-शिक्षा की सफलता के लिए योग्य शिक्षकों की बडी भारी आवश्यकता है।

प्रथमतः, शिक्षक को राष्ट्र-भाषा का यथेष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। शिक्षक की सामान्य योग्यता इतनी हो कि वह कम-से-कम हिन्दी मे 'बी ए.' या 'विशारद' परीक्षा पास हो। अपने विषय पर पर्याप्त अधिकार प्राप्त किये बिना कोई भी विशेषज्ञ उसे भली भॉति नही पढा सकता है — यह एक मानी हुई बात है। इसके साथ ही शिक्षक को विद्यार्थियो की मातृ-भाषा का भी ज्ञान होना आवश्यक है। इस प्रकार, शिक्षक का "उभय-प्रबोधक, चतुर द्विभाषी" होना चाहिए। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, शिक्षा-शास्त्र के मूल सिद्धातो मे से एक सिद्धान्त यह भी है — "ज्ञात से अज्ञात की ओर"। राष्ट्र-भाषा-शिक्षा बहुत कुछ, बालको के मातृ-भाषा-ज्ञान पर आधारित रहती है। शब्दार्थ या मुहावरे समझाने के लिए, रचना तथा व्याकरण सिखाने के लिए, तथा तुलनात्मक पद्धति अपनाने के लिए, शिक्षक को पद-पद पर विद्यार्थियो के प्राप्त मातृ-भाषा-ज्ञान का उपयोग करना पडता है। ऐसी स्थिति मे शिक्षक को राष्ट्र-भाषा के अतिरिक्त क्षेत्रीय भाषा का ज्ञाता होना वाञ्छनीय है। मातृ-भाषा हिन्दी होने पर भी,

क्षेत्रीय भाषा के ज्ञान के अभाव मे शिक्षक अहिन्दी क्षेत्रो के लिए अयोग्य एवं असफल ही सिद्ध होगा।

शिक्षक को द्विभाषी होने के साथ ही राष्ट्र-भाषा-शिक्षा-पद्धति का ज्ञाता होना चाहिए। आजकल "प्रशिक्षण महाविद्यालयो" के पाठ्य-क्रम मे इस विषय को समुचित स्थान दिया गया है। खेद है कि प्रशिक्षण महाविद्यालयो से इने-गिने ही राष्ट्र-भाषा शिक्षक निकलते है। इस कमी को पूरा करने के लिए, कई राज्यो ने राष्ट्र-भाषा-शिक्षक-प्रमाण-पत्र-परीक्षा का प्रारम्भ किया है। शिक्षक-गण स्वय पढकर, या, किसी अस्वीकृत सस्था मे अध्ययन कर, इन परीक्षाओं मे सफलता प्राप्त कर प्रमाण-पत्र प्राप्त करते हैं, परन्तु वास्तव मे उनकी शिक्षा अपूर्ण ही होती है। बिना योग्य प्रशिक्षण प्राप्त किये, उनका समुचित मार्गदर्शन नही होता है। जब वे स्वतः अपूर्ण रहते हैं, तो वे दूसरो को कैसे पूर्ण बना सकते हैं? बेचारा अन्धा स्वय तो मार्ग-ज्ञान से वञ्चित रहता है, वह दूसरो को किस प्रकार मार्ग दिखा सकता है? हमारे प्रशिक्षण महाविद्यालयो को समय समय पर "राष्ट्र-भाषा प्रशिक्षण शिविर" (Extension Courses in Hindi) चलाना उचित है। ये सत्र दिवाली या गरमी के अवकाश मे लगातार दो-तीन सप्ताह तक चलना चाहिए।

राष्ट्र-भाषा-शिक्षा का अध्यापन प्रारम्भ करने के पूर्व शिक्षक को पूर्व तैयारी के रूप मे, राष्ट्र-भाषा-शिक्षा का प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है। अध्यापन-कार्य के आरोह का यह सर्व प्रथम सोपान है। शिक्षक को अध्यापन विषयक अपनी योग्यता और ज्ञान की वृद्धि एवं विकास के लिए हिन्दी-साहित्य के अथाह सागर मे अवगाहन करते रहने की नितान्त आवश्यकता है। आजकल हिन्दी मे राष्ट्र-भाषा-शिक्षण विषयक अनेक रचनाएँ निकलने लगी है, और शिक्षा-पद्धति मे उचित परिवर्तन, सुझाव एव परामर्श प्रस्तुत किये जाते है। शिक्षको को अध्ययन-शील बनकर नवीन ज्ञान के सम्पर्क मे रहने की बड़ी आवश्यकता है। इसके साथ ही उन्हे बहुमुखी ज्ञानार्जन के लिए सामयिक मासिक, साप्ताहिक एव दैनिक पत्रो का अवलोकन नियमित रूप से करना चाहिए। इन साधनों से शिक्षक तथ्यो को हृदयगम तो करेगे ही, साथ ही भाषा के वर्तमान रूप से अधिक परिचय प्राप्त कर सकेगे। समय समय पर प्रशिक्षण महाविद्यालयो द्वारा परिचालित तथा परिशोधित पाठ्य क्रम का लाभ लेना भी शिक्षको के लिए आवश्यक है। ऐसा करने से अध्यापक नवीन शिक्षा-विधि का अनुभव लाभ कर सकते है।

यह स्मरणीय है कि निरा पुस्तकीय ज्ञान भले ही काम चलाऊ हो परन्तु वह यथार्थ एव पूर्ण नही कहा जा सकता है। अध्यापन एक कला है और अध्यापक एक कलाकार है। शिक्षक या अध्यापक की सफलता निर्भर रहती है, उसके स्वय के व्यक्तित्व

पर, मधुर स्वर, मनोवैज्ञानिक ज्ञान, विद्यार्थियों के प्रति स्नेह एव आकर्षण, राष्ट्र-भाषा के प्रति विशेष अभिरुचि तथा साधन-पूर्णता पर। पुस्तके घोंट घोंट कर ही कोई विद्वान् नही हुआ है, और न केवल पुस्तकीय-कीट बनकर किसीने जीवन में सफलता प्राप्त की है।

अध्यापक का मधुर भाषण बहुत काम करता है। उससे उसके विद्यार्थी उसके वशीभूत हो जाते हैं। वे उसके उच्चारण का अनुकरण कर अपना उच्चारण भी तदनुसार बनाते है। अध्यापक का मानस-शास्त्र-सबधी ज्ञान, उसे शैक्षणिक कार्य मे सहायता पहुँचता है। अध्यापक का प्रेमिल व्यवहार विद्यार्थियों को शिक्षक और शिक्षा की ओर आकृष्ट कर लेता है। राष्ट्र-भाषा के प्रति शिक्षक की अभिरुचि एव प्रेम होने से निश्चयही उसके पाठ रोचक होते हैं। वह सामान्य कठिनाइयों से कदापि नही घबरा सकता। असफल होने पर वह असफलता के कारणों का अनुसन्धान करता है, अपनी भूलों का परिमार्जन करता है तथा शिक्षा-पद्धति मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन करता रहता है। अपने इसी चातुर्य एव साधन-सम्पन्नता के फल-स्वरूप उसे जय-लाभ होता है।

२. शिक्षा के सहायक साधन

१. प्रारभ—शिक्षा के अनेक सहायक साधन हैं। इनके द्वारा पढाना सरल हो जाता है, पाठ मनोरजक बनते हैं तथा विद्यार्थियों को विद्याध्ययन मे सुगमता होती है। साधनों का उपयोग विद्यार्थियों की आयु तथा आवश्यकतानुसार करना चाहिए। नीचे कुछ मुख्य सहायक साधनों पर प्रकाश डाला जाता है।

२. श्याम-पट.—श्याम-पट शिक्षक तथा विद्यार्थियों का माध्यम एव सखा है। श्याम-पट का स्थान ऐसा हो, जहाँ से प्रत्येक विद्यार्थी सुगमतापूर्वक उसे देख सके। उस पर यथोचित प्रकाश पड़ना चाहिए, किन्तु उसे झलमलाना नही चाहिए, जिससे दर्शकों को चकाचौंध हो। शब्द और शब्दार्थ, आवश्यक वाक्य तथा मुहावरे, कहानियों की रूप-रेखा, निबन्धों के ढॉचे आदि श्याम-पट पर लिखे जायँ।

श्याम-पट-सार शिक्षक के अध्यापन का प्रतिबिम्ब है। शिक्षक को पहले ही सोच लेना चाहिए कि उसे श्याम पट पर क्या लिखना पडेगा। श्याम-पट-सार निबन्ध-रचना के समान है। लिखे गये अश सूत्र-बद्ध हों, लिखने में क्रम हो, तथा प्रत्येक कथन एक दूसरे से श्रृंखलित हों।

श्याम-पट पर लिखित अश की लिखावट स्पष्ट हो। उसमे भाषा-सम्बन्धी कोई अशुद्धि या त्रुटि न हो। शीर्षक तथा महत्व-पूर्ण अंग आवश्यकतानुसार रेखाङ्कित कर प्रदर्शित किये जावें।

३. कार्ड और चार्ट.—इनका विविध प्रकार से उपयोग किया जाता है, जैसे, अक्षर कार्डों के द्वारा अक्षर सीखना या शब्द बनाना और पहचानना, शब्दों के हिज्जे गिनाना, अक्षर-पूर्ति करना तथा वाक्य-रचना करना। शिक्षकों को वर्ग की आवश्यकता के अनुसार अपने चार्ट तैयार कर लेना चाहिए, जैसे, व्याकरण तथा हिज्जे की अशुद्धियाँ, काल-रचना, उपसर्ग, प्रत्यय, इत्यादि।

कार्डों में दीपक कार्ड (Flash Card) बहुत ही उपयोगी है। इसके द्वारा वाक्य-रचना तथा शब्दों के उचित उपयोग का अच्छा अभ्यास विद्यार्थियों को दिया जा सकता है। यह बहुत ही आसानी से बनाया जा सकता है। इसके बनाने की रीति नीचे लिखी जाती है।

एक चौकोर बड़ा कागज लीजिए। कागज यथा सम्भव मोटा हो। इसे ठीक बीच में चौकोर काट दीजिए, जिसमें इसमें पहनाई गई पट्टी के सरकाने पर, पट्टी का लिखा अंश उसमें से स्पष्ट दिखे। कागज की पट्टी पर्याप्त लम्बी हो। उस पर चित्र में प्रदर्शित ढंग से शब्द लिखे हों। जब यह पट्टी सरकाई जावे, तब मध्य के कटे हुए भाग में जो शब्द दिखाई पड़े, विद्यार्थीगण उस शब्द को दर्शाने वाली वस्तु उठाकर बतावें। कभी-कभी दो पट्टियाँ पहनाकर तथा कागज पर × चिन्हित स्थान पर शब्द लिख कर वाक्य-रचना का अभ्यास कराया जाता है।
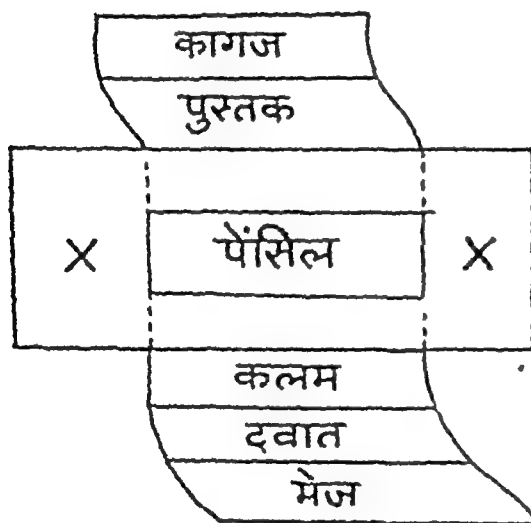
४. पदार्थ या वस्तुएँ.—भाषा-शिक्षा में प्रत्यक्ष विधि का महत्त्व-पूर्ण साधन है। फल, फूल, पत्ते, बीज आदि लाकर अनेक प्रकार के शब्द पढ़ाये जा सकते हैं। इनके द्वारा उनके आकार, रंग, रूप, स्वाद इत्यादि को समझाया जा सकता है।

५. चित्र, मानचित्र, चार्ट और प्रतिकृतियाँ.—भाषा-शिक्षा में इन सब का समुचित उपयोग करना चाहिए। किसी भी पाठ की विषय-चर्चा, चित्र-वर्णन, निबन्ध-शिक्षा, इत्यादि के लिए, चित्र बहुत ही लाभ-दायक हैं। साहित्य में कभी कभी अनेक दृश्यों का [illegible] आ जाता है, जैसे, बनारस का घाट, कश्मीर में वसन्त ऋतु, [illegible] [illegible] की चौपाई इत्यादि। प्रसिद्ध [illegible] तथा कवियों का चित्र बनाने से विद्यार्थियों

मे उनके विषय मे जानने का उत्साह बढता है। इसी प्रकार अनेक विषय चित्र-द्वारा समझाने पर, सरल हो जाते हैं जैसे, वायुयान के विभिन्न भाग, पर्वतारोहण, बेतार-का-तार, इत्यादि। पुस्तक मे यदि चित्र हो, तो उनका उपयोग करना उचित है। शिक्षक बाहरी चित्रों का प्रयोग उसी स्थिति मे करे, जब वे पर्याप्त बडे हो तथा पाठ्य-विषय के लिए उपयोगी हो। उपयोगी चित्र पाठ मे सचमुच जीवन डाल देते हैं।

मान-चित्रों का उपयोग यात्रा-सबधी पाठो मे अधिकतर किया जाता है जैसे, बम्बई से लन्दन, चीन-यात्रा, मार्कोपोलो की यात्रा, इत्यादि। चार्ट-द्वारा कठिन विषय पढ़ाना सरल हो जाता है। रसो के अग-प्रत्यग या अलकारों के भेदोपभेदों का विवरण देने के लिए, वाक्य-निर्माण-पद्धति का परिचय कराने के लिए शिक्षकों को चार्ट का उपयोग करना चाहिए।

प्रतिमूर्ति दिखाकर तथा उस पर उचित प्रश्न पूछकर शिक्षक कठिन पाठो को सरल बना सकते हैं उदाहरणार्थ, रेडियो तथा ताजमहल के विभिन्न भाग प्रतिमूर्ति-द्वारा सहज मे ही समझ मे आ जाते हैं। कक्षा मे कुछ कवियों की प्रतिमूर्तियाँ रख लेना चाहिए।

६. ग्रामोफोन, टेप-रिकार्डर, मैजिक लैटर्न एपिडाइस्कोप, चल-चित्र, रेडियो.—इन श्रव्य और दृश्य साधनों के द्वारा पाठ सुबोध और रोचक बन जाते हैं। उच्चारण-शिक्षा के लिए ग्रामोफोन तथा टेप-रिकार्डर बहुत ही उपयोगी है। ग्रामोफोन-द्वारा कविताएँ, गीत तथा महापुरुषों के सन्देश सुनाये जा सकते है। मैजिक लैंटर्न और एपिडाइस्कोप-द्वारा विभिन्न दृश्य दिखाये जा सकते है। चल-चित्र-द्वारा इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल, सामान्य ज्ञान विद्यार्थियों को सुगमता से दिया जा सकता है। यदि किसी नाटक या उपन्यास का बोलपट प्राप्त हो, तो वे विद्यार्थियो को दिखाये जावे।

राष्ट्र-भाषा के अनेक कार्य-क्रम कई रेडियो स्टेशनो से प्रसारित होते हैं। राष्ट्र-भाषा सिखाने में ये अत्यन्त उपयोगी होते हैं। रेडियो-द्वारा उत्कृष्ट वार्तालाप, कविताएँ, गीत और सवाद सुनने को मिलते हैं। इससे उच्चारण सुधरता है, राष्ट्र-भाषा के प्रति प्रेम बढता है तथा साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न होती है।

७. पर्यटन.—समय-समय पर विद्यार्थियों को प्राकृतिक स्थानों, ऐतिहासिक स्थानो, चिडिया-घर, अजायब-घर, स्टेशन, प्रसिद्ध शहर, कारखानों, प्रदर्शिनियों इत्यादि की सैर कराना चाहिए। विद्यार्थीगण अच्छी तरह इनका अवलोकन करे। रचना-पाठ तथा कठिन विषय समझाने के लिए पर्यटन अत्यन्त उपयोगी है। इसके द्वारा विद्यार्थियों की कल्पना तथा निरीक्षण-शक्ति बढती है, और उन्हें स्वस्थ एव स्वच्छ वातावरण मे विहार करने का सुअवसर प्राप्त होता है।

४. राष्ट्र-भाषा की कक्षा

आज समस्त देश की माध्यमीक शालाओं में हिन्दी की शिक्षा 'अनिवार्य' है। प्रशिक्षण विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में 'राष्ट्र-भाषा शिक्षण' का एक विषय रखा गया है। इस भाषा की व्यवस्थित शिक्षा के लिए राष्ट्र-भाषा की कक्षा की आवश्यकता समझी जाने लगी है। इस कक्षा में निम्नलिखित सामग्री होना चाहिए :

(१) ससार का भाषा मान-चित्र।

(२) भारत का भाषा मान-चित्र।

(३) भारत का मान-चित्र तथा हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों की जन्म-भूमि, जो कवि के चित्र-द्वारा प्रदर्शित की गई हो।

(४) प्रसिद्ध कवियों के चित्र तथा प्रतिमूर्ति।

(५) हिन्दी भाषा के विकास का मान-चित्र।

(६) राष्ट्र-भाषा-शिक्षा के कार्ड और चार्ट —— नागरी अक्षर तथा अङ्क, व्याकरण, उच्चारण, हिज्जे तथा व्याकरण की भूलें, वाक्य निर्माण, शब्द तथा सूक्ति-भण्डार, इत्यादि।

(७) हिन्दी-साहित्य में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न वृक्षों, फलों, लताओं, पक्षियों, पशुओं, दृश्यों आदि के चित्र।

(८) अभिधान-कोश, शब्द-कोश, विश्व-कोश।

(९) क्रमिक पाठ्य-पुस्तकें, हिन्दी-साहित्य के इतिहास की पुस्तकें, निबन्ध तथा व्याकरण की पुस्तकें, मातृ-भाषा तथा हिन्दी के व्याकरण।

(१०) ग्रामोफोन, रेडियो, मेजिक लैटर्न, एपिडाइस्कोप, टेप-रिकार्डर तथा प्रोजेक्टर (बृहत्प्रदर्शक)।

उपर्युक्त अनेक सामग्रियाँ शिक्षा के सहायक साधन का काम देती हैं। थोडासा प्रयत्न करने पर प्रत्येक सस्था में राष्ट्र-भाषा का एक छोटा-सा संग्रहालय या अजायब-घर निर्मित हो सकता है।

५. राष्ट्र-भाषा का अन्य विषयों से अन्तर्योग

१. विषयों का पारस्परिक योग.—सभी विद्वानों ने एक मत होकर स्वीकार किया है कि ससार के सभी विषयों में एक पारस्परिक योग है। विज्ञान से स्पष्ट है कि नैसर्गिक जगत् अनेक तत्वों का सार-भूत है। इतिहास सिखाता है कि किसी भी राष्ट्र की

उन्नति उसके जन-समुदाय की सम्मिलित चेष्टा का प्रतिफल है। इसी प्रकार विद्यालय के पाठ्य विषयो मे भी पारस्परिक अन्तर्योग है। भाषा, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गणित, इत्यादि स्वाधीन विषय अवश्य हैं, पर इन प्रत्येक विषय का आपस मे घना सम्बन्ध है। राष्ट्र-भाषा-शिक्षक को चाहिए कि अध्यापन के समय वह छात्रों के अन्य विषयों के ज्ञान का उपयोग करे तथा अपने सह-शिक्षको की सहायता ले। अब यह देखा जाय कि राष्ट्र-भाषा का अन्य विषयो से कैसा अन्तर्योग है, तथा इसका किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है।

२ **भाषाओ से सम्बन्ध**—राष्ट्र-भाषा के अतिरिक्त माध्यमिक शालाओं तथा कालिजो मे मातृ-भाषा, सस्कृत तथा अँग्रेजी सिखाई जाती है। इस पुस्तक के विभिन्न भाग मे यह स्पष्ट रीति से समझाया गया है कि राष्ट्र-भाषा-शिक्षा विद्यार्थियों की मातृ-भाषा-शिक्षा के ज्ञान की नीव पर देना उचित है। अक्षर-परिचय तथा व्याकरण-शिक्षा तुलनात्मक पद्धति द्वारा देना चाहिए। जो विद्यार्थी अपनी मातृ-भाषा ठीक तरह पढ़ नहीं सकता, वह राष्ट्र भाषा का सुवाचन नहीं कर सकता।

अन्य भाषाओं के ज्ञान की सहायता अनेक प्रकार से मिल सकती है, उदाहरणार्थ, हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों मे अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के श्रेष्ठ लेखकों के अनेक अनुवादित लेखांश रहते हैं। जब ऐसे अंश आवें, तब विद्यार्थियों को अपनी मातृ-भाषा में मूल रचना पढने के लिए उत्साहित करना चाहिए। बगाली बालक हिन्दी में अनुवादित रवि बाबू, शरत् बाबू, बंकिमचन्द्र, द्विजेन्द्रलाल के लेख अवश्य पढे, और वे मूलरचना का आस्वाद अवश्य प्राप्त करे। इसी प्रकार गुजराती-विद्यार्थी श्री कन्हैयालाल मुशी के उपन्यास, मराठी-छात्र श्री हरिनारायण आप्टे की रचनाएँ तथा तामिल बालक कवि-सम्राट् कंबन की कविताएँ पढ़ सकते हैं। इसी भाँति हिन्दी में अनेक सस्कृत तथा अँग्रेजी ग्रन्थों का अनुवाद हुआ है। हिन्दी बालक उन ग्रन्थों की मूल पुस्तके पढ़ने से अपना मुँह न मोड़े। इस तुलनात्मक पद्धति द्वारा विद्यार्थियो की भाषा-शक्ति का विकास होता है, तथा साहित्य के प्रति उनकी रुचि बढती है।

३ **इतिहास तथा भूगोल से सम्बन्ध**.—प्रसिद्ध भौगोलिक फेयरग्रीव का कथन है, "While history deals with drama, geography deals with the stage" * यह अतीव सत्य है। भूगोल और इतिहास में निकटतम सम्बन्ध है, पर इन दोनों का पारस्परिक योग भाषा-द्वारा ही है। भाषा ही इन्हें सजीव बनाती है। इस मे कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है कि यदि हम यों कहें, "इतिहास गायक है, भूगोल वाद्य-यन्त्र है, तथा भाषा गीत है।"

---

* J Fairgrieve **Geography in Schools** London University Press, 1933, p 61

भाषा का कोई भी ग्रन्थ लिया जाय उदाहरणार्थ, गान्धीजी की आत्म-कथा। गान्धीजी ने इस महान् ग्रन्थ मे वर्तमान भारत की राजकीय, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति की छाप लगी हुई है। यह इतिहास है। ग्रन्थ मे नाना देशो, शहरो आदि के नाम, उनकी जल-वायु तथा उपजों का उल्लेख पाया जाता है, यह है भूगोल। पर यह ग्रन्थ सर्वाधिक प्रिय है अपनी भाषा के कारण।

हिन्दी मे अनेक पाठ, कविताएँ रचनाएँ तथा पुस्तके ऐसी हैं, जो ऐतिहासिक एवं भौगोलिक प्रसगो से भरी पड़ी हैं, उदाहरणार्थ ली जाय प्रसिद्ध कवियित्री सुभद्राकुमारी चौहान की कविता "झासी की रानी"। इस कविता को पढ़ते ही नस-नस मे बिजली कौंध जाती है और भुजाएँ फडक उठती हैं; पर इसे समझने के लिए आवश्यकता होती है प्रथम स्वाधीनता संग्राम का ज्ञान तथा उत्तर भारत के भौगोलिक स्थानो का परिचय। ऐसे अवसर पर हिन्दी-शिक्षक को इतिहास तथा भूगोल शिक्षकों की सहायता लेना चाहिए।

४. **विज्ञान तथा गणित से सम्बन्ध.**—हिन्दी पाठ्य-पुस्तको मे विज्ञान के अनेक पाठ रहते हैं; जैसे, जगदीशचन्द्र बसु, बेतार-के-तार, चल-चित्र, समुद्र के गर्भ मे, वायुयान इत्यादि। बहुधा भाषा-शिक्षक विज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं; पर ऐसे पाठो मे वैज्ञानिक तत्वों की चर्चा रहती है। उन्हे समझाने के लिए हिन्दी शिक्षक विज्ञान के शिक्षक की सहायता ले। इसी प्रकार, यदि विज्ञान के अभ्यास का विवरण विद्यार्थीगण हिन्दी भाषा मे लिखें, तो विज्ञान शिक्षक को विद्यार्थियों की भाषा का सशोधन करना चाहिए। वह यह कदापि न सोचे कि सशोधन तो भाषा-शिक्षक के हिस्से का काम है, मेरे उत्तरदायित्व का नहीं है।

गणित का भाषा से घनिष्ट नाता है। गणित की बहुत-सी भूले भाषा की कमजोरियों के कारण आ जाती है। बहुत से विद्यार्थी गणित के प्रश्न इसलिए नहीं समझ पाते कि उन्हें मौन वाचन का अभ्यास समुचित नही रहता है। इन त्रुटियो को दूर करना भाषा-शिक्षक का कर्तव्य है।

५. **राष्ट्र-भाषा तथा कला.**—भाषा की पाठ्य-पुस्तकों मे कभी-कभी चित्र-कला, सगीत-कला, हस्त-कला आदि के पाठ आ जाते हैं। शिक्षको का कर्तव्य है कि वे इन विषयो के पाठो का प्रयोगात्मक अथवा व्यावहारिक ज्ञान विद्यार्थियो को करावे, जिससे उनकी भाषा सम्बन्धी कठिनाइयो का निराकरण हो जावे।

६. **अन्तर्योग मे अतिरेक.**—उपर्युक्त रीति से पाठ्य-विषयो का पारस्परिक समन्वय विद्यार्थियों को कठिन विषय समझाने मे सहायक सिद्ध होता है, विद्यार्थियो को

विशेषज्ञों के ज्ञान का समुचित लाभ मिलता है, वे कई विषय एक साथ सीख लेते हैं, तथा उनके पारस्परिक अन्तर्योग को समझ जाते हैं। इस पद्धति के द्वारा शिक्षा भी व्यवस्थित तथा सयत हो जाती है और शिक्षकों का कार्य-भार भी कुछ अशों में हल्का हो जाता है।

पर इस पद्धति का उपयोग समझ-बूझ कर ही करना चाहिए। विषयों का अन्तर्योग सदा स्वाभाविक होना चाहिए और उतना ही होना चाहिए, जितना आवश्यक हो। उदाहरणार्थ "झाँसी की रानी" सिखाते समय गणित के ऐसे प्रश्न न किये जावें—'यदि रानी के लश्कर में आठ हजार सिपाही थे तो बताओ दो महीने की अवधि में सेना के भोजन का खर्च कितना पड़ा होगा? प्रति दिन प्रति सिपाही के लिए आधा सेर आटा, एक पाव चावल और एक छटाक दाल लगती थी। उनका भाव क्रमश: प्रति सेर ।।) ।=) तथा ।।।) था।

इस पद्धति की सफलता बहुत कुछ शिक्षकों के सहयोग पर अवलम्बित रहती है। प्रत्येक शिक्षक को आरम्भ में ही सोच लेना चाहिए कि उसे अपने विषय के किन-किन अंगों को समझाने के लिए अपने किस साथी की सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। इन आवश्यकताओं की ओर ध्यान देते हुए प्रत्येक शिक्षक अपने कार्य-क्रम में हेर-फेर कर सकते हैं। ये अंग उस समय पढ़ाये जावें, जब इनका ज्ञान किसी दूसरे विषय के समझने में आवश्यक हो। यदि ऐसा करना सम्भव न हो तो उसे इस बात की विशेष रखना रहना चाहिए कि उसकी सहायता की आवश्यकता कब और कहाँ होगी।

६. हिन्दी का भविष्य

दिनाङ्क १४ सितम्बर, १९४९ भारतीय इतिहास की एक गौरव-पूर्ण तिथि है। इस दिन स्वतन्त्र भारत की संविधानसभा ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा और देवनागरी को राष्ट्र-लिपि घोषित किया था।

वास्तव में संविधान ने एक वस्तु-स्थिति पर मोहर लगाई थी। अतीत से ही हिन्दी को यह मान मिलता रहा है। सदियों से उसे सम्पूर्ण देश के सन्तों का आशीर्वाद, जन-नायकों का बल तथा जनता का समर्थन प्राप्त होता रहा है। मरुभूमि मेवाड़ की मन्दाकिनी मीरा, महाराष्ट्र के हृदय-देवता नामदेव और मिथिला के मुकुट विद्यापति ने अपने प्रान्त की भाषा के साथ हिन्दी का स्वर ऊँचा कर अपनी काव्य-साधना में हिन्दी को अमरत्व प्रदान किया। शताब्दियों से हिन्दी अपनी बोलियों की तरगों में देश में तरंगित होती रही, और हिन्दी का काव्य-साहित्य प्रान्तीय सीमाओं में आबद्ध न होकर अखिल भारतीय रूप में मान्य हुआ।

आज प्रत्येक भारत-वासी बढी तीव्रता से यह अनुभव कर रहा है कि जितनी जल्दी हिन्दी-साहित्य का प्रचार देश के कोने कोने मे फैले, उतना ही सम्पूर्ण देश के लिए कल्याणप्रद होगा। अब तो अनेक सरकारी विभागो—तार, डाक, रेडियो, याता-यात मे हिन्दी की धूम है। समस्त देश में इसकी शिक्षा किसी-न-किसी रूप मे अनिवार्य है। शीघ्र ही केन्द्रीय सरकार के सभी कार्य एक दिन हिन्दी मे होने लगेगे, तथा अन्तर्प्रान्तीय और केन्द्र से पत्र-व्यवहार हिन्दी मे ही होगा।

पर हिन्दी का भविष्य निर्भर है वर्तमान छात्रों पर, वे ही देश के भावी नागरिक है। यदि विद्यालय मे उनकी राष्ट्र-भाषा की जड़ सुदृढ न होगी, तो राष्ट्र-भाषा की उन्नति मृग-तृष्णा ही बनी रहेगी। इसलिए यह आवश्यक है कि हिन्दी की पढाई और हिन्दी-पढाने के ढगो मे ऐसे सुधार किये जावे कि विद्यार्थियो की, इस भाषा के प्रति दिलचस्पी और रुझान बढे, तथा इसे वे सुगमता से सीख सके।

हिन्दी की उन्नति के लिए हमे दो कार्य और करना होंगे : हिन्दी भाषा की शक्ति बढाना और आपस के झगडो को निपटाना। राष्ट्र-भाषा के पद पर अधिष्ठित होने मे हिन्दी को "भाषा की दृष्टि से मान्यता प्रदान की गई है, साहित्य की दृष्टि से नहीं।" बॅगला, मराठी, तामिल, तेलगू आदि मे हिन्दी से बृहत् साहित्य हैं, परन्तु हम सभी चाहते हैं कि हिन्दी भारतीय विचारो का दर्पण हो और देश की जीती-जागती निशानी हो। इस कारण हिन्दी-साहित्य मे अनेक उपयोगी रचनाओं की आवश्यकता है : विश्व-कोष, विशिष्ट शब्दावली, बाल-साहित्य, विश्वविद्यालयीन साहित्यिक पुस्तके तथा अन्य पुस्तके, आदि की।

आज हिन्दी-प्रेमी हिन्दी की उन्नति के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। पिछले दस वर्षों मे हिन्दी-साहित्य का विकास सभी क्षेत्रो में पिछले पचास वर्षों से अधिक ही हुआ है। अनेक उपयोगी विषयों के ग्रन्थ अब अधिकाधिक सख्या मे प्रकाशित हो रहे हैं और उनसे विश्वविद्यालय के उच्च पाठ्य-क्रमो की मॉग पूरी हो रही है। भारत के सविधान मे स्वीकृत भाषाओ के अनेक कृतिकारों की रचनाओ का अनुवाद हिन्दी मे हो रहा है।

हिन्दी का प्रश्न कभी-कभी राजनीतिक प्रश्न हो पडता है। इसे प्रधानता मिलने के कारण कहीं-कही क्षोभ भी है। कई क्षेत्रो के निवासी हिन्दी को हीन-दृष्टि से देखते है, इस कारण राजनीतिक वर्ग और दलो के बीच मे हिन्दी पिसी जा रही है। यह परिताप का विषय है। हिन्दी को किसी भी भाषा के ऊपर लादने का विचार हिन्दी भाषियों मे नहीं है। और यदि वह कुछ व्यक्तियो मे हो, तो वह अनुचित है। हिन्दी तो सभी

प्रान्तीय भाषाओं को फूलते-फलते देखना चाहती है। वह उन्हें अपनी सहयोगिनी के रूप में राष्ट्रीयता की भाव-सम्पत्ति की वादिका समझती है। जैसा कि सूचना एव प्रसार विभाग के मत्री डॉक्टर बाल-कृष्ण विश्वनाथ केसकर ने कहा है :

> राष्ट्र-भाषा का आन्दोलन प्रेम का आन्दोलन है। हृदय जीत कर और सहयोग लेकर ही हम इसमें सफल हो सकते हैं।

—— ★ ——

परिशिष्ट

पहला परिशिष्ट

पाठ-सूत्र

पाठ-सूत्र १ (गद्य)*

कक्षा : १ (प्रथम तीन महीने)। समय : ४० मिनिट।

पुस्तक : हिन्दी प्रवेशिका। पाठ : तीसरा।†

उद्देश्य—कुछ शब्दों को समझाना तथा सस्वर वाचन का अभ्यास कराना।

अ. प्रस्तावना

पिछले पाठ को दुहराना—शिक्षक निम्न-लिखित अक्षरों को श्यामपट पर लिखता है और जाँच करता है कि विद्यार्थी उन्हें पहिचान सकते हैं या नहीं :

क, थ, र, ब, फ, न, स

आ. हेतु-कथन—आज हम तीसरा पाठ पढ़ेंगे।‡

इ. विषय-निरूपण

(अ) नये शब्द

१. उच्चारण-अभ्यास : आदर्श—सामूहिक—वैयक्तिक।

२. अर्थ-बोध :

(१) पुस्तकों के चित्रों के आधार पर—नहर, बतख, आग, बरतन।

(२) कार्य-द्वारा—चल, इधर, उधर, टहल, पकड़, कस, सरपट, रख।

(३) वस्तु-द्वारा—कपड़ा, बटन।

(४) मातृभाषा का उपयोग—मत, गमन, उबटन।

(आ) सस्वर वाचन : आदर्श, समवेत, व्यक्तिगत।

---

* पृष्ठ ६० में विवेचित पद्धति के अनुसार।

† अगला पृष्ठ देखिए।

‡ शिक्षक कहता है।

ई. पुनरावर्तन (जाँच और अभ्यास)

(१) शिक्षक चित्रो की ओर संकेत करता है, विद्यार्थी शब्द बताते हैं।

(२) शिक्षक अभिनय करता है, विद्यार्थी क्रिया-सूचक शब्द बताते हैं।

(३) शिक्षक मातृभाषा या हिन्दी मे कुछ शब्द कहता है, तथा उनका अनुवाद विद्यार्थियो से पूछता है।

(४) शिक्षक कुछ अक्षर श्याम-पट पर लिखता है, विद्यार्थी रिक्त-स्थानों की पूर्ति कर शब्द पूरा बनाते हैं।

उ. प्रयोग

ऊपर के अभ्यास के अनुसार, विद्यार्थी एक दूसरे से प्रश्न पूछते हैं। आवश्यकतानुसार, कक्षा दो भागों में बाँट दी जा सकती है।

पाठ तीसरा

मदन, नहर पर चल।

इधर उधर मत टहल।

बतख मत पकड।
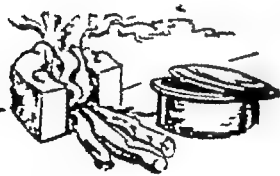
आग पर बरतन रख। जल गरम कर।

बदन पर उबटन मल।

दशरथ उधर लख।

उधर चल।

बरगद तक सरपट चल।

पाठ-सूत्र २ (गद्य) *

कक्षा : १ (द्वितीय तीन महीने) । समय : ४० मिनिट ।

पुस्तक : हिन्दी प्रवेशिका । पाठ : ग्यारहवॉ (जैसो को तैसा)† ।

उद्देश्य—कहानी समझना ।

अ. प्रस्तावना—कुछ प्रश्न पूछकर, शिक्षक पिछला पाठ दुहराता है ।

आ. हेतु-कथन—आज हम ग्यारहवॉ पाठ पढेंगे ।

इ. विषय-निरूपण

१. उच्चारण-अभ्यास (नये शब्द) : आदर्श-समवेत-व्यक्तिगत जॉच ।

२. चर्चा-विद्यार्थी ग्यारहवॉ पाठ खोलते हैं । चित्रों पर प्रश्न पूछते हुए, शिक्षक कहानी की मौखिक चर्चा करता है । जैसे .

(१) पहला चित्र : यह कौनसा जानवर है ? हाथी कहॉ खडा है ? दर्जी उसे क्या दे रहा है ? हाथी केले का क्या करता है ?

शिक्षक खुद कहता है : इस हाथी का नाम ऐरावत है और दर्जी का नाम मोहन । ऐरावत रोज यमुना नहाने जाता था ।

(२) दूसरा चित्र : मोहन के हाथ में क्या है ? वह ऐरावत को क्या कर रहा है ? सुई चुभाने पर, ऐरावत ने क्या किया ?

शिक्षक कहता है : ऐरावत नहाने गया, और यमुना नदी से मैला पानी सूँड में भर लाया ।

(३) तीसरा चित्र : ऐरावत दुकान पर क्या उडेल रहा है ? यह पानी कैसा है ? इससे दूकान का क्या हुआ ?

चर्चा के साथ-साथ, शिक्षक नये शब्दों और मुहावरो का अर्थ छात्रों से निकलवाता है ।

३ सस्वर वाचन आदर्श-समवेत-व्यक्तिगत ।

---

* पृष्ठ ६६ में विवेचित पद्धति के अनुसार ।

† अगला पृष्ठ देखिए ।

ई. पुनरावर्तन

१. प्रश्न : (१) ऐरावत कौन था ? (२) मोहन कौन था ? (३) मोहन ऐरावत को प्रतिदिन क्या खाने को देता था ? (४) एक दिन, मोहन ने ऐरावत के शरीर मे सुई क्यों चुभाई ? (५) ऐरावत ने किस तरह बदला लिया ? (६) इस कहानी से तुम क्या सीखते हो ?

२. शब्दार्थ : प्रतिदिन, साफ करना, टस से मस न होना, उडेलना ।

उ. प्रयोग (खाली जगहों को भरो)

(१) हाथी सूँड से केले जाता था। (२) हाथी न हुआ। (३) ऐरावत यमुना मे करने गया। (४) ऐरावत ने दूकान पर पानी दिया।

पाठ ग्यारहवाँ

जैसे को तैसा

मथुरा शहर में एक हाथी था। उसका नाम था ऐरावत। वह प्रति दिन यमुना नदी मे नहाने जाता था।
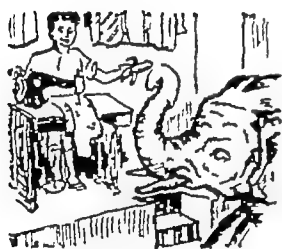
नदी के रास्ते पर एक दर्जी की दुकान पडती थी। दर्जी का नाम था मोहन। ऐरावत दुकान पर रोज ठहरता था। मोहन उसे कुछ केले खाने को देता था। हाथी उन्हे अपनी सूंड से उठाकर साफ कर जाता था।
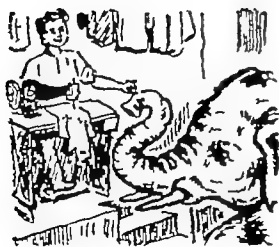
एक दिन दर्जी ने ऐरावत को केले न दिये। पर हाथी दुकान से टस से मस न हुआ। तब मोहन ने हाथी की सूँड मे सुई चुभा दी।

ऐरावत कुछ न बोला। चुपचाप स्नान करने चला गया। पर यमुना से लौटते समय, उसने अपनी सूँड मे कीचड़ और मैला पानी भर लिया।
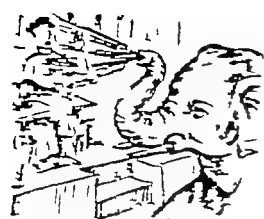
दुकान के सामने पहुँचने पर, ऐरावत ने सूँड़ में भरा हुआ मैला पानी दुकान के कपड़ों पर उड़ेल दिया।

इससे सब कपड़े खराब हो गये। मोहन का बहुत नुकसान हुआ। वह अपनी गलती पर पछताने लगा।

इस तरह हाथी ने बदला लिया।

कहा भी है :

जैसे को तैसा।

—— * ——

पाठ-सूत्र ३* (गद्य)

कक्षा : १ (अन्तिम चार महीने)। समय : ४० मिनिट।

पुस्तक : हिन्दी प्रवेशिका। पाठ : ग्यारहवाँ (जवाहरलाल नेहरू)।†

उद्देश्य—बोध-पठन का आरम्भ।

अ प्रस्तावना (निम्नलिखित प्रश्न पूछकर, शिक्षक पिछला पाठ दुहराता है) :

(१) ऐरावत कौन था ? (२) मोहन कौन था ? (३) ऐरावत ने मोहन से किस प्रकार बदला लिया ?

आ. हेतु-कथन—आज हम 'जवाहरलाल नेहरू' के विषय पढ़ेंगे।

इ. विषय-निरूपण

१. उच्चारण-अभ्यास (नये शब्द) : आदर्श—समवेत—व्यक्तिगत जाँच।

२. चर्चा :

शब्द या विचार		पाठन-विधि
तसवीर	..	यह किसकी तसवीर है ?
प्रधान मँत्री	..	ये हमारे देश के कौन हैं ?
मोतीलाल, स्वरूपकुमारी	.	नेहरूजी के माता-पिता का नाम क्या था।

* पृष्ठ ७० में विवेचित पद्धति के अनुसार।

† अगला पृष्ठ देखिए।

उम्र	...	तुम्हारी उम्र क्या है ?
शिक्षा		तुम इस स्कूल मे क्या कर रहे हो ?
	..	तुम्हारी शिक्षा कहाँ हो रही है ?
विलायत	.	मातृ-भाषा मे अर्थ बताना।
बैरिस्टरी	.	अर्थ समझाना।
स्वदेश		तुम्हारे देश का नाम बताओ।
,,		तुम्हारा स्वदेश क्या है ?
पैसा कमाना	...	नेहरूजी ने बैरिस्टरी क्यों की ?
देश-सेवक		वल्लभभाई पटेल एक प्रसिद्ध देश-सेवक थे।
देश-सेवा		वल्लभभाई ने देश का क्या किया ?
आदर	...	प्रत्यक्ष-विधि द्वारा।
नेहरू चाचा		बालक नेहरूजी को क्या कहकर पुकारते हैं ?
चिरायु	..	मातृ-भाषा मे अर्थ बतलाकर।

नोट—बीच-बीच मे, पाठ का साराश कहकर, शिक्षक को भिन्न-भिन्न भाग जोड़ना चाहिए। इससे विद्यार्थियो को पाठ का आशय समझ मे आ जाता है।

३. सस्वर वाचन : आदर्श—समवेत—व्यक्तिगत।

४. मौन वाचन (विद्यार्थियो के द्वारा)।

५. अन्य कठिनाइयो का हल :

शब्द या विचार		पद्धति
बन्द करना, घबड़ाना, पीछे पड़ना, ठहर न सकना	}	वाक्य-प्रयोग-द्वारा।
सारा	..	मातृ-भाषा मे अर्थ बतलाकर।

६. व्यक्तिगत सस्वर वाचन (कुछ विद्यार्थियो द्वारा)

ई. पुनरावर्तन

१. प्रश्न : (१) नेहरूजी के पिता का क्या नाम था ? (२) उनकी शिक्षा कहाँ हुई ? (३) उन्होने बैरिस्टरी क्यो छोड़ी ? (४) उनसे अँग्रेज क्यो डरते थे ? (५) आज हमारे प्रधान मँत्री कौन हैं ? (६) बच्चे उन्हे 'चाचा नेहरू' कहकर क्यों पुकारते हैं ?

२. हिज्जे सुधारो नेहरु, बिलायत, गाधी, परधान ।

३. प्रयोग—अर्थ लिखो : प्रधान, स्वदेश, पैसा कमाना, पीछे पडना, ठहर न सकना ।

पाठ बारहवॉ

चाचा नेहरू

यह तसवीर देखो ! यह पडित जवाहरलाल नेहरू की तसवीर है । क्या तुम इनको जानते हो ? वे भारत के प्रधान मत्री हैं ।

उनके पिता का नाम मोतीलाल नेहरू था और माता का नाम स्वरूपरानी था ।

चौदह साल की उम्र में जवाहर विलायत गये । उनकी शिक्षा वहीं हुई । वहीं उन्होंने बैरिस्टरी पास की । सात साल विलायत मे रहकर, वे स्वदेश लौटे ।

इलाहाबाद में उन्होंने बैरिस्टरी शुरू की । वे खूब पैसा कमाने लगे । पर बैरिस्टरी छोडकर, वे देशसेवा मे लग गये । वाहरे ! जवाहर !

गाधीजी को उन्होंने गुरु बनाया । अग्रेज सरकार उनसे बहुत घबरा गई और उनके पीछे पडी । कई बार उसने उनको जेल मे बद किया, पर उनके आगे वह ठहर न सकी । आखिर हमारा देश स्वाधीन हुआ ।

अब पडितजी हमारे प्रधान मत्री हैं । सारा ससार उनका आदर करता है बच्चे उनको बहुत चाहते हैं और वे भी बच्चों को बहुत चाहते हैं । बच्चे उन्हें चाचा कहकर पुकारते हैं ।

भगवान ! नेहरूजी को चिरायु करो ।

—★—

पाठ सूत्र ४ (गद्य)*

कक्षा : ३ । समय : ४० मिनिट ।

पुस्तक : तीसरी । पाठ : 'फटे पाजामे की आत्मकहानी' (१—३ अनुच्छेद)

उद्देश्य—विद्यार्थियो को पाठ का भाव तथा अर्थ समझने का अभ्यास कराना ।

अ प्रस्तावना (पिछले पाठ का दुहराना तथा नये पाठ की तैयारी) :

१. कुछ प्रश्नो द्वारा, शिक्षक पिछला पाठ दुहराता है ।

२. प्रश्न : कुछ प्रसिद्ध 'आत्म—कथाओं' के नाम बताओ ।

आ. हेतु-कथन—आज के पाठ का विषय है : "फटे पाजामे की आत्म-कहानी' ।

इ. विषय-निरूपण

१. चाबी-शब्द—शिक्षक वार्तालाप द्वारा, इन चाबी-शब्दों को समझाता है : जर्जर, सुनहरे, समीर, यातनाओं, मज़बूर ।

२. सस्वर-वाचन : आदर्श—व्यक्तिगत (विद्यार्थी) ।

३. हेतु-प्रश्न

(१) शिक्षक निम्नलिखित हेतु-प्रश्न श्याम-पट पर लिखता है :

कपास कहाँ पैदा होता है ?

कपास रूई मे कैसे बदला जाता है ?

रूई से सूत तथा कपडा कैसे बनता है ?

(२) विद्यार्थी ऊपर के प्रश्नों का अर्थ समझते हैं ।

४. मौन-वाचन तथा हेतु-प्रश्नो का उत्तर निकालना (विद्यार्थियो द्वारा) ।

५. आत्मी-करण

(१) व्याख्या

शब्द और मुहावरे	पाठन-विधि
एकान्त; पूछता नहीं है, मस्त	} ......वाक्य-प्रयोग द्वारा

* पृष्ठ ७२ में विवेचित पद्धति के अनुसार ।

मुझे झुलाती थी	झुला से तुलना कर
समय बदलता है	हुमायूँ का दृष्टान्त देकर
परिणत करना, भगवान पर छोड़ देना }	वाक्य-प्रयोग द्वारा

(२) विचार–विश्लेषण

पाजामा कहाँ पडा है ?

समझाओ : मेरा शरीर जर्जर है । मुझे कोई पूछता नहीं है ।

पाजामा के सुनहरे दिन कौनसे थे ?

कपास कहाँ पैदा हुआ था ?

समझाओ : समय के साथ दुनिया बदलती है ।—
मेरी यातनाओं का अन्त नहीं हुआ ।

रूई से सूत कैसे बना ?
मिल में सूत को डर क्यों लगा ?
कपड़ा कैसे बना ?

[**नोट** : व्याख्या तथा विचार-विश्लेषण साथ ही साथ होना चाहिये ।]

६. व्यक्तिगत सस्वर वाचन (कुछ विद्यार्थियों द्वारा) ।

ई. पुनरावर्तन

१. बोध-परीक्षा—प्रश्न पूछकर, शिक्षक निम्न-लिखित चाबी-शब्द विद्यार्थियो से उद्बोधित करता है तथा उन्हे श्याम-पट पर लिखता है :

अहमदाबाद–दबाना–बिनौला–मिल–मशीन ।

२. मौखिक वर्णन : चाबी-शब्दों की सहायता से, कई विद्यार्थी पाठ का सार कहते हैं ।

उ. प्रयोग तथा अभ्यास

(१) वाक्य-गठन : मैं पडा हूँ ।–मैंने देखे हैं ।–मुझे कपास कहते हैं ।

(२) गृहकार्य : चाबी-शब्दो की सहायता से, पाठ का साराश घर में लिखना ।

—— ★ ——

पाठ-सूत्र ५ (गद्य)*

कक्षा : सातवीं । समय : ४५ मिनिट ।

पुस्तक : हिन्दी गद्य-पद्य सग्रह । पाठ : चीनी भाई (१–३ अनुच्छेद) ।

उद्देश्य : (१) भाई-चारा का भाव बढाना ।

(२) विद्यार्थियो का शब्द-भंडार तथा सूक्ति भडार बढाना ।

अ. प्रस्तावना

(१) क्या तुम लोगों ने चीनी फेरीवाले देखे हैं ?

(२) वे क्या बेचते हैं ?

(३) क्या तुमने कवयित्री महादेवी वर्मा की कोई रचना पढी है ?

आ. हेतु-कथन—आज हम महादेवी वर्मा लिखित 'चीनी भाई' (१–३ अनुच्छेद) पढेंगे ।

इ. विषय-निरूपण

१. सस्वर वाचन : आदर्श—व्यक्तिगत ।

२. हेतु-प्रश्न

शिक्षक निम्नांकित प्रश्न श्याम-पट पर लिखता है :

(१) चीनी ने कवयित्री को किन शब्दों द्वारा पुकारा ?

(२) कवयित्री क्यों बिगडी ?

(३) चीनी ने क्या क्या किया ?

३. मौन-वाचन तथा हेतु-प्रश्नों का उत्तर निकालना (विद्यार्थियो द्वारा) ।

४. आत्मी-करण

(१) व्याख्या

शब्द, मुहावरे, वाक्य		पाठन–विधि
रोष का तुग तरग	...	समुद्र की तरग से तुलना कर
विजातीय	.	उपसर्ग 'वि' का उपयोग
गाउन	..	विलायती महिलाओ के वेष-भूषा के प्रसग द्वारा
अवज्ञा, सरल विस्मय	...	अभिनय द्वारा
शाश्वत उपेक्षा	.	वाक्य-प्रयोग द्वारा
होम करते हाथ जला	..	दृष्टान्त द्वारा

* पृष्ठ ७४–७९ मे विवेचित पद्धति के अनुसार ।

(२) विचार-विश्लेषण

चीनी 'दुर्भाग्य का मारा' क्यों कहा गया ?

भारतीय महिलाओं को कौनसे सम्बोधन प्यारे लगते हैं ?

'मेम साब' सम्बोधन से कवयित्री क्यों बिगडी ?

'हम फारन हैं ? हम तो चाइना से आता है।'—यह कथन विस्मय से भरा हुआ क्यों है ?

चीनी के वेष का वर्णन करो।

कवयित्री नरम क्यो हो गई ?

'भाई' शब्द का चीनी पर क्या प्रभाव पडा ?

[नोट : व्याख्या तथा विचार-विश्लेषण साथ ही साथ होना चाहिए।]

(३) बोध-परीक्षा—शिक्षक निम्नांकित प्रश्न पूछता है :

चीनी फेरीवाला कहाँ गया ?

कवयित्री उस पर क्यों बिगडी ?

फेरीवाले ने कवयित्री का मन किस प्रकार बदल दिया ?

वह सामान क्यो बेच सका ?

ई पुनरावर्तन

१ प्रश्न : चीनी के वेष का वर्णन करो।

२ अर्थ बताओ : विजातीय, अवज्ञा, मटमैले, शाश्वत।

३. इन शब्दों तथा मुहावरों के विशेष अर्थ बताओ : दुर्भाग्य का मारा, रोष की सबसे तुग तरग, उपेक्षा की चोट से उत्पन्न चोट।

उ प्रयोग तथा गृह–कार्य

१ इस पाठ को पढो तथा उन शब्दों और वाक्यों को छाँटो, जिनके द्वारा भाषा रोचक हो गई है।

२. निबन्ध लिखो : मेरी एक चीनी फेरीवाले से भेंट।

—— ★ ——

पाठ सूत्र ६ (पद्य)*

कक्षा : २ । समय : ४० मिनिट ।

पुस्तक : दूसरी । पाठ : संग† ।

उद्देश्य : संगति का महत्व समझना ।

अ. प्रस्तावना

शिक्षक निम्नांकित प्रश्नों द्वारा पाठ आरम्भ करता है :

(१) भले के संग का असर लोगों पर कैसा पड़ता है ?

(२) बुरे के संग का असर लोगों पर कैसा पड़ता है ?

आ. हेतु-कथन—आज हम 'संग' नामक कविता पढ़ेंगे ।

इ. विषय-निरूपण

१. आदर्श वाचन ।

२. भाव-परीक्षा :

तुम बड़े कैसे बन सकते हो ?

३. आत्मी-करण

(१) व्याख्या

शब्द		पाठन-विधि
सुगंध	...	चमेली के फूलसे कैसी गंध आती है ?
गंदा, कड़ुवा	...	वाक्य-प्रयोग पद्धति द्वारा ।
मिश्री	...	प्रत्यक्ष-विधि द्वारा ।
बोल	...	वाक्य-प्रयोग पद्धति द्वारा ।

(२) विचार-विश्लेषण

फूल लेकर खेलने से, कैसी गंध मिलती है ?

धूल लेकर खेलने से, शरीर कैसा हो जाता है ?

कवि कहते हैं कि कौए का साथ करने से आवाज कड़ुवी हो जाती है । क्या यह ठीक है ?

---

* पृष्ठ ९१-९५ में विवेचित पद्धति के अनुसार ।

† लेखक श्री सोहनलाल द्विवेदी ।

पाठ सूत्र ७ (पद्य)*

कक्षा : ७ । समय : ४५ मिनिट

पुस्तक : हिन्दी गद्य-पद्य संग्रह । पाठ : संध्या † ।

उद्देश्य—कविता के प्रति रुचि उत्पन्न करना ।

अ. प्रस्तावना

सध्या के समय आकाश कैसा दिखता है ?

आ. हेतु-कथन : आज हम 'सध्या' कविता पढेंगे ।

प्रश्न : इसे किसने लिखा है ?

क्या तुमने बच्चनजी की ओर भी कोई कविता पढी है ?

इ. विषय-निरूपण

१. आदर्श—वाचन ।

२. भाव-परीक्षा :

इस कविता मे किस समय के दृश्य का वर्णन है ?

३. आत्मी-करण

(१) व्याख्या

शब्द, मुहावरे		पाठन-विधि
लुटाती		वाक्य-प्रयोग विधि ।
स्वर्णिम	..	प्रत्यय अलग कर ।
नीड-अधीर	...	वाक्य-प्रयोग विधि ।
शृगार		उदाहरण देकर ।
कपोलो		प्रत्यक्ष विधि ।
शोणित		वाक्य-प्रयोग विधि ।

(२) विश्लेषण

सध्या के समय आकाश का रंग कैसा रहता है ?

'सिंदुर लुटाना' का तात्पर्य क्या है ?

सध्या के समय पक्षी अपने घोसले की तरफ कैसे दौडते है ?

---

* पृष्ठ ८९-९५ में विवेचित पद्धति के अनुसार ।

† लेखक . डॉ हरिवंश राय 'बच्चन' ।

उनके पख क्यों भारी रहते हैं ?
सध्या की रोशनी के कारण, उनके धूल भरे पख कैसे दिखते हैं ?
कवि किस दृश्य की तुलना 'कँचन की पात' से कर रहा है ?
सध्या की रोशनी के कारण नदी का रग कैसा हो जाता है ?
इस रोशनी से नावों के पाल कैसे चमकते हैं ?
दर्शक को उपहार और शृँगार किस प्रकार मिलते हैं ?
कपोलों पर की आँसू की बूँदें लाल क्यों दिखती हैं ?

४ मौन-वाचन (विद्यार्थियों द्वारा) ।

५. बोध-परीक्षा :

डूबता हुआ सूरज कैसा दिखता है ?
वृक्ष पर सोयी हुई चिडियाँ कैसी दिखती हैं ?
नदी के दृश्य का वर्णन करो ।
दर्शकों का शृँगार कैसा होता है ?

६. रसास्वादन

(१) विद्यार्थियों द्वारा कविता का मौन-वाचन तथा उनके पसन्द किये हुये अंशों का रेखाँकित करना ।

(२) प्रश्न :

(अ) अपने पसन्द किये हुए अंश पढो ।

(आ) समझाओ : सिन्दूर लुटाना, नीड-अधीर, कचन के पात, सोने की चादर, शोणित की सी

(इ) ऊपर के शब्दों द्वारा, भाषा तथा भाव मे क्या परिवर्तन हुआ है ?

७. व्यक्तिगत सस्वर वाचन (कुछ विद्यार्थियों द्वारा) ।

ई. पुनरावर्तन

समझाओ :

निज नीड़-अधीर खगों के पर
तरुओं की डाली डाली मे कचन के पात लगाती है ।
आँखों की बूँद कपोलों पर शोणित की-सी बन जाती है

उ. प्रयोग और अभ्यास

नदी तट पर सायकाल के दृश्य का वर्णन करो ।

—— ★ ——

पाठ-सूत्र ८ (व्याकरण)

कक्षा : ४ । | समय : ४० मिनिट ।
विषय : व्याकरण । | पाठ : क्रियाविशेषण ।

उद्देश्य—छात्रों के व्याकरण ज्ञान की वृद्धि करना ।

अ. प्रस्तावना—(पिछले पाठ को दुहराना) :

प्रश्न : (१) विशेषण क्या है ?

(२) क्रिया क्या है ?

आ. हेतु-कथन—आज हम क्रियाविशेषण के विषय पढ़ेंगे ।

इ. विषय-निरूपण (शिक्षक पाठ को दो अन्वितियों मे बॉट देता है) ।

१. प्रथम अन्विति

(अ) शिक्षक निम्नलिखित वाक्यो को श्याम-पट पर लिखता है :

वाक्य	किस शब्द-भेद की विशेषता
(१) राम बहुत सुस्त है ।	(विशेषण)
(२) घोड़ा तेज दौडता है ।	(क्रिया)
(३) घोडा बहुत तेज दौडता है ।	(क्रिया-विशेषण)

(आ) ऊपर के वाक्यो पर प्रश्न :

पहला वाक्य : 'सुस्त' का शब्द-भेद क्या है ?

'बहुत' किस शब्द-भेद की विशेषता बतलाता है ?

[उत्तर : विशेषण, इसे शिक्षक पहले वाक्य के सामने (   ) मे लिखता है ।]

दूसरा वाक्य : 'तेज' किस शब्द की विशेषता बतलाता है ?

'दौडता है' का शब्द-भेद क्या है ?

[उत्तर : क्रिया, इसे शिक्षक दूसरे वाक्य के सामने (   ) मे लिखता है ।

नियम† . क्रियाविशेषण वह शब्द-भेद है, जो किसी विशेषण तथा क्रिया की विशेषता बतलावे ।

पृष्ठ १५३ में विवेचित पद्धति के अनुसार ।

† नियम निकलवाने के पहले, शिक्षक कई मौखिक उदाहरण देवे ।

तीसरा वाक्य : 'तेज' का शब्द-भेद क्या है ?
'बहुत' किस शब्द की विशेषता बताता है ?
[उत्तर : क्रियाविशेषण, इसे शिक्षक तीसरे वाक्य के सामने ( ) में लिखता है ।

(इ) **नियम (परिणाम) :** जो शब्द विशेषण, क्रिया या किसी दूसरे क्रिया-विशेषण की विशेषता बतलावें, उन्हें क्रियाविशेषण कहते हैं ।

(ई) प्रयोग—उचित अभ्यास-क्रम द्वारा ।

२ **द्वितीय अन्विति**

(अ) **उद्देश्य-कथन** अब हम देखेंगे कि क्रिया-विशेषण के क्या भेद हैं ।

(आ) शिक्षक श्याम-पट पर निम्न-लिखित वाक्य लिखता है, तथा रेखाकित क्रिया-विशेषणो का उपयोग पूछता हैं । वह इन्हें क्रम से ( ) में दूसरे खाने मे लिखता है ।

वाक्य	क्रिया विशेषण का उपयोग
(१) लडका आज आवेगा ।	(काल)
(२) मोहन वहाँ रहता है ।	(स्थान)
(३) गाडी धीरे चलती है ।	(रीति)
(४) लड़की बहुत रोती है ।	(परिमाण)
(५) नौकर कहाँ रहता है ?	(प्रश्न)

(इ) **परिणाम (Generalisation) :** क्रिया-विशेषण पाँच प्रकार के होते हैं .

(१) **कालवाचक**	— से क्रिया के काल का बोध होता है ।			
(२) **स्थानवाचक**	— ,, ,,	स्थान	,,	।
(३) **रीतिवाचक**	— ,, ,,	रीति	,,	।
(४) **परिमाणवाचक**	— ,, ,,	परिमाण	,,	।
(५) **प्रश्नवाचक**	— का उपयोग प्रश्न करने के लिए होता है ।			

ई. **पुनरावर्तन**

क्रिया-विशेषण किसे कहते हैं ?
विशेषण और क्रिया-विशेषण मे क्या अन्तर है ?
क्रिया-विशेषण के क्या भेद हैं ?

उ. **प्रयोग और अभ्यास**

निम्न-लिखित वाक्यों में से क्रिया-विशेषण शब्द छाँटो तथा प्रत्येक के भेद बताओ :

(१) राम दिन भर पढ़ता है। (२) क्या तुम भा[illegible] जाओगे? [illegible] वह बहुत दुःखी दिखाई देता है। (४) सूर्य अभी अस्त हुआ। (५) [illegible] करोगे, वैसा फल पाओगे। (६) वह तो घर नहीं गया। (७) यहाँ कुशल है, वहाँ की कुशलता परमात्मा से सदैव चाहता हूँ। (८) ज्यों ज्यों भीजे कामरी, त्यों त्यों भारी होय।

—— ★ ——

पाठ-सूत्र ९ (नियम-बद्ध रचना)*

कक्षा : ६। समय : ४५ मिनिट।

विषय : रचना। पाठ : व्याकरण की दृष्टि से वाक्य के प्रकार।

उद्देश्य—विद्यार्थियों को वाक्य के प्रकार समझाना।

अ. प्रस्तावना

अर्थ के अनुसार वाक्य के क्या भेद हैं?

प्रत्येक प्रकार के वाक्य के एक-एक उदाहरण दो।

आ. हेतु-कथन : आज हम देखेंगे कि वाक्य और किस प्रकार बाँटे जा सकते हैं।

इ. विषय-निरूपण : (विषय चार अन्वितियों में बाँटा गया है।)

१. प्रथम अन्विति (वाक्य, उपवाक्य)

शिक्षक निम्नलिखित वाक्य श्याम-पट पर लिखता है :

(१) राम ने पुस्तक उठाकर उसके चित्र देखे।

(२) राम ने पुस्तक उठाई और हरि ने उसके चित्र देखे।

(३) राम ने पुस्तक उठाकर वे चित्र देखे जो उसमें बने थे।

प्रश्न : ऊपर के वाक्यों को देखो। पहिले वाक्य में कितने वाक्य हैं? दूसरे और तीसरे में कितने वाक्य हैं? इस प्रकार, शिक्षक उद्बोधित करता है :

(१) पहिले वाक्य में, केवल एक वाक्य है।

(२) दूसरे और तीसरे वाक्यों में, दो-दो वाक्य हैं।

(३) एक वाक्य के अन्तर्गत जो वाक्य होते हैं, उन्हें उपवाक्य कहते हैं।

---

* पृष्ठ १६२ के विवेचित पद्धति के अनुसार।

२ **द्वितीय अन्विति** (साधारण वाक्य)

प्रश्न : पहिले वाक्य में (प्रथम अन्विति) कितनी क्रियाएँ तथा कितने कर्ता हैं ?

निम्नलिखित वाक्यों को पढो :

(१) राम रोटी खा रहा है।

(२) वह बाजार नही जावेगा।

प्रश्न : बताओ ऊपर के प्रत्येक वाक्य मे कितनी क्रियाएँ तथा कर्ता कारक हैं।

परिणाम—साधारण–वाक्य वह है, जिसमे उपवाक्य नहीं होते।

३ **तृतीय अन्विति** (सयुक्त वाक्य)

प्रश्न : प्रथम अन्विति के दूसरे वाक्य को पढो। इसके अन्तर्गत कितने वाक्य हैं ? इनका प्रयोग कैसे हुआ है ?

निम्नलिखित वाक्यों को पढ़ो .

(१) गणेश–चतुर्थी के दिन गणेशजी की स्थापना होती है, और अनन्त–चतुर्दशी के दिन विसर्जन होता है।

(२) लोग पसीने मे तर हो गये और हॉपते–हॉपते बेदम हो गये, लेकिन हार–जीत का निर्णय न हो सका।

प्रश्न : ऊपर प्रत्येक वाक्य मे कितने उपवाक्य हैं ? प्रत्येक उपवाक्य का कैसे उपयोग हुआ है ?

परिणाम—संयुक्त वाक्य वह है, जिसमे दो या अधिक उपवाक्य हों, किन्तु वे सभी एक दूसरे से स्वतत्र हों।

४ **चतुर्थ अन्विति** (मिश्र वाक्य)

प्रश्न : प्रथम अन्विति के तीसरे उपवाक्य को पढो। उसके अन्तर्गत कितने वाक्य हैं ? क्या पहले उपवाक्य का स्वतन्त्ररूप से प्रयोग हुआ है ? क्या दूसरे उपवाक्य का स्वतन्त्ररूप से उपयोग हुआ है ? अब निम्नलिखित वाक्यों को पढो :

(१) मुझे मालूम है कि वह अच्छा लड़का है।

(२) वह सोचता था कि यदि कोई पहरेदार या रक्षक देख न पावे तो हमलोग बडी आसानी से महलों पर कब्जा कर लेंगे।

प्रश्न : पहले वाक्य में कितने उपवाक्य है? इसमे से किस उपवाक्य का स्वतन्त्र रीति से प्रयोग हुआ है? (इसी प्रकार दूसरे उपवाक्य पर प्रश्न)।

परिणाम—मिश्र-वाक्य वह है, जिसमे दो या अधिक उपवाक्य हों, किन्तु उनमे से एक प्रधान हो और दूसरे आश्रित हों।

ई. पुनरावर्तन

उपवाक्य क्या है?
वाक्य कितने प्रकार के होते हैं?
साधारण वाक्य क्या है?
संयुक्त ,, ,, है?
मिश्र ,, ,, है?
संयुक्त और मिश्र वाक्य में क्या भेद है?

उ. अभ्यास तथा प्रयोग

निम्न-लिखित वाक्यो के प्रकार बताओ :

(१) गाधीजी का जन्म पोरबदर मे हुआ था। (२) बालकों को अधिक सिनेमा नहीं देखना चाहिए क्योंकि उससे ऑखे खराब होती हैं। (३) मूर्ख लडके शिक्षक का कहना नहीं मानते। (४) आजकल दियासलाई बहुत सस्ती मिलती है और बहुत काम में आती है। (५) मालूम होता है कि आज ठण्ड पड़ेगी। (६) न वह आया और न मुझे ही जाने दिया।

—— ★ ——

पाठ-सूत्र १० (भावार्थ)*

कक्षा : ७। समय : ४५ मिनिट।
विषय : भावार्थ। पाठ : फूल और कॉटा†।

उद्देश्य : छात्रों के सूक्ति-भंडार की वृद्धि करना।

अ. प्रस्तावना : विद्यार्थियो के पिछले पाठ के कुछ भूलों की चर्चा।

आ. हेतु-कथन : आज हम 'फूल और कॉटा' पद्य का भावार्थ करेंगे।

---

* पृष्ठ १८७ में विवेचित पध्दति के अनुसार।
† अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" की कविता।

दूसरा परिशिष्ट

राष्ट्र-भाषा शिक्षक के लिए उपयोगी पुस्तकें

१. कोश

कालिकाप्रसाद और अन्य सम्पादकगण : बृहत् हिन्दी कोश, बनारस, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सवत् २०१३, पृ. १७९२, मू. २५) ।

गुप्त, कृष्णमोहन : प्रामाणिक हिन्दी कोश, इलाहबाद, लक्ष्मी पुस्तक भंडार, ता. न., पृ. ५०८, मू. ४।।) ।

पाठक, आर. सी. : आदर्श हिन्दी शब्द कोश; बनारस, गगा पुस्तकालय, १९५० ई., पृ. ७०५, मू. १२) ।

वर्मा, रामचन्द्र : प्रामाणिक कोश; बनारस, साहित्य–रत्नमाला कार्यालय, सं. २००८, पृ. १५८६, मू. १२।।) ।

श्रीवास्तव, मुकुन्दीलाल : ज्ञान शब्द कोश, बनारस, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, स. २०११, पृ. ९८२, मू. १२) ।

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास

गुलाबराय : हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास; आगरा, साहित्य-रत्न भंडार, १९५६ ई., पृ. ३६०, मू. ३।) ।

बाजपेयी, नन्ददुलारे : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : प्रयाग, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, १९५५ ई., पृ. ९२; मू. १।।) ।

वर्मा, रामकुमार : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहबाद, रामनारायणलाल और क., १९४८ ई., पृ. ८८८· मू. १०) ।

————और दीक्षित, त्रिलोक नारायण : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास इलाहबाद, रामनारायणलाल क., १९५५ ई., पृ. २५१, मू. २) ।

शुक्ल, श्रीकृष्ण : हिन्दी साहित्य का शालापयोगी इतिहास, लखनऊ, शिवाजी बुक डिपो, स. २००५, पृ. १५०, मू. १।।।) ।

शुक्ल, रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी, नागरीप्रचारिणी सभा, १९५० ई., पृ. ७७६, मू. ७) ।

कवि

गौड, राजेन्द्रसिंह : हमारे कवि; इलाहबाद, साहित्य भवन, स २०११, पृ २६१ मू २) ।

टंडन, प्रेमनारायण और लक्ष्मीनारायण . हिन्दी के प्रतिनिधि कवि, आगरा, गयाप्रसाद एण्ड सन्स, १९५६ ई., पृ. ३३३, मू. ४) ।

मिश्र, भागीरथप्रसाद और दुर्गाशकर : हिन्दी कवियो की काव्य-साधना, लखनऊ, नवयुवक ग्रन्थागार, १९५२ ई., पृ ३१०, मू ४।) ।

सिन्हा, कृष्णकुमार . हिन्दी कवियों की आलोचना; गया, राजराजेश्वरी पुस्तकालय, ता. न., पृ. ४०९ मू. ४॥) ।

सुरेशचन्द्र . हिन्दी कवियो की काव्य-भावना, दिल्ली, साहित्य प्रकाशन, १९५५ ई., पृ. ९४, मू. ३) ।

४. हिन्दी भाषा और लिपि

ओझा, गौरीशकर हीराचन्द : नागरी अंक और अक्षर, प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, स० २०११, पृ० ४०, मू. ।=) ।

एक भारतीय हृदय : राष्ट्र-भाषा, प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, स. १९७६, पृ. १९४, मू ॥) ।

चट्टोपाध्याय सुनीतिकुमार : भारत की भाषाएँ और भाषा-संबधी समस्याएँ, इलाहबाद, हिन्दी भवन, १९५०, पृ २१७, मू. ३) ।

पाण्डे, चन्द्रावली . राष्ट्र-भाषा पर विचार, बनारस, नन्दकिशोर एण्ड ब्र, ई. १९५१, पृ २६८, मू. २॥।) ।

——————— : शासन में नागरी, प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, स. २००५, पृ. ६९, मू. १।) ।

सक्सेना, बाबूराम : दक्खिनी हिन्दी, इलाहबाद, हिन्दुस्तानी एकडेमी, १९५२ ई, पृ. ११२, मू. ३) ।

५. अध्यापन की पुस्तकें

चतुर्वेदी, सीताराम : भाषा की शिक्षा, बनारस, हिन्दी साहित्य कुटीर, १९५४ ई., पृ. ४४४, मू. ४) ।

झा, लज्जाशकर : भाषा शिक्षण पद्धति, जबलपुर, मिश्रबन्धु कार्यालय, १९४० ई., पृ. ३०४, मू. ३) ।

मुकर्जी श्रीधरनाथ : राष्ट्र-भाषा की शिक्षा; बड़ौदा, आचार्य बुक डिपो, १९५७ ई., पृ. २६४; मू. ६) ।

शर्मा, योगेन्द्र : भाषा कैसे पढ़ावें ? बनारस, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, १९५१ ई., पृ. स. १८८; मू. २) ।

शुक्ल, सूर्यनारायण : हिन्दी शिक्षण-पद्धति; बम्बई, जनरल बुक डिपो, ता. न. पृ. ११६; मू. १॥) ।

श्रीवास्तव, उमाशकर : भाषा-शिक्षण-विधि, बनारस, हिन्दी प्रचारक पु., १९५१ ई. पृ. २५६; मू. २॥) ।

सफाया, रघुनाथ : हिन्दी शिक्षण-विधि, जालन्धर, किताबघर, १९५६ ई., पृ. २४१; मू. ३=) ।

त्रिपाठी, करुणापति : भाषा-शिक्षण; बनारस, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, १९५२ ई., पृ. १६७; मू. २।)

६. व्याकरण तथा रचना

आचार्य धर्मेन्द्र और शास्त्री, वि. शे. : आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना; देहरादून, साहित्य-सदन, १९५१ ई. ; पृ. २१०, मू. १) ।

गुरु, कामताप्रसाद : मध्य हिन्दी व्याकरण; काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सवत् २०११, पृ. १९६, मू १॥)

————————: संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण; काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सवत् २०११ पृ. २४३; मू. १॥) ।

————————: हिन्दी व्याकरण, काशी, नागरी प्रचारिणी सभा, सवत् २००९, पृ. ७२०; मू. ७) ।

द्विवेदी, लोकनाथ : हिन्दी व्याकरण कौमुदी; प्रयाग, इण्डियन प्रे., ता. न.; पृ. २७२. मू. १।) ।

द्विवेदी, शालिग्राम : सरल हिन्दी व्याकरण और रचना; जबलपूर, मिश्र-बन्धु-कार्यालय. १९५२ ई., (चार भागो मे) ।

वाजपेयी, किशोरीदास : अच्छी हिन्दी· कनखल, हिमालय एजन्सी, १९५२ ई., पृ. १५७. मू. २।॥।

वामदेव : सुबोध हिन्दी व्याकरण और रचना, जालन्धर, हिन्दी-भवन १९४९ ई. पृ. २११· मू. २) ।

शर्मा, रामचन्द्र : अच्छी हिन्दी. बनारस, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, सम्वत् २००७ पृ स. ३८०, मू. ३) ।

——————— हिंदी-प्रयोग बनारस, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, संवत् २०११ पृ. स १७० मू १।। ।

७. रस अलकार पिंगल

शर्मा, आर्येन्द्र : अलकार प्रकाश और पिंगल कौमुदी· प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन स २००६ पृ स ४८ मू ।।) ।

शुक्ल रामचन्द्र : सरस पिंगल, इलाहाबाद, रामनारायण लाल और क., १९५४ ई पृ. स ८६: मू. ।।) ।

शुक्ल, रामबहोरी काव्यप्रदीप जालन्धर, हिन्दी भवन १९५२ ई पृ. स. ३१६ मू ३।) ।

श्रीवास्तव, हरिमोहनलाल अलकार, पिंगल और रस जबलपुर, सुषमा साहित्य मन्दिर, १९५६ ई. पृ. ३१ ।=) ।

स्वामी, नरोत्तमदास अलंकार परिचय आगरा लक्ष्मीनारायण अग्रवाल एण्ड क १९५६ ई., पृ १२८ मू १।) ।

८. आलोचनात्मक साहित्य

गौड, गजेन्द्रसिंह : निबन्ध कला इलाहाबाद, साहित्य सदन, स २०१३, पृ. २९५ मू. ३।।) ।

गौतम, राजमोहन और काले, मनोहर : साहित्यलोचन सिद्धान्त दिल्ली, हिन्दी साहित्य ससार, १९५६ ई.· पृ. १४४, मू २) ।

चतुर्वेदी, सीताराम : शैली और कौशल बनारस, हिन्दी साहित्य कुटीर, स २०१३ पृ ४८९ मू. ६) ।

मिश्र, विश्वनाथ : वाङ्मय–विमर्श बनारस, हिन्दी साहित्य कुटीर, स २००७ पृ ४८५ मू ५)।

व्यास, विनोदशंकर : उपन्यास–कला· बनारस, हिन्दी साहित्य कुटीर, स. १९९७ पृ १३४ मू. १।।) ।

——————— कहानी–कला बनारस, हिन्दी साहित्य कुटीर, स २०१० पृ १३१. मू. १।।) ।

———व्योहार, राजेन्द्रसिंह : **आलोचना के सिद्धान्त**, दिल्ली, आत्माराम एण्ड सन्स, १९५५ ई.; पृ. २०१, मू. ४) ।

श्यामसुन्दरदास : **रूपक का विकास**, प्रयाग, इण्डियन प्रे., स. २००६; पृ. २२६, मू. ३) ।

————————: **साहित्यालोचन**, प्रयाग, इण्डियन प्रे., स. २००६, पृ. ३९९; मू. ५॥) ।

९. निबन्ध

अग्रवाल, शिवप्रसाद : **निबन्ध निकुंज**, आगरा, बुक स्टोर, १९५५, ई., पृ. २४८; मू. २) ।

—————— : **रचना राकेश**; आगरा, बुक स्टोर, स. २०१३, पृ. ३१८; मू. १॥) ।

गुलाबराय : **निबन्ध माला**; इलाहबाद, हिन्दी भवन, १९५५ ई., पृ. २०८, मू. १।।।)

चतुर्वेदी, द्वारकाप्रसाद : **रचनादर्शन**; प्रयाग, भारतवासी प्रेस, १९५० ई., पृ. १२७, मू. २) ।

प्रो. सरोज : **प्रबंध-प्रदीप**, दिल्ली, हिन्दी साहित्य ससार, १९५६ ई., पृ. ५७६; मू. ५) ।

भटनागर, रामरतन : **निबन्ध प्रबोध**, इलाहबाद, किताबमहल, १९४९ ई., पृ. ४१७; मू. २।) ।

श्रीवास्तव, शिवनारायण : **निबन्ध निधि**, बनारस, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, १९५४ ई.; पृ. ३५४; मू. २।) ।

सिन्हा, भारतेन्दू : **हिन्दी रचना, निबंध और पत्रलेखन**, बडौदा, गुड कम्पॅनिअन्स, १९५६ ई.; पृ. १६८; मू. २) ।

सुश्री सुदेश शरण : **निबन्ध सार**, दिल्ली, विद्या प्रकाशन-मन्दिर, १९५६ ई., पृ. २४७, मू. ३) ।

१०. मुहावरे और लोकोक्तियाँ

शास्त्री, बहादुरचन्द : **लोकोक्तियाँ और मुहावरे**; जालन्धर, हिन्दी-भवन, १९५३ ई.; पृ. १६०, मू. १।) ।

श्रीयुत् व्यथित हृदय : लोकोक्तियाँ, इलाहबाद, रामनारायणलाल और क., १९५३ ई., पृ. १०८, मू. ।|=) ।

सरहिन्दी, आर. जे. : हिन्दी मुहावरा कोष, इलाहबाद, रामनारायण लाल और क, १९९३, पृ. ५४८, मू. ३) ।

११ मासिक–पत्रिका

आजकल, दिल्ली, पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेक्रेटेरिएट, वार्षिक मू. ६) ।

नवनीत, हिन्दी डाइजेस्ट, बम्बई, ३४१, तारदेव, वार्षिक मू. १०) ।

बाल भारती, दिल्ली, पब्लिकेशन्स डिवीजन, ओल्ड सेक्रेटेरिएट वार्षिक मू ४) ।

बाल–सखा, प्रयाग, इंडियन प्रेस लिमिटेड, वार्षिक मू. ४) ।

विशाल भारत, कलकत्ता विशाल भारत बुक डिपो, १६५–१, महात्मा गान्धी रोड, वार्षिक मू. ९) ।

सरस्वती, प्रयाग, इंडियन प्रेस लिमिटेड, वार्षिक मू. ७।।) ।

—— ★ ——

अनुक्रमणिका

प

फ

ब

भ

म

य

र

—— ★ ——